CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

7·6

सप्रेम समर्पण

श्री रघुनाथ जी के भक्तों

को

अधम सरीर राम जिन्ह पाए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिका

इस पुस्तक की रचना का उद्देश्य महाकवि तुलसीदास के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से सम्बन्धित सामग्री को छात्रोपयोगी रूप में प्रस्तुत करना है। मैंने गोस्वामी तुलसीदासजी के सम्बन्ध में उपलब्ध प्रायः समस्त साहित्य का आकलन करके इस छात्रोपयोगी पुस्तक को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आशा है महाकवि तुलसी के अध्येता इसके द्वारा लाभान्वित होंगे।

—राजेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

१.	आविर्भाव-काल	१
२.	जीवन-वृत्त एवं व्यक्तित्व	१८
३.	काव्य-कृतियाँ	४६
४.	राम-कथा और गोस्वामी तुलसीदास	५७
५.	गोस्वामी तुलसीदास के काव्य की प्रवृत्तियाँ	६८
६.	गोस्वामी तुलसीदास का भावपक्ष और उनकी भावुकता	८१
७.	गोस्वामी तुलसीदास और प्रकृति-चित्रण	९१
८.	गोस्वामी तुलसीदास की प्रबन्ध पटुता	९८
९.	गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति-भावना	१०४
१०.	गोस्वामी तुलसीदास की दार्शनिकता	१५५
११.	गोस्वामी तुलसीदास के काव्य का कला-पक्ष	१७४
१२.	गीति-काव्यकार गोस्वामी तुलसीदास	१९७
१३.	गोस्वामी तुलसीदास और 'विनय-पत्रिका'	२३५
१४.	गोस्वामी तुलसीदास और गीतावली	२७३
१५.	हिन्दी साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास का स्थान	२८५
१६.	परिशिष्ट	२९८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुलसीदास

(१)

आविर्भाव-काल

प्रश्न १—गोस्वामी तुलसीदास के आविर्भाव-काल की सामान्य परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए बताइए कि उन्होंने अपना मार्ग किस प्रकार निर्धारित किया।

अथवा

प्रश्न २—भक्ति-काल सम्बन्धी काव्य के उदय होने में किन-किन परिस्थितियों ने योग दिया था ? उनका उल्लेख करते हुए यह बतलाइए कि उस काल की प्रमुख धाराएँ कहाँ तक उनसे प्रभावित हुई हैं।

उत्तर— गोस्वामी तुलसीदास हिंदी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनकी प्रतिभा अद्वितीय थी। उन्होंने जिस युग में काव्य रचना की, वह समय हिंदी-साहित्य के इतिहास में भक्ति काल कहा जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित्र' को लेकर काव्य रचना की और सोते हुए समाज को जगा दिया। उनका सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामचरित मानस' है। यद्यपि उन्होंने अन्य अनेक ग्रन्थ लिखे तथापि 'रामचरित' वर्णन करते समय ही उनकी अनुभूति सर्वाधिक वेगवती दिखाई दी। 'रामचरित-मानस' के अन्तर्गत वह बारंबार इस प्रश्न का उत्तर देते हुए दिखाई देते हैं—"वह कारण क्या है जिससे निर्गुण ब्रह्म ने सगुण रूप धारण किया ?"

तुलसी ने इस प्रकार के काव्य का सृजन क्यों किया ? वनवासी एकाकी राम के द्वारा ऐश्वर्य सम्पन्न एवं वैभवशाली रावण का वध क्यों कराया ? उन्होंने बार-बार भौतिक साधनों की समकक्षता में आध्यात्मिक शक्ति पर क्यों अधिक बल दिया ? इन सब प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के पूर्व हमको उनके समय की सामान्य परिस्थितियों पर विचार करना होगा। हमें देखना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होगा कि वे कौन सी परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने तुलसी जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति को राम कथा को लेकर इस विशिष्ट रूप में काव्य-रचना की प्रेरणा प्रदान की ?

राजनीतिक परिस्थितियाँ—गोस्वामी तुलसीदास का समय १६ वीं शताब्दी है—जबकि दिल्ली के सिंहासन पर अकबर विराजमान था। वह समय लोदी वंश (पठान वंश) का अन्तिम काल तथा मुग़ल शासकों के अभ्युदय का समय था। इसके विपरीत इस देश के राजपूत राजे तथा अन्य शासक आपस में संघर्ष करने के कारण बहुत कुछ निर्बल हो गये थे और वे प्रायः सबके सब मुग़ल-शासकों की अधीनता स्वीकार कर चुके थे।

इन दिनों मुगल सम्राट दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान था। वह बहुत ही कूटनीतिज्ञ एवं चतुर शासक था। उसने प्रायः समस्त देश पर अधिकार कर लिया था। उसने आवश्यकतानुसार विवाह-सम्बन्ध स्थापित करके और युद्ध करके राजपूतों को अपने वश में कर लिया था। कोई भी स्वतन्त्रता-प्रेमी अपना सिर नहीं उठा सकता था। महाराणा प्रताप जैसा स्वाभिमानी एवं वीर राजा अपने स्वतन्त्रता प्रेम के कारण वन-वन भटकने को बाध्य हुआ था।

जो राजे मुगल-सम्राट का आधिपत्य स्वीकार कर लेते थे, उनका राज-दरबार में मान होता था और वे अपने राज्यों में मनमानी करते थे।

गरीब किसानों की कमाई राज कोष में जाती थी और दरबारी शान शौकत में वृद्धि होती थी।

जनता के कष्टों को सुनने वाला कोई नहीं था। बादशाह के दरबार तक अथवा राजा एवं सामन्त के महल तक पहुँचना बहुत कठिन हो गया था। कहने का अभिप्राय यह है कि हिन्दू समाज के सामने सिवाय भगवान् को पुकारने के और कोई चारा शेष नहीं रह गया था। आचार्य पं० रामचंद्र शुक्ल ने लिया है कि "अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ?"

गोस्वामी तुलसीदास सदृश संवेदनशील एवं लोक रंजन के प्रतिपादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि को रघुवंशी राजाओं के प्रजापालन का आदर्श स्मरण हो आया और उन्होंने 'रामचरितमानस' की रचना की। 'रामचरितमानस' में गोस्वामी जी ने जो राजनैतिक आदर्श प्रस्तुत किया है, वह बहुत कुछ तत्कालीन परिस्थितियों की प्रतिक्रिया है। 'तुलसीदास और राजनीति' पर प्रकाश डालते हुए डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि, रावण के शासन की अनीतियों से तुलसीदास ने अपने समय में यवनों की राजनीतिक अनीतियों का संकेत बड़े कौशल से किया है। राजनीति की इन दुःखपूर्ण परिस्थितियों से ऊबकर तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर राजनीति के आदर्शों का निरूपण किया है।"

वह शासन हिंसा क्रूरता, एवं निर्दयता पर आधारित था। ऐसे राज्य को रावण राज्य बताते हुए गोस्वामी जी ने कवितावलीं में 'भूमिचोर भूप भये' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने अनुभव किया था कि छोटे-छोटे राजे आपस में लड़ा करते थे। उनके इस गंवारपन के फलस्वरूप ही विदेशी यवन महिपाल बन कर मनमानी कर रहे थे—

गोंड गंवार नृपाल महि, यवन महा महिपाल।
साम न दाम न भेद कछु केवल दण्ड कराल। (दोहावली)

धार्मिक परिस्थितियाँ—भगवान बुद्ध के पश्चात् उपासना प्रधान धर्म का जोर बढ़ गया था। मुसलमानी राजत्वकाल में आकर जनता के बल-विक्रम के साथ वह भी शिथिल पड़ गया और कर्म एवं ज्ञान दोनों की उपेक्षा हो गई। शास्त्रों का पठन-पाठन कम हो गया और ज्ञानी कहलाने की इच्छा रखने वाले मूर्खों की बाढ़ सी आ गई। धर्म के नाम पर पाखण्ड का प्रचार होने लगा। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "गोस्वामी जी के पूर्व तीन प्रकार के साधु समाज के बीच रमते दिखाई देते थे। एक तो प्राचीन परम्परा के भक्त जो प्रेम में मग्न होकर संसार को भूल रहे थे, दूसरे वे जो अधिकार ज्ञान गोष्ठी द्वारा समाज के प्रतिष्ठित आदर्शों के प्रति तिरस्कार बुद्धि उत्पन्न कर रहे थे, और तीसरे वे जो हठयोग, रसायन आदि द्वारा अलौकिक सिद्धियों की व्यर्थ आशा का प्रचार कर रहे थे। इन तीनों वर्गों द्वारा साधारण जनता के लोक-धर्म पर आरूढ़ होने की सम्भावना कितनी दूर थी, यह कहने की आवश्यकता नहीं।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुसलमान विजेता आते ही अपने धर्म के प्रचार में लग गये। उनके एक हाथ में तलवार थी और दूसरे हाथ में क़ुरान की पुस्तक। अकबर ने धार्मिक क्षेत्र में सहिष्णुता का परिचय दिया। परन्तु वह सहिष्णुता वस्तुतः शक्कर चढ़ी हुई कड़वी गोली थी। उसने हिन्दू राजाओं के साथ विवाह सम्बन्ध स्थापित किए, जिससे धार्मिक विद्वेष कम हो। परन्तु हमारे विचार से तो यह इस्लाम-धर्म का प्रचार ही था। अकबर ने हिन्दुओं के धर्म को अधिक निकट से समझने के लिए दीन इलाहीं की स्थापना की। यह सब कुछ बाहर से बहुत अच्छा लगता था, परन्तु मूलतः तो वह हिन्दू धर्म पर आघात ही था।

दूसरी ओर हिन्दू धर्म की स्थिति बहुत ही शोचनीय थी। राजनीति की भाँति धर्म के क्षेत्र में भी परस्पर विरोधी मत और सम्प्रदाय धर्म की जड़ें खोखली कर रहे थे। उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक समस्त देश में विभिन्न धर्म-साधनाओं का प्रचार था और वे सब परस्पर संघर्षरत थे। शैव, वैष्णव, शाक्त, वामपंथी, हठयोगी आदि आपस में एक दूसरे को नीचा दिखाने में लगे हुए थे। धर्म के सिद्धान्तों को भूल कर लोग अन्धविश्वासों में फँस गए थे और मन्दिर एवं मठ पापाचार और दुराचार के केन्द्र बन गये थे।

सर्वाधिक अहित ज्ञानमार्गी साधु संत कर रहे थे। हठयोगी नाथ पंथी अघोरी आदि साधु अनेक प्रकार के चमत्कारों का प्रदर्शन करके जनता को चकित और गुमराह कर रहे थे। सामान्य जनता घर के भीतर ईश्वर को खोजने में असमर्थ थी। एक गोरखपंथी निर्गुणवादी साधु को लक्ष्य करके गोस्वामी जी ने कहा था कि—

गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग
निगम नियोग ने, सो केलि ही छरो सो है ॥ (कवितावली)

धर्म एक पाखण्ड बन कर रह गया था। राजा और प्रजा दोनों ही हिन्दू धर्म की जड़ें खोदने में लगे थे। इसी स्थिति को लक्ष्य करके गोस्वामी जी ने कहा था—

जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला।
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गांउ पुर आग लगावहिं।
(रामचरितमानस)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उस समय की धार्मिक दुर्व्यवस्था का वर्णन करते हुए निष्कर्ष रूप में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने बहुत ठीक लिखा है कि 'लोक मर्यादा का उल्लंघन समाज की व्यवस्था का निराकार, अनधिकार चर्चा, भक्ति और साधुत्व का मिथ्यादंभ, मूर्खता छिपाने के लिए वेद शास्त्र की निंदा, ये सब बातें ऐसी थीं, जिनसे गोस्वामी जी की अन्तरात्मा बहुत व्यवस्थित हुई।"

कलियुग के रूप में गोस्वामीजी ने अपने ग्रन्थों—रामचतिमामस, कविता-वली, दोहावली, बरवै रामायण में राज्य की दुर्दशा का वर्णन करते हुए इन विषम स्थितियों की ओर संकेत किया है। यथा—

नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं।

(रामचरितमानस)

काल कराल नृपाल कृपाल व
राज-समाज बड़ोई छली हैं। (कवितावली)

न कोई निश्चित धर्म मार्ग था और न धार्मिक व्यवस्था ही शेष रह गई थी। लोग वेद-विहित मार्ग प्रायः छोड़ चुके थे—

कलिमल ग्रसे धर्म सब, लुप्त भये सद्ग्रन्थ।
दम्भिन निज मत कल्पि करि, प्रकट किए बहु पंथ

सामाजिक परिस्थितियाँ—हिन्दू समाज धार्मिक व्यवस्थाओं पर निर्मित समाज है। धार्मिक दुर्व्यवस्था एवं अव्यवस्था के साथ-साथ हिन्दू समाज छिन्न भिन्न हो गया था। हिन्दू समाज का आधा वर्णाश्रम धर्म नष्टप्रायः हो गया था। वर्ण-व्यवस्था समाप्त हो रही थी और ऊँच-नीच की भावना बढ़ रही थी। इस स्थिति का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी ने लिखा है कि—

बरन धरम नहिं आश्रम चारा। श्रुति विरोध रत सब नर नारी।

(रामचरित मानस)

वर्णाश्रम मर्यादा नष्ट हो चुकी थी, समाज के प्रत्येक वर्ग के लोग अपने कर्त्तव्य से विमुख थे, समाज में अनुशासनहीनता फैल रही थी। व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य के अभिशप्त स्वरूप का वोलवाला था और विद्या-बुद्धि के प्रति कोई सम्मान नहीं रह गया था—बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणों का आदर समाप्त हो गया था। नैतिक पतन इतना हो गया था कि अनुजा-तनुजा का विचार नहीं रह गया था। सन्यास लेना बहुत आसान हो गया था। परनिन्दा और परअपवाद में लोगों को रस आता था, किसी की प्रशंसा करना अथवा सुनना स्वभाव के प्रतिकूल हो गया था। नारियों का स्थान बड़ा ही हेय था। उनका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व अथवा अस्तित्व नहीं रह गया था। वे केवल भोग की वस्तु रह गई थीं और नारियां भी अपने उच्च आदर्शों को भूल गई थीं। सारांश यह है कि व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन विशृंखलित हो गए थे। 'रामचरित मानस' के उत्तर काण्ड के अन्तर्गत कलियुग के वर्णन के नाम पर गोस्वामीजी ने तत्कालीन सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में बहुत कुछ कह दिया है। यथा—

मारग सोइ जा कहुं जो भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।
मिथ्यारंभ-दम्भ रत जोई। ता कहुं संत कहइ सब कोई।

× × ×

सोई सयान जो परधन हारी। जो कर दम्भ सो बड़ आचारी।
नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नर मरकट की नाईं।
इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता।
सब लोग वियोग बिसोक भये। बरनाश्रम धर्म अचार गये।

असुभ वेष भूषन धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्धनर पूज्यते कलिजुग माहिं।

(रामचरित मानस)

आर्थिक परिस्थितियाँ—राजनीतिक अत्याचारों के कारण समाज की आर्थिक स्थिति भी अस्तव्यस्त एवं शोचनीय हो गई थी। समाज मुख्यतया दो वर्गों में विभक्त हो गया था। एक वर्ग उन लोगों का था जो दरबार से संवद्ध थे। यह धनिक वर्ग था और सुखी था। दूसरा वर्ग सामान्य जनता का था। यह वर्ग आजीविका के लिए कठिन परिश्रम करता था, परन्तु फिर भी निर्वाह की कठिनाइयाँ बनी रहती थीं। प्रथम वर्ग शोषकों का था और द्वितीय वर्ग शोषितों का था, जो आर्थिक उत्पीड़न एवं शोषण के निरन्तर चलने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाले चक्र में पिस रहा था। वेकारी जोरों पर थी। लोगों को काम नहीं था और भिखरियों की संख्या निरन्तर वढ़ रही थी। गोस्वामीजी ने कवितावली में इस स्थिति के स्पष्ट संकेत दिए हैं—'वनिज को न वनिज चाकर को न चाकरी' तथा "कहैं एक एकन सों कहां जाय, काह करी" वाली विषम परिस्थिति थी। स्त्रियाँ भी घरों में मजदूरी करती थीं। अर्थंकरी जीवन का वोलवाला था—

मातु पिता वालकन्ह बुलावहिं। उदर भरइ सोइ धरम सिखावहिं।

सामान्य जीवन—मुगल शासन के अन्तर्गत इस्लाम का वोलवाला था। हिन्दू धर्म के सच्चे स्वरूप का ह्रास हो गया था। उस समय निर्गुण-सगुण आदि भक्ति-पद्धतियाँ, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि अनेक दर्शन, वैष्णव, शैव, शाक्त, गोरखपंथी, नानकपंथ आदि अनेक सम्प्रदायों का प्रचार था और वे परस्पर विरोधी बड़े हुए थे।

समाज में वेकारी थी और आर्थिक शोषण के फलस्वरूप जनता कराह उठी थी। शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। अन्ध-विश्वास और रूढ़ियाँ समाज को जकड़े हुए थे। राजकर्मचारी ऐश और मौज करते थे। इसका खर्च वे जनता की खून-पसीने की कमाई से निकालते थे।

दैवी प्रकोपों का भी तांता बँधा हुआ था। कभी सूखा, तो कभी गरकी। कभी महामारी, तो कभी दुर्भिक्ष। शासन की ओर से कोई व्यवस्था नहीं थ।—यहाँ तक कि लाशें तक उठाने वाले उपलब्ध नहीं थे।

अनेक प्रकार के कष्टों और अभावों को सहन करते रहने के कारण जनता में आत्म गौरव की भावना नष्टप्राय हो गई थी। नारियों को समाज में वहुत ही हेय समझा जाता था। पति की मृत्यु होने पर पत्नी को प्रायः पति के शव के साथ जल जाना पड़ता था।

ईश्वरोपासना के नाम पर अनेक देवी-देवताओं, सैयदों, पीरों, भूत-प्रेतों, फकीरों, सन्तों, पेड़-पौधों आदि की पूजा प्रचलित थी। सारांश यह है कि तुलसीदासजी के आविर्भाव काल में समाज की दशा सब प्रकार शोचनीय और निराशाजनक थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपसंहार—समाज की इन विषम परिस्थितियों ने गोस्वामी तुलसीदास के मन-मानस को विह्वल एवं विचलित कर दिया।[1] अपने गुरू द्वारा सुनी हुई राम-कथा ही उन्हें कल्याण का एक मात्र उपाय दिखाई दिया—

बहुमत सुनि बहुपंथ पराननि जहाँ-तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लागत राज-डगरो सो।
(विनय-पत्रिका)

कलियुग को सतयुग में परिवर्तित करने की, अपने समाज का उत्थान करने की इच्छा उनके मन में वार-वार उत्पन्न होती थी। कलियुग के वर्णन द्वारा उन्होंने तत्कालीन समाज का निरूपण किया और रामराज्य की महिमा के वर्णन द्वारा उन्होंने उस अवांछनीय स्थिति से मुक्ति प्राप्त करने के लिए जनता को प्रेरणा प्रदान की।

प्रश्न ३—भक्ति-कालीन काव्य की प्रमुख प्रेरणाओं का विवेचन करते हुए यह स्पष्ट कीजिए कि भक्ति-काव्य किस सीमा तक अपने युग के अनुरूप था।

उत्तर—सामान्यपरिस्थिति—ईसा के १४वीं शताब्दी के आरम्भ होते होते भारतवर्ष में मुगलों का साम्राज्य प्रतिष्ठित हो चुका था। हिन्दू राजे युद्ध करते-करते थक गए थे। पारस्परिक विद्वेष के कारण वे संगठित मोर्चा खड़ा नहीं कर सकते थे और वार-वार पराजित होते थे। अन्तत: उन्होंने विदेशी मुसलमान शासकों की पराधीनता स्वीकार कर ली और उनकी राजी में ही अपनी रजा मानने लगे। तत्कालीन हिन्दू समाज की मनोवैज्ञानिक स्थिति का वर्णन आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने वड़े ही मार्मिक शब्दों में किया है—"देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता

१. गोस्वामीजी ने अपने ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर समसामयिक परिस्थितियों की ओर संकेत किया है। तुलसी ग्रन्थावली भाग २ के अन्तर्गत देखें—दोहावली पृ० सं० ११४, १२४, १५३, कवितावली पृ० २०५, २०८, २१६, २१७, २१८, २२१, २२४, २२५, २२६, २४५, २४६, २४७, २४६ विनय-पत्रिका ४७२, ५०२, ५३३ तथा रामचरित मानस उत्तर कांड।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के हृदय में गौरव गर्व और उत्साह के लिए अवकाश न रह गया। × × अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।"

इस्लाम के प्रचार के नाम पर मुसलमान हिन्दुओं के साथ, उनके देव मन्दिरों के साथ तथा उनके धर्म-ईमान के साथ मनमानी कर रहे थे। इसके अतिरिक्त दम्भी साधुओं, संतों, वज्रयानी सिद्धों, कापालिकों तथा अन्य रमते जोगियों के कारण सच्ची धर्म भावना वहुत कुछ दव गई थी। गज की टेर सुनकर आने वाले खरारि और द्रौपदी की पुकार सुनकर आने वाले मुरारि कहीं दिखाई नहीं देते थे। हिन्दुओं में भगवान के प्रति विश्वास की वहुत कमी हो गई थी। सारांश यह है कि भक्तिकाल के प्रारम्भ काल में हिन्दू जनता के मन में न कर्म के प्रति आस्था रह गई थी और न भगवान की कृपा में ही विश्वास रह गया था। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "जिस समय मुसलमान भारतवर्ष में आए उस समय सच्चे धर्मभाव का वहुत कुछ ह्रास हो गया था। प्रतिवर्तन के लिए वहुत कड़े धक्कों की आवश्यकता थी।"

भक्ति स्रोत—मुसलमान अपने आपको भारतवर्ष का निवासी समझने लगे थे। भारतवासी मुसलमानों को अपना शासक मानने लगे थे। इस्लाम धर्म हिन्दुओं के धार्मिक विचारों को प्रभावित करने में प्रयत्नशील हुआ। हिन्दुओं ने भी इस्लाम धर्म को समझने की चेष्टा की। डा० रामकुमार वर्मा के कथनानुसार "धार्मिक विचारों में परिवर्तन होने का सूत्रपात एक ऐसे रूप में हुआ जिसने हमारे साहित्य में एक नवीन धारा की ही सृष्टि कर दी। यह नवीन धारा संत काव्य के रूप में प्रवाहित हुई।"

यही भक्ति-काव्य का सूत्रपात था। भारतवर्ष के ज्ञानमार्गी कवीर आदि संत कवियों ने तथा मुसलमान प्रेम मार्गी जायसी आदि कवियों ने सामान्य प्रेम स्वरूप ईश्वर को प्रस्तुत किया। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उस ओर आर्कषित हुए।

संवत् १०७३ में दक्षिण में रामानुजाचार्य शास्त्रीय पद्धति से सगुण भक्ति का निरूपण कर चुके थे। १३ वीं शताब्दी के अंत में गुजरात में मध्वाचार्य ने अपने द्वैतवादी सम्प्रदाय द्वारा भक्ति का प्रचार किया। विष्णु स्वामी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निम्बार्काचार्य प्रभृति आचार्य भी भक्ति का प्रचार कर रहे थे। इस प्रकार सगुण भक्ति का स्रोत दक्षिण से उमड़ता हुआ चला आ रहा था।

दूसरी ओर साहित्य के क्षेत्र में भी भक्ति परक रचनाएँ लिखी जा रही थीं। ११वीं शताब्दी में बंगाल में जयदेव ने गीत-गोविन्दम् की रचना करके राधा-कृष्ण की रागानुगाभक्ति का संगीत सुनाया। १४वीं शताब्दी में मिथिला में विद्यापति ने जयदेव के स्वर में स्वर मिलाकर कृष्ण-प्रेम की सुधा-वृष्टि की। इस प्रकार भक्ति की धारा निरन्तर पुष्ट होती हुई चली आ रही थी।

भक्ति-काल का काव्य-क्षेत्र—१५ वीं शताब्दी के आरम्भ होते-होते उत्तर भारत में भक्ति का संगम उपस्थित हो गया। राम भक्ति और कृष्ण-भक्ति की दो प्रबल धाराएँ प्रकट हुईं। रामानुजाचार्य की शिष्य-परम्परा में रामानंद जी ने विष्णु के अवतार राम की उपासना पर बल दिया और एक बहुत ही शक्तिशाली सम्प्रदाय खड़ा कर दिया। दूसरी ओर वल्लभाचार्य जी ने प्रेम-मूर्ति श्रीकृष्ण की उपासना के आधार पर एक अन्य सशक्त सम्प्रदाय प्रतिष्ठित किया और उत्तर भारत की जनता को रस-मग्न कर दिया। इन भक्त आचार्यों ने ब्रह्म के 'सत्' और 'आनन्द' स्वरूप का साक्षात्कार किया। इस प्रकार प्राचीन वैदिक-पौराणिक पद्धति की सगुणोपासना का काव्य-क्षेत्र तैय्यार हुआ।

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध भक्त नामदेव १३ वीं शताब्दी में हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्ति-मार्ग का आभास दे चुके थे। उनके बाद उत्तर भारत में १४ वीं शताब्दी में कबीरदास ने विशेष तत्परता के साथ व्यवस्थित रूप से 'निर्गुण पंथ' का प्रवर्तन किया। कहने की आवश्यकता नहीं है कि नाथपंथी योगियों द्वारा प्रशस्त निर्गुण मार्ग ने कबीरदास के कार्य को बहुत कुछ सुगम बना दिया। नाथपंथी योगियों की भांति कबीर ने बाह्य विधि-विधानों को व्यर्थ बता कर अंतर-साधना पर जोर तो दिया, परन्तु उनकी भाँति प्रेम तत्व का तिरस्कार नहीं किया।

कबीरदास स्वामी रामानंद जी के शिष्य थे। अतः उनके ऊपर वैष्णव धर्म का भी प्रभाव पड़ा। कबीर के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बहुत ठीक लिखा है कि "ईश्वर पूजा की उन भिन्न-भिन्न बाह्य विधियों पर से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्यान हटाकर, जिनके कारण धर्म में भेद-भाव फैला हुआ था, ये शुद्ध ईश्वर-प्रेम और सात्त्विक जीवन का प्रचार करना चाहते थे।"

भक्ति-काव्य के रूप—उपर्युक्त विवेचन का सारांश यह है कि विक्रम की १४ वीं शताब्दी में भक्ति काव्य दो धाराओं में प्रवाहित हुआ—(क) निर्गुण काव्य धारा और (ख) सगुण-काव्य-धारा ! प्रत्येक धारा दो उपधाराओं में विभक्त हुई । निर्गुण धारा की दो उपधाराएँ हुईं—(i) ज्ञानाश्रयी काव्य धारा तथा (ii) प्रेमाश्रयी काव्य धारा । सगुण धारा के दो रूप ये हुए—(i) राम-काव्य धारा तथा (ii) कृष्ण-काव्य धारा ।

निर्गुण काव्य धारा की ज्ञानाश्रयी काव्य धारा का मुख्य उद्देश्य पारस्परिक भेद भाव को मिटाना था । कवीर, दादू. पीपा, मलूकदास आदि इस वर्ग के प्रमुख भक्त कवि थे । इन कवियों ने ईश्वर की एकता पर वल दिया तथा वहुदेवोपासना, मूर्ति पूजा, रोजा-नमाज आदि वाह्योपचारों का डट कर विरोध किया ।

निर्गुण काव्य धारा के प्रेमाश्रयी काव्य लिखने वालों में मुसलमान सूफी कवि आते हैं । मंझन, मलिक मोहम्मद जायसी, कुतुवन आदि इनमें मुख्य हैं । इस काव्य धारा के कवियों ने भी हिन्दू और मुसलमानों के पारस्परिक अन्तर को मिटाने का प्रयत्न किया । इन कवियों ने हिन्दू समाज में प्रचलित प्रेम कहानियाँ लीं और उनमें सूफी धर्म के सिद्धान्तों का रंग भर कर प्रेम-काव्यों की रचना की । इन कवियों के प्रेमाख्यानक प्रवन्ध काव्यों में लौकिक प्रेम के माध्यम से पारलौकिक प्रेम का निरूपण किया गया है ।

ज्ञानाश्रयी काव्य धारा के कवि वाह्याडम्वरों के लिए डाट-फटकार करके यदि हिन्दू-मुसलमानों के बीच का अंतर कम करना चाहते थे, तो सूफी कवि प्रेम की पीर के द्वारा उन्हें एक दूसरे के निकट लाने को उत्सुक थे । इन प्रेम-काव्यों में मुसलमान प्रेम की पीर का संदेश पाते थे और हिन्दुओं को अपने घरों में कही-सुनी जाने वाली कहानी सुनाई देती थी ।

सगुण भक्ति काव्य धारा का मुख्य लक्ष्य हिन्दू समाज का उद्धार करना था । निर्गुण मार्गी काव्य धारा के कवि हिन्दुओं और मुसलमानों को निकट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ला रहे थे। परन्तु अपने पौरुष से हताश एवं भविष्य के प्रति निराश हिन्दू समाज के लिए अवलम्बन की आवश्यकता ज्यों की त्यों वनी हुई थी। वह अपने पौरुष के प्रति आश्वस्त नहीं रह गया था और भगवान के प्रति उसके मन में विश्वास नहीं रह गया था। हिन्दू समाज की इस मर्मान्तिक पीड़ा का अनुभव गोस्वामी तुलसीदास ने किया और राम कथा को लेकर उन्होंने राम-काव्य का प्रणयन किया। 'रामचरित मानस' में उन्होंने भगवान के अवतार-वाद की प्रतिष्ठा की। "प्रथम सो कारण कहहु विचारी निर्गुण ब्रह्म सगुण वपुधारी"—का वार-वार उत्तर देकर अवतारवाद का वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक विवेचन किया। फल हुआ कि हिन्दू समाज को विश्वास हो गया कि रावण-राज्य का अन्त होकर राम-राज्य की स्थापना अवश्य ही होगी। अधर्म के ऊपर धर्म की विजय के प्रति आश्वस्त हिन्दू समाज की खिन्नता या उदासी राम भक्ति-सुरसरिता के प्रवाह में बह गई और वह निराश नहीं रही। दूसरी ओर सगुण काव्य धारा के अन्तर्गत वल्लभाचार्य जी के प्रभाव से कृष्ण-काव्य-धारा को प्रेरणा प्राप्त हुई और सूरदास प्रभृति अनेकानेक कृष्ण भक्त कवियों का उदय हुआ। इन्होंने अपने मधुर काव्य संगीत के माध्यम से श्रीकृष्ण के रूप में विष्णु के अवतार का हंसता खिलता स्वरूप प्रस्तुत करके हिन्दू समाज के मन मानस को सरस सुहावना वनाया और उसको प्रफुल्लित किया। इस प्रकार सगुण काव्य धारा के इन भक्त-कवियों ने एक वहुत वड़ी मनोवैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति की।

निष्कर्ष—धर्म के मार्ग से हिन्दू समाज को विचलित करने वाली अनेक शक्तियाँ उस समय वलवती हो रही थीं। निर्गुण भक्त-कवियों ने इन विरोधी शक्तियों का विरोध किया तथा सगुण भक्त कवियों ने सृजनात्मक स्वरूप प्रस्तुत करके नव-समाज के निर्माण की प्रेरणा प्रदान की। यह कहना कठिन है कि भक्त कवियों के अभाव में तत्कालीन भारतीय समाज की तथा विशेष रूप से हिन्दू समाज की क्या दशा होती?

भक्ति-काल की काव्य धाराओं के मूल में भारतवर्ष की अविच्छिन्न सांस्कृतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक भाव-धारा थी। उपयुक्त अवसर प्राप्त करके वह भक्ति-काव्य के रूप में प्रकट हुई। अतः हम यह निस्संकोच कह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकते हैं कि "हिन्दी साहित्य का भक्ति-काव्य अपने युग के सर्वथा अनुरूप था।"

प्रश्न ४—उत्तर भारत में भक्ति के उद्‌भव और विश्वास के सम्बन्ध में प्रचलित विभिन्न मतों का उल्लेख कीजिए तथा सगुण भक्ति के तत्वों का वर्णन कीजिए।

उत्तर—मुसलमानों के शासन की प्रतिष्ठा के साथ ही उत्तर भारत की परिस्थितियों में परिवर्तन हो गया। युद्ध एवं संघर्ष का वातावरण हल्का हो गया और सुरक्षा एवं शान्ति की व्यवस्था होने लगी। परिवर्तित परिस्थितियों से प्रभावित होकर काव्य का क्षेत्र बदल गया। वीरगाथाकालीन भावना लुप्त हो गई, विदेशी शासकों के अत्याचारों में वृद्धि हो गई और कवियों का राज्याश्रय समाप्त हो गया। काव्य का स्थान राज्य-दरबार से हटकर साधु-संत की कुटिया हो गया और कविजन आश्रयदाता राजाओं के प्रशस्ति गान के स्थान पर भगवान का गुण-गान एवं स्तवन करने लगे। भारतवर्ष की प्राचीन आध्यात्मिकता जो काल की कठोरता के कारण दब गई थी, इन संत एवं भक्त कवियों का सहयोग प्राप्त करके पुनः उभर आई। हिन्दी का यह काव्य-काल भक्ति-काल कहा जाता है। कबीर, दादू जैसे संत कवि तथा सूरदास, तुलसीदास, प्रभृति भक्त कवि इसी युग की देन हैं।

यह प्रश्न पुनः उत्पन्न होता है कि भक्ति कालीन काव्य के उदय का प्रेरणा-स्रोत क्या था? उसके मूल में क्या तत्कालीन परिस्थितियाँ ही थीं—अथवा कोई अन्य प्रेरणा थी? हमारा उत्तर स्पष्ट है। भारतवर्ष में आध्यात्म-चिन्तन और भक्ति की परम्पराएँ अत्यन्त प्राचीन हैं। संस्कृत ग्रन्थ उनसे भरे पड़े हैं। परिस्थितियों वश—विशेष कर उत्तर भारत में—वे परम्पराएँ कुछ समय तक क्षीण हो गयी थीं। उपयुक्त वातावरण उपलब्ध होते ही वे पुनः उभर आयीं। अस्तु।

भक्ति काल के उदय के मूल में प्रायः दो प्रकार के कारण माने जाते हैं। भारतीय विद्वान प्रायः इसके मूल में मुसलमान शासकों के अत्याचार मानते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। विदेशी विद्वान इसको ईसाई धर्म की देन मानते हैं। हम इन दोनों कारणों की परीक्षा करते हैं।

भक्तिकालीन भक्ति एवं चिन्तन की इस प्रवल धारा के प्रति आश्चर्य चकित होकर ग्रियर्सन महोदय ने लिखा है कि 'हम अपने को ऐसे धार्मिक आन्दोलन के सामने पाते हैं जो उन सब आन्दोलनों से कहीं अधिक व्यापक और विशाल है जिन्हें भारतवर्ष ने कभी देखा है। इस युग में धर्म-ज्ञान का नहीं वल्कि भावावेश का विषय हो गया था। विजली की चमक के समान समस्त पुराने धार्मिक मतों के अन्धकार के ऊपर एक नई वात दिखाई दी। कोई हिन्दू यह नहीं जानता कि यह बात कहाँ से आई।

प्रकारान्तर से ग्रियर्सन महोदय यह कहना चाहते थे कि हमारी भक्ति-कालीन भक्ति-भावना ईसाई धर्म की देन थी। नवीनतम खोजों के द्वारा यह मत निराधार सिद्ध हो चुका है। हम आगे चलकर स्पष्ट कर देंगे कि भक्ति की धारा भारतीय जन-जीवन एवं काव्य-क्षेत्र में अविच्छिन्न रूप से व्याप्त थी। वह प्रच्छन्न अवश्य हो गई थी, परन्तु निर्मूल नहीं हो पाई थी। भारत में जब भक्ति का उदय हुआ तव ईसाई धर्म का अस्तित्व नहीं था।

भक्तिकाल के उदय का अन्य कारण यह वताया जाता है कि मुसलमानों के सामने हिन्दुओं ने घुटने टेक दिए थे। वे सर्वथा असहाय अनुभव करने लगे थे। उनका जीवन सर्वथा निराशापूर्ण हो गया था। दीन रक्षक भगवान की शरण के अतिरिक्त उनके सम्मुख कोई अन्य चारा ही नहीं रह गया था। अतः हिन्दू समाज के जीवन के प्रति निराशा के कारण ही भक्तिकाल का उदय हुआ। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल जैसे विद्वान ने भी यह लिख दिया है कि "अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था ?"

परन्तु यह कहना कि तत्कालीन परिस्थितियों के कारण भक्तिकाल का प्रणयन हुआ, हमारे विचार से भ्रान्तिकारी है, क्योंकि जव उत्तर भारत में यवनों के अत्याचार हो रहे थे, उस समय दक्षिण भारत में भक्ति की धारा अबाध गति से प्रवाहित हो रही थी। नामदेव, विष्णु स्वामी, निम्वार्क, मध्वाचार्य और वैष्णव आचार्य भक्ति की धारा को वेगवती वना रहे थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहने की आवश्यकता नहीं है कि दक्षिण भारत में न ईसाई थे और न वहाँ मुसलमानों के अत्याचार ही हो रहे थे। वह भूखण्ड सर्वथा निरापद सुरक्षित एवं विदेशी प्रभाव से युक्त था। तत्कालीन धार्मिक परिस्थितियों का वर्णन करते हुए आचार्य रामचन्द्र ने जो कुछ लिखा है उसके द्वारा भक्ति-काल का स्वरूप वहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है—"वज्रयानी सिद्ध कापालिक देश के पूर्वी भागों में और नाथपंथी जोगी पश्चिमी भागों में रमते चले आ रहे थे। सामान्य जनता की धर्म-भावना दवती चलती जा रही थी। उस समय सच्चे धर्म भाव का बहुत कुछ ह्रास होगया था। परिवर्तन के लिए वहुत कड़े वक्कों की आवश्यकता थी।"

इस आवश्यकता की पूर्ति गोस्वामी तुलसीदास ने अपने राम-काव्य के प्रणयन द्वारा की। "रावण के शासन की अनीतियों से तुलसीदास ने अपने समय में यवनों की राजनीतिक अनीतियों का संकेत वड़े कौशल से किया है। × × राजनीति की इन दुःख पूर्ण परिस्थितियों से ऊवकर तुलसीदास ने अनेक स्थलों पर राजनीति के आदर्शों का निरूपण किया है।" (डा० रामकुमार वर्मा)

अतः स्पष्ट है कि तत्कालीन परिस्थितियों द्वारा भक्ति-भावना को वल अवश्य प्राप्त हुआ, परन्तु उनके कारण उसका उदय नहीं हुआ। भक्ति का उद्गम स्थल दक्षिण भारत था वहाँ मुसलमानों के प्रभाव की हवा भी नहीं थी। दूसरी बात यह है कि नाथपंथी जोगियों का प्रभाव वहुत पहले से चला आता था। उनका शैवधर्म पर्याप्त प्रभावशाली था। तीसरी वात यह है कि मध्य कालीन भक्ति की धारा विजली की चमक के समान अचानक उत्पन्न नहीं हुई। यह धारा कम से कम छः सौ वर्ष पूर्व से निरन्तर वढ़ती हुई चली आ रही थी। दसवीं शताब्दी तक उत्तर भारत में पुराणों में निरूपित भक्ति-भावना भली प्रकार प्रविष्ट हो चुकी थी। श्री मद्भागवत का मुख्य प्रतिपाद्य विषय एकान्त भक्ति है। भक्त भगवान के चरित्र का अनुशीलन किसी अन्य उद्देश्य से नहीं करते, भक्ति की प्राप्ति के उद्देश्य से ही करते थे। हिन्दी के भक्त-काल में इसी एकान्तिक भक्ति का स्वर प्रवल रहा। तुलसी, सूर प्रभृति भक्त कवियों ने भक्ति के सम्मुख कैवल्य या अपुनर्भव को तुच्छ समझा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्पष्ट है कि भक्ति-काल की भक्ति का स्वरूप नवीन न होकर प्रायः परम्परागत था—कम से कम इतना पुराना जितना पुराना श्रीमद्भागवत् ।

प्रतिभाशाली कवियों को धार्मिक संकीर्णता अव्यावहारिक एवं अरुचिकर प्रतीत हुई। उन्होंने शुद्ध आध्यात्मिकता के बल पर इस संकीर्णता को दूर करने का प्रयत्न किया। इसके लिए उन्होंने शास्त्रों के बन्धनों को अस्वीकार किया। इनका लक्ष्य समाज में व्याप्त वैषम्य को दूर करके सामंजस्य स्थापित करना था। कवि हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति एवं धार्मिक भावना में समन्वय स्थापित करना चाहते थे। कवीर आदि संत कवियों की वानी और जायसी प्रभृति सूफी कवियों के प्रवन्ध-काव्य इसके प्रमाण हैं। तुलसी, सूर आदि भक्त कवियों ने भी पारस्परिक वैमनस्य और साम्प्रदायिक संकीर्णता को दूर करने का उपदेश दिया। इन्होंने पापी के प्रति सहिष्णुता तथा पाप के प्रति उदासीनता का पाठ पढ़ाया।

दक्षिण के विद्वानों ने शांत वातावरण में आध्यात्मिक तत्वचिन्तन किया। रामानुजाचार्य के साथ ये भाव उत्तर भारत में आए। इनमें पश्चात् चैतन्य महाप्रभु ने बंगाल में और वल्लभाचार्य जी ने व्रज मण्डल में सरस कृष्ण भक्ति का प्रचार किया। इनसे प्रेरणा ग्रहण करके क्रमशः तुलसी और सूर ने सगुण भक्ति काव्य की दो धाराओं—राम काव्य धारा और कृष्ण काव्यधारा का प्रवर्त्तन किया, जो आज तक अवाध गति से चली आ रही है। कवीरदास ने नाथ पंथियों से प्रभावित होकर और रामानंद जी का शिष्यत्व स्वीकार करके प्रेम-भाव से विमुख और भक्ति भाव से शून्य जनता के उद्धार के लिए अपना कवीर पंथ खड़ा किया।

सारांश यह है कि भक्ति-काल की भक्ति की भावना न तो ईसाइयत की देन थी और न तत्कालीन राजनीतिक उत्पीड़न एवं धार्मिक अत्याचार का परिणाम मात्र थी। तत्कालीन परिस्थितियाँ उनकी अवतार-भावना को परि-पुष्ट करने में निस्संदेह सहायक हुईं। भक्ति-काल की समस्त काव्यधाराओं के मूल में भारतवर्ष की अविच्छिन्न सांस्कृतिक धार्मिक एवं आध्यात्मिक भाव-धारा थी। अनुकूल परिस्थितियों में वह स्वाभाविक विकास को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राप्त हुई। अतः भक्ति-काव्य की सगुण भक्ति के प्रमुख तत्त्व निम्नलिखित प्रकार हैं :—

(१) मध्य काल की भक्ति-भावना में अवतार की कल्पना प्रमुख रही। सगुण-मार्गी भक्तों का ईश्वर धर्म-स्वरूप हुआ। यह भक्ति मार्ग ईश्वर के लोक-रक्षक और लोक रंजक रूप को लेकर उठी। वैष्णव-भक्ति का प्राचीन रूप राम भक्ति-शाखा के काव्य में अभिव्यक्त हुआ।

(२) कृष्ण भक्ति शाखा के काव्य के अन्तर्गत ईश्वर के प्रेम स्वरूप पर विशेष वल दिया गया।

(३) भक्ति काल के सगुण भक्त कवियों ने श्रीं मद्भागवत् में प्रतिपादित एकान्तिक भक्ति का ही प्रतिपादन किया। उनके लिए भगवद् भक्ति का चरम फल भक्ति का ही है, कैवल्य, मोक्ष अथवा अपुनर्भव नहीं। इनकी दृष्टि में भगवान के अवतार का मुख्य हेतु भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए लीला का विस्तार करना ही है।

(४) संत कवियों के काव्य में भक्ति और ज्ञान का योग तो हुआ, परन्तु कर्म पक्ष अथवा धर्म पक्ष प्रायः उपेक्षित ही रहा। इनका ईश्वर ज्ञान-स्वरूप था। कभी-कभी वह प्रेम-स्वरूप भी था। परन्तु वह धर्म-स्वरूप नहीं वन पाता था। सगुण भक्त कवियों ने इस कमी को पूरा किया। इन्होंने ईश्वर के 'सच्चिदानन्द' स्वरूप की पूर्ण प्रतिष्ठा की। इनका ईश्वर ज्ञान-स्वरूप एवं प्रेम स्वरूप होने के अतिरिक्त कर्म और धर्म का भी साक्षात् अवतार था।

(५) निर्गुण भक्ति मार्ग के अन्तर्गत ईश्वर की एकता के साथ मनुष्य मात्र की समानता का प्रतिपादन किया गया था। 'जाति-पाँति' पूछे न कोई। हरि को 'भजै, सो हरि को होई' आदि के काव्यों द्वारा इन कवियों ने ऊँच-नीच का भेद-भाव त्यागने की प्रेरणा प्रदान की थी। श्री रामानन्द जी ने उक्त भाव का सूत्रपात शक्ति सगुण भक्ति-मार्ग में किया और परवर्ती सगुण कवियों ने इस भावना को सहर्ष हृदयंगम किया, और शुद्ध ईश्वर प्रेम के साथ सात्त्विक जीवन की शिक्षा दी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीवन-वृत्त एवं व्यक्तित्व

प्रश्न ५—आधुनिक अनुसंधानों के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर प्रकाश डालिए।

अथवा

प्रश्न ६—अन्तः साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी सम्बन्धी तथ्यों को प्रस्तुत कीजिए।

अथवा

प्रश्न ७—तुलसी की जीवनी निम्नलिखित आदर्शों पर प्रस्तुत कीजिए—जन्म स्थान, माता-पिता और कुल, शिक्षा-दीक्षा, पर्यटन और आयु।

उत्तर—तुलसीदास जी का जीवन-वृत्त विवादास्पद है—गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-चरित्र सम्पूर्ण रूप से प्रामाणिक होकर अभी तक प्रस्तुत नहीं किया जा सका है। इनकी जीवनी के सम्वन्ध में कई वर्षों से काम हो रहा है, परन्तु निश्चित निष्कर्ष अभी तक उपलब्ध नहीं हो सके हैं

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त के शोध-कर्त्ता—सर जार्ज ग्रियर्सन ने सर्वप्रथम आधुनिक वैज्ञानिक ढंग पर गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी पर प्रकाश डाला। ग्रियर्सन साहब ने रामगुलाम द्विवेदी और महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर द्विवेदी से सहायता ली। इसके वाद अनेक देशी-विदेशी विद्वानों ने इस दिशा में कार्य किया। इन विद्वानों में एच. एच. विल्सन, गार्सीदतासी, एफ. एस. ग्राउस, शिवसिंह सेंगर, ई. ग्रीव्ज, इण्डियन प्रेस से प्रकाशित 'मानस' की भूमिका के लेखक लाला सीताराम, इन्द्रदेव नारायण एवं शिवनन्दन सहाय, तुलसी ग्रन्थावली तृतीय भाग के सम्पादकगण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामकिशोर शुक्ल, श्यामसुन्दरदास एवं पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, गोविन्द भट्ट (सोरों) गौरीशंकर द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी, रामदत्त भारद्वाज, भद्रदत्त शर्मा, दीनदयालु गुप्त तथा माताप्रसाद गुप्त के नाम उल्लेखनीय हैं।

गोस्वामीजी का जीवन-वृत्त अभी तक विवादास्पद है—अभी तक की गई खोजों का विवरण और उनके आधार पर उपलब्ध निष्कर्ष का विवेचन यहाँ किया जाता है।

गोस्वामी जी के जीवन से सम्बन्धित उपलब्ध सामग्री—इसे हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—

(क) **अन्त: साक्ष्य**—गोस्वामी जी द्वारा लिखित ग्रन्थों में उपलब्ध सामग्री। इनके द्वारा विरचित रामचरित मानस, विनयपत्रिका, कवितावली, दोहावली, बरवै रामायण, पार्वती मंगल और हनुमान वाहुक में तुलसी की जीवनी सम्वन्धी संकेत प्राप्त होते हैं।

(ख) **बहिर्साक्ष्य**—(i) तुलसीदास जी के समकालीन और परवर्ती कवियों एवं लेखकों की रचनाओं में उपलब्ध संकेत और सामग्री तथा (ii) विभिन्न स्थानों से सम्वन्धित सामग्री।

(i) **ग्रन्थ**—इस सामग्री के अन्तर्गत मुख्य ग्रन्थ ये हैं—भक्तमाल, भक्ति रस बोधिनी (भक्तमाल की टीका), दो सौ वावन वैष्णवन की वार्ता, मूल-गोसाईं चरित, तुलसी चरित, तुलसी साहिव लिखित आत्म चरित, तुलसीदास स्तक तथा भविष्य पुराण इन ग्रंथों में अधिकांश की प्रामाणिकता संदिग्ध है और इनके द्वारा तुलसीदास के जीवन सम्वन्धी तथ्यों पर वहुत कम प्रकाश पड़ता है। इन समस्त ग्रन्थों में संवत् १६८७ में वावा वेणी माधव द्वारा विरचित 'मूलगोसाईं चरित' सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में गोस्वामी तुलसीदास का जीवन-वृत्त सिलसिलेवार तिथियों के आधार पर दिया गया है। डाक्टर श्यामसुन्दरदास और डाक्टर पीताम्वरदत्त बड़-थ्वाल ने इस ग्रन्थ को प्रामाणिक माना है। डा० श्यामसुन्दरदास ने इसके आधार पर अपने ग्रन्थ 'तुलसीदास' में ये मान्यताएँ स्थापित कीं—गोस्वामी जी का जन्म श्रावण शुक्ला सप्तमी संवत् १५५४ को राजापुर में हुआ। इनकी माता का नाम हुलसी था, इनका स्वयं का नाम रामवोला था। संवत् १५८३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में इनका विवाह हुआ और संवत् १६८० में गंगातीर असीघाट पर श्रावण कृष्णा ३ शनिवार को गोस्वामीजी ने महाप्रस्थान किया। डा० माताप्रसाद गुप्त ने इस ग्रन्थ को प्रामाणिक नहीं माना है। उनका कथन है कि गणना के अनुसार इन तिथियों में तथा अन्तर्साक्ष्य के आधार पर उपलब्ध तिथियों में संगति नहीं बैठती है। अस्तु ! इन ग्रन्थों के अतिरिक्त रामनरेश त्रिपाठी ने कुछ अन्य ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। ये हैं—प्रियादास कृत भक्तमाल की टीका (भक्ति रस बोधिनी, संवत् १७६९ के आधार पर निर्मित तीन पुस्तकें—भक्त-कल्पद्रुम भक्तमाल एवं रासरसिकावली ; शिवसिंह सरोज, रानी कमल कुँवरि देवजू द्वारा लिखित गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित, तथा बैजनाथ कुरमी द्वारा लिखित गोस्वामी जी का जीवन चरित। यहाँ यह वता देना आवश्यक है कि सर जार्ज ग्रियर्सन द्वारा लिखित **Notes on Tulsidas** इस विषय की वहुत ही महत्त्वपूर्ण सामग्री है।

(ii) विभिन्न स्थानों से सम्बन्धित सामग्री

काशी की सामग्री—काशी में तुलसीघाट, प्रहलादघाट, गोपाल मन्दिर आदि कुछ ऐसे स्थान हैं जिनका सम्वन्ध गोस्वामी के साथ वताया जाता है। यहाँ तीन अन्य महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं—

(क) संवत् १६६९ में लिखा हुआ पंचायत नामा।

(ख) संवत् १६४१ में लिखित वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड की एक प्रति। तथा

(ग) संवत् १६६६ में लिखी हुई विनयपत्रिका की एक प्रति।

अयोध्या की सामग्री—यहाँ दो वस्तुएँ प्राप्त होती हैं—

(क) तुलसी-चौरा और उससे सम्बन्धित जनश्रुतियाँ।

(ख) संवत् १६६१ में लिखी हुई 'मानस' के वालकाण्ड की हस्तलिखित प्रति। यह श्रावण कुंज में सुरक्षित है।

राजापुर की सामग्री—

(क) तुलसीदास जी का तथाकथित मकान।

(ख) पं० मुन्नीलाल उपाध्याय के पास सुरक्षित गोस्वामी जी द्वारा 'मानस' की प्रति।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ग) गोस्वामी जी की प्रस्तर मूर्ति। तथा

(घ) राजापुर के मुआफीदारों को मिली हुई दो सनदों का उल्लेख।

इनमें गोस्वामी जी की शर्तें तथा सनदों को प्राय: प्रामाणिक माना गया है।

सोरों की सामग्री—सोरों तथा उसके आसपास प्राप्त सामग्री कई प्रकार की है—

(क) मानस के वालकाण्ड की तथा अरण्यकाण्ड की एक-एक प्रति

(ख) रत्नावली लघु दोहा संग्रह की दो प्रतियाँ.

(ग) दोहावली रत्नावली की एक प्रति।

(घ) कृष्णदास रचित 'सूकर क्षेत्र माहात्म्य भाषा,।

(ङ) मुरलीधर चतुर्वेदी कृत रत्नावली।

(च) तुलसीदास का तथाकथित स्थान (अवशेष)

(छ) तुलसीदास के भाई नन्ददास के उत्तराधिकारी।

(ञ) नर्रासह जी का मन्दिर। तथा

(झ) नर्रासह जी चौधरी के उत्तराधिकारी।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने इस सामग्री का अध्ययन करके लिखा है कि "सोरों से प्राप्त कुल सामग्री में गोस्वामी जी के जीवन से सम्वन्ध रखने वाली तिथियाँ केवल तीन मिलती हैं—विवाह तिथि, द्विरागमन तिथि और गृह-त्याग तिथि। यह तिथियाँ हमको दोहा रत्नावली के दोहों से मिलती हैं।"

(ग) जन श्रुतियाँ एवं किंवदन्तियाँ—गोस्वामी तुलसीदास के जीवन से सम्वन्धित अनेक जनश्रुतियाँ हैं। इनके आधार पर गोस्वामी जी के जीवन से सम्बन्धित अनेक वातें मान्य भी हो गई हैं। जनश्रुति तुलसी का जन्म संवत् १५८९ मानती है। जनश्रुति के अनुसार तुलसीदास जी के पिता का नाम आत्माराम दुवे, माता का नाम हुलसी और कुल सरयूपारीण व्राह्मण था। जनश्रुति इनका जन्मस्थान राजापुर मानती है। इनकी मृत्यु के सम्वन्ध में जनश्रुति से चला आया हुआ यह दोहा अत्यन्त प्रसिद्ध है—

संवत् सोरह सौ असो, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यौ सरीर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपलब्ध उपर्युक्त सामग्री के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास के जीवन सम्बन्धी तथ्यों की स्थापना

जन्म-काल—तुलसीदास जी की जन्म तिथि के सम्वन्ध में मुख्यतः तीन मत हैं—

(i) श्रावण शुक्ला सप्तमी, संवत् १५५४। 'मूलगोसाईं चरित' के लेखक वेणीमाधवदास, आचार्य पं० रामचंद्र शुक्ल, डा० श्यामुन्दरदास तथा नन्दन पाठक ने संवत् १५५४ को गोस्वामी जी का जन्म काला माना है।

(ii) संवत् १५८३। 'शिवसिंह सरोज' के अन्तर्गत शिवसिंह सेंगर ने तुलसी का जन्म काल संवत् १५८३ माना है।

(iii) संवत् १५८९ शिवसिंह सेंगर, संत तुलसी साहिव, डा० ग्रियर्सन, रामगुलाम द्विवेदी, रामनरेश त्रिपाठी तथा डा० माताप्रसाद गुप्त ने तुलसी का जन्मकाल भाद्रपद शुक्ला ११, संवत् १५८९ माना है।

इन विद्वानों के अनुसार गणना से यह तिथि ठीक वैठती है। जनश्रुति भी इसका समर्थन करती है।

इस प्रकार तुलसी की जन्म तिथि के सम्वन्ध में मुख्य दो मत हैं— भादों शुक्ला ११, संवत् १५८९ तथा श्रावण शुक्ला ७ संवत् १५५४। हमारे विचार से रामचरित मानस जैसा प्रौढ़ ग्रन्थ सत्तर पचहत्तर वर्ष की प्रौढ़ावस्था में ही लिखा जा सकता था। साथ ही १२५ वर्ष की आयु उन जैसे सिद्ध एवं पवित्र चरित्र व्यक्ति के सर्वथा अनुरूप ही है। अतः संवत् १५५४ को गोस्वामी जी का जन्मकाल मान लेने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

माता-पिता—गोस्वामी तुलसीदास की माता का नाम हुलसी था— इसमें किसी को आपत्ति नहीं है। 'रामचरित मानस' में कई स्थानों पर हुलसी शब्द का प्रयोग हुआ है। रहीम का दोहा इस सम्बन्ध में प्रमाण है—

सुरतिय नरतिय नागतिय अस चाहति सब कोय।
गोद लिये हुलसी फिरे तुलसी सो सुत होय।

पिता के नाम के सम्वंध में तीन मत हैं। कोई रुद्रनाथ मिश्र वताते हैं, कोई परशुराम मिश्र और कोई आत्माराम दुवे। सोरों से प्राप्त सामग्री के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुसार इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे था। यही मत अधिकांशतः मान्य है।

नाम—विद्वानों के मतानुसार इनका मूल नाम 'तुलसी' रहा होगा। बाद में दीक्षित होने पर इनका नाम तुलसीदास हो गया होगा—

नाम तुलसी भौंड़े भाग सो कहायो दास।
कियो अंगीकार ऐसे बड़े दगा बाज को'।

(कवितावली उत्तर काण्ड १३)

'राम बोला' नाम इनको सम्भवतः अपने स्वामी द्वारा प्राप्त था। यह सम्भवतः इनका आध्यात्मिक नाम था।

राम को गुलाम नाम राम बोला राख्यो राम।
काम यहै नाम द्वै हौं कबहुं कहत हौं।

(विनयपत्रिका, ७६)

तथा 'राम बोला नाम हौं गुलाम राम साहि कौ।

(कवितावली, उत्तरकांड, १००)

गुरु—परम्परा के अनुसार गोस्वामी तुलसीदास के गुरु का नाम नरहरिदास है, जिन्होंने इनको शूकर क्षेत्र में रास कथा सुनाई थी।

वर्ण, (जाति, कुल)—तुलसीदास जी ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे, इसमें किसी को सन्देह नहीं है। कुल लोग इनको कान्यकुब्ज कुछ लोग सनाढ्य, कुछ सारस्वत तथा कुछ लोग इन्हें सरयूपारीण मानते हैं।

इस सम्वन्धं में अन्तिम निर्णय करना सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रत्येक पक्ष के समर्थन में प्रवल तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं। परन्तु फिर भी एक बात द्रष्टव्य है। हम इनके पिता का नाम आत्माराम दुवे मान आए हैं। अतः इनका 'दुवे' होना वहुत सम्भव है। इस प्रकार डा० श्यामसुन्दरदास का यह कथन सर्वथा संगत प्रतीत होता है कि, "तुलसीदास जी सरयूपारीण और सम्भवतः द्विवेदी थे।"

जन्म स्थान—तुलसीदास जी कहां प्रकट हुए थे, यह सर्वाधिक विवाद का विषय है। फ्रासीसी विद्वान गसीदतासी और अंग्रेज विल्सन ने हाजीपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को गोस्वामी जी का जन्म स्थान माना है। महात्मा रूपकलजी, लाला सीताराम तथा अन्य अनेक विद्वान सोरों को यह गौरव प्रदान करते हैं। कुछ विद्वान हस्तिनापुर को उनका जन्म-स्थान बताते हैं। कुछ विद्वान राजापुर को उनका जन्मस्थान मानते हैं। इनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान हैं—सोरों (जला एटा) और राजापुर (जि० बाँदा) इन्हीं के सम्वन्ध में सर्वाधिक मतभेद चला आ रहा है। यह विषय अभी तक अनिर्णीत बना हुआ है।

पं० रामगुलाम द्विवेदी, पं० रामचन्द्र शुक्ल, लाला भगवानदीन, व्रजरुत्नदास, पं० रामवहोरी शुक्ल आदि विद्वान राजापुर को गोस्वामी जी का जन्म स्थान मानते हैं। इन लोगों ने जो तर्क दिए हैं उनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बातें तीन हैं—(क) भाषा के आधार पर यह कहा जा सकता है उनकी कुमार अवस्था राजापुर में व्यतीत हुई थी। (ख) राजापुर में गोस्वामीजी की कुटी, मन्दिर आदि जो हैं, उनके विरुद्ध प्रमाण न मिलने तक राजापुर को ही उनका जन्म स्थान मानना चाहिए। तथा (ग) अयोध्या से ही यमुना जी पहुँचने तक गोस्वामी जी कहीं भी इस प्रकार भावावेश में नहीं आए जिस प्रकार यमुना जी के पार करने पर आ गए। इसी प्रदेश में राजापुर है और जन्मभूमि के अनुराग ही से गोस्वामी जी ने ग्रामवामी स्त्री पुरुष आदि का मार्मिक और अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन अपनी अलौकिक अनुभूति से इसी प्रदेश से सम्वन्धित किया है। सोरों के पक्ष का समर्थन करने वाले विद्वानों में पं० रामनरेश त्रिपाठी का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उनका कहना है कि विनयपत्रिका, गीतावली, कवितावली और दोहावली में प्रयुक्त भाषा के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि गोस्वामी जी का बाल्यकाल सोरों में ही व्यतीत हुआ था। इसके अतिरिक्त सोरों के आसपास मुसलमानों की बस्ती भी है। वृद्धजन सोरों में उनकी कुटी बताते हैं। जन श्रुति के आधार पर तुलसीदास गंगा पार करके ससुराल गये थे। राजापुर में यमुना है। सोरों में गंगा है। गोस्वामी जी ने 'विनयपत्रिका में लिखा है कि—

यह भरतखंड समीप सुरसरि थल भलो सगति भली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके आधार पर सोरों निवासी पं० भद्रदत्त वैद्यभूषण ने लिखा है कि—'सुरसरि के समीप का स्थान उनका जन्म स्थान हो सकता है, अन्य काशी इत्यादि वैराग्यकालिक निवास स्थान नहीं।'' अस्तु

डा० माताप्रसाद गुप्त ने दोनों पक्षों के तर्कों का वैज्ञानिक समीक्षण-परीक्षण किया है। उन्होंते बाँदा के गजेटियर तथा राजापुर एवं सोरों में प्रचलित जनश्रुतियों की समीक्षा की है। उनका निष्कर्ष इस प्रकार है, "दोनों पक्षों के प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर यह कहना कठिन है कि दोनों में से कौन सा स्थान कवि का जन्म-स्थान है। यह भी सर्वथा असम्भव नहीं कि कोई तीसरा स्थान इस पुनीत पद का अधिकारी हो। यह अवश्य निश्चित जान पड़ता है कि गोस्वामी जी वहुत समय तक राजापुर में रहे और यात्रा उन्होंने कदाचित उसी सूकर क्षेत्र की थी जो सोरों कहलाता है।"

हम इसी निष्कर्ष से सहमत हैं।

बाल्यकाल—अल्पायु में ही तुलसीदास जी के माता-पिता स्वर्गवासी हो गये थे और इनको शैशवकाल में अत्यन्त भयानक दरिद्रता एवं दुःखों का सामना करना पड़ा था।

विवाह और वैराग्य—इनका विवाह रत्नावली नामक अनिंद्य सुन्दरी के साथ हुआ। इनका वैवाहिक जीवन सुखी था। यह निस्संतान थे। पत्नी के व्यंग्य के फलस्वरूप इन्होंने वैराग्य ग्रहण किया था। इस घटना का उल्लेख इनके किसी समकालीन व्यक्ति ने नहीं किया, परन्तु जनश्रुति इस सम्बन्ध में व्यापक एवं एकरूप है।

यश प्राप्ति—इनका यश दिग् दिगन्त में व्याप्त हो गया था। डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में ये "वाल्मीकि के समान पूज्य होगये थे।"

वद्धावस्था और रोग—वृद्धावस्था में तुलसीदास रोगग्रस्त हो गए इनको भयंकर वाहु पीड़ा हुई थी जिसके शमन के लिए इन्हें शिव, पार्वती, राम और हनुमान की स्तुति करनी पड़ी थी।

प्रकृति और स्वभाव—तुलसीदास जी नम्र, विनयी एवं सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। इनको राम-नाम के माहात्म्य एवं राम की कृपा में अविचल विश्वास था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निधन तिथि—गोस्वामी जी की निधन तिथि के सम्बन्ध में कोई समकालीन प्रमाण उपलब्ध नहीं है। सामान्य जनश्रुति के आधार पर इनकी निधन तिथि श्रावण शुक्ला ७, संवत् १६८० है यथा—

सवत् सोलह सौ असी असी गंग के तीर।
सावन सुक्ला सप्तमी तुलसी तजे सरीर।

'मूल गोसाई चरित्र' में निधन-तिथि सम्बन्धी दोहा इस प्रकार है—

संवत् सोलह सै असी, असी गंग के तीर।
सावन स्यामा तीज सनि तुलसी तजे सरीर!

गणना के अनुसार यही तिथि ठीक वैठती है। गोस्वामी जी के मित्र टोडरमल के वंशज इसी तिथि को कवि की वर्षी मनाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० माताप्रसाद गुप्त प्रभृति विद्वान भी इस तिथि को स्वीकार करते हैं। हमें भी यह निधन तिथि मान्य है। गोस्वामी तुलसीदास ने श्रावण कृष्णा तृतीय संवत् १६८० को अपने पार्थिव शरीर का त्याग किया।

प्रश्न ६—गोस्वामी तुलसीदास की जन्मभूमि के सम्बन्ध में विभिन्न मतों की परीक्षा करते हुए अपना मत निर्धारित कीजिए।

उत्तर—जन्म-स्थान—जन्म-तिथि की भाँति गोस्वामीजी के जन्म-स्थान के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ लोग चित्रकूट के पास हाजीपुर को गोस्वामीजी का जन्म-स्थान मानते हैं। अँग्रेज लेखक विल्सन ने इस मत का प्रवर्त्तन किया था तथा वाद में फ्रांसीसी विद्वान तासी ने इस मत का समर्थन किया था। किसी जनश्रुति के आधार पर इस मत का प्रचार किया गया होगा, ऐसा जान पड़ता है। महात्मा रूपकलाजी तथा लाला सीताराम ने तारी में उनका जन्म लेना लिखा है। कहीं-कहीं हस्तिनापुर को भी तुलसी का जन्म-स्थान बताया गया है। तुलसी के जन्म-स्थान का विषय विद्वानों का विवाद विषय वन गया है। सवसे अधिक विवाद है सोरों और राजापुर के सम्बन्ध में विद्वानों का एक वर्ग एटा जिले के सोरों को तुलसी का जन्म-स्थान मानता है और दूसरा बांदा जिले के राजापुर में तुलसी का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जन्म लेना मानता है। डा० रामकुमार वर्मा तथा पं० रामबहोरी शुक्ल ने 'राजापुर' का समर्थन किया है तथा डा० माताप्रसाद गुप्त ने उनका जन्म-स्थान निश्चित रूप में सोरों बताया है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'तुलसीदास' विषय का सविस्तार विवेचन किया है। राजापुर और सोरों दोनों से सम्बन्धित विभिन्न तर्क उन्होंने उद्धृत किये हैं। यथा—

राजापुर के समर्थन में—

(१) शिवसिंह सेंगर, पंडित रामगुलाम द्विवेदी और 'मानस' के कई एक प्राचीन टीकाकारों ने इसी स्थान को गोस्वामीजी की जन्मभूमि माना है।

(२) संत तुलसी साहिव ने अपने आपको 'मानसकार' का अवतार मानते हुए अपनी 'घट रामायण' में भी अपना पहला चोला राजापुर में ही उत्पन्न होना लिखा है।

(३) राजापुर में उपाध्याय (सरयूपारीण) ब्राह्मणों का एक वंश है। उस वंश के लोग अपने को गोस्वामीजी के शिष्य भी गणपति उपाध्याय का वंशज वताते हैं। इन वंशजों को राजापुर तथा नयागाँव (चित्रकूट) में मुआफ़ी मिली हुई थी।

(४) 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के अन्तर्गत पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'राजापुर' का सवल समर्थन करते हुए लिखा है कि "सारे उपद्रव की जड़ 'सूकर खेत' है जो भ्रम से सोरों समझ लिया गया है। 'सूकर क्षेत्र' गोंडा जिले में सरयू के किनारे एक पवित्र तीर्थ है, जहाँ आस-पास के कई जिलों के लोग स्नान करने जाते हैं और मेला लगता है।"

भाषा के आधार पर भी शुक्लजी ने राजापुर का समर्थन किया है—"जिन्हें भाषा की परख है उन्हें यह देखते देर न लगेगी कि तुलसीदासजी की भाषा में ऐसे शब्द, जो स्थान विशेष के वाहर नहीं बोले जाते, केवल दो स्थानों के हैं—चित्रकूट के आस-पास के और अयोध्या के आस-पास के। इस दृष्टि से देखने पर यह बात मन में वैठ जाती है कि तुलसीदास का जन्म राजापुर में हुआ जहाँ उनकी कुमार अवस्था वीती।"

(५) रामचरित मानस के अयोध्याकण्ड के अन्तर्गत आने वाले 'तापस' वाले प्रसंग को राजापुर के समर्थन में सबसे अधिक शक्तिशाली तर्क माना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाता है। जिस समय भगवान प्रयाग से चलकर यमुना पार करके आगे बढ़ते हैं उस समय—ग्राम-वासियों की चर्चा अधूरी रह जाती है और उसी समय वहाँ एक तापस आ जाता है और उसका प्रसंग चल पड़ता है—

तेहि अवसर तापस एक आया।
तेज पुंज लघु वयस सुहाया॥
× × ×
मुदित सुअसनु पाई जिमि भूखा।

उपर्युक्त स्थल पर तापस का अकस्मात् आ जाना और फिर वहाँ से विदा न होना परन्तु भगवान के दर्शन में मग्न हो जाना और इसी दशा में उनको छोड़कर कवि का अपने इस प्रौढ़तन अयोध्याकाण्ड में एक महत्वपूर्ण विषय को अस्पष्ट ही रहने देना, कोई साधारण बात नहीं है।

इनके अनुसार श्रीराम की कथा तो श्रीगोस्वामीजी के लिए सजीव थी—वे लिखते-लिखते तन्मय हो गए और अपने जन्म प्रान्त में प्रभु के पधारने का अवसर उपस्थित होने पर ग्राम-वासियों के बीच भावना रूप में स्वयं ही पहुँच गए और भगवान से मिलने की सी अनुभूति का सुख प्राप्त कर तन्मय हो गए।

अयोध्या से यमुनाजी पहुँचने तक गोस्वामीजी कहीं भी इस प्रकार भावावेश में नहीं आये जिस प्रकार यमुनाजी के पार करने पर आए। इसी प्रदेश में राजापुर है और जन्मभूमि के अनुराग से ही गोस्वामीजी ने ग्रामवासी स्त्री पुरुष आदि का मार्मिक और अत्यन्त प्रभावशाली वर्णन अपनी अलौकिक अनुभूति ने इसी प्रदेश से सम्बन्धित किया है।

सोरों के समर्थन में

सोरों में प्राप्त सामग्री के आधार पर कतिपय विद्वानों ने सोरों को गोस्वामी जी का जन्म-स्थान माना है। उनके तर्क इस प्रकार हैं—

(१) तुलसीदास ने कवितावली, गीतावली, दोहावली और विनय-पत्रिका में ऐसे बहुत से शब्दों और मुहावरों का प्रयोग किया है जो सोरों में प्रचलित हैं। राजापुर और तारी में इनका इस अर्थ में प्रयोग नहीं होता है। कहने की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आवश्यकता नहीं है कि सोरों व्रज-मण्डल में है तथा उपर्युक्त चारों ग्रन्थों की रचना व्रज-भाषा में हुई है।

(२) व्रजमण्डल में भौंरा और चकडोरी खेलने का बहुत रिवाज़ है। सोरौं में इसका खूब रिवाज है। अयोध्या, बनारस और राजापुर में शायद ही कोई इस खेल को खेलता हो। गीतावली में पाये हुए खेलन अवध खोरि गोली भौंरा चकडोरी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि तुलसीदास का जन्म ऐसे स्थान पर हुआ था जहाँ भौंरा और चकडोरी खेलने का बहुत रिवाज था।

(३) तुलसीदास ने व्रज-भाषा और अवधी मिश्रित भाषा में सफल रचना की है। यह भी उनके व्रज और अवध की सरहद पर होने का प्रबल प्रमाण है।

(४) तुलसीदास के ग्रन्थों में बहुत से ऐसे शब्द आए हैं जो सोरों और उसके पश्चिमी भागों में बोले जाते हैं।

(५) तुलसीदास ने अरबी फारसी के शब्दों का स्वतन्त्रतापूर्वक प्रयोग किया है। यह भी उनके पश्चिम-प्रान्त निवासी होने का एक सबल प्रमाण माना जा सकता है। सोरों और उसके आस-पास के स्थानों में मुसलमानों की कई बस्तियां हैं। इसी से पूर्वी हिन्दी की अपेक्षा पश्चिमी हिन्दी में अरबी फारसी के शब्दों का अधिक प्रयोग होता है।

(६) संवत् १६२५ में गोसाईं बिट्ठलनाथ द्वारा लिखे गये ग्रन्थ दो-सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के अन्तर्गत तुलसीदास को नन्ददास का बड़ा भाई बताया गया है। वार्ता में नन्ददास रामपुर ग्राम के निवासी माने गए हैं। रामपुर सोरों के निकट एक गाँव था। सम्भवतः किसी कारणवश इनके पिता सोरों में आकर बस गए हों।

(७) अब भी रामपुर और उसके आसपास के गाँवों में बहुत से वृद्ध ऐसे मिलते हैं जो राजापुर को तुलसीदास का जन्मस्थान नहीं मानते। वे कहते हैं कि तुलसीदास वहाँ केवल कुछ दिनों रहे अवश्य। सच्चे त्यागी की भाँति एक बार सोरों छोड़ने के बाद गोस्वामीजी फिर वहाँ लौटकर नहीं गए। अतएव राजापुर उनका जन्म स्थान नहीं हो सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८) जनश्रुति के अनुसार गोस्वामीजी गंगा पार करके अपनी ससुराल गए थे। राजापुर में गंगा नहीं है, यमुना है, और सोरों में गंगा है।

(९) 'वार्ता' में नन्ददास को सनौढिया अथवा सनाढ्य ब्राह्मण लिखा है। तुलसीदासजी सनाढ्य थे। बनारस आदि पूर्वी प्रान्तों में सनाढ्यों के आज दिन भी वहुत कम घर हैं और सनाढ्यों में विद्वान भी वहुत कम हुए हैं। काशी वाले विश्वास ही न करते होंगे कि सनाढ्य भी कोई ब्राह्मण हैं। इसी कारण अपनी जाति-पाँति बताते हुए तुलसी को संकोच रहा था।

(१०) मानस के इस दोहे के आधार पर :—

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत।
समुझी नाहि तसि बालपन तब अति रहेंउ अचेत।

यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदासजी अपने वाल्यकाल में, जवकि वे एक दम अवोध थे, सोरों में रहे थे। इसी प्रसंग में सोरों निवासी पं० भद्रदत्त जी वैद्यभूषण ने यह तर्क उपस्थित किया है कि, 'छोटी आयु में गोस्वामीजी ने विनयपत्रिका में 'जहाँ दियौ सुकुल जनम' आदि पद में अपने जन्म के विषय में संकेत किया है, वहीं अपनी जन्मभूमि के सम्वन्ध में कहा है :—

"यह भरत खण्ड समीप सुरसरि थल भली संगति भली" इस पद में गोस्वामीजी का जन्म प्रासंगिक उल्लेख है, अतः सुरसरि गंगा के समीप का थल (स्थान) उनका जन्म स्थान ही हो सकता है अन्य काशी इत्यादि वैराग्यकाल का निवास स्थान नहीं।"

डाक्टर माताप्रसाद गुप्त ने उपर्युक्त दोनों पक्षों के तर्कों का विश्लेषणात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन करके यह निष्कर्ष उपस्थित किया है कि,— फलतः दोनों पक्षों के प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर यह कहना कठिन है कि दोनों में से कौन सा स्थान कवि का जन्म स्थान है और यह भी सर्वथा असम्भव नहीं कि कोई तीसरा स्थान ही इस पुनीत पद का अधिकारी हो। पृष्ठ संख्या १३०, तुलसीदास, सन् १९४२ का संस्करण।

गोस्वामीजी की प्रामाणिक जीवनी उपस्थित करने के सम्बन्ध में विद्वानों की खोजें अभी जारी हैं। 'ब्रज साहित्य मण्डल' ने भी इस दिशा में निश्चयात्मक निर्णय उपस्थित करने के हेतु अधिकारी विद्वानों की एक समिति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नियुक्त कर रखी है। इस सम्बन्ध में जब तक सप्रमाण सर्वमान्य निष्कर्ष उपस्थित न हो जाय, तब तक हम भी यही कहेंगे कि डा० माताप्रसाद के मत का समर्थन करना ही युक्तियुक्त एवं समीचीन है।"

प्रश्न ७—स्वोक्तियों एवं अन्तःसाक्ष्य के आधार पर गोस्वामी तुलसीदास के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—गोस्वामी तुलसीदास के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में उपलब्ध सामग्री को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। यथा—

(क) अन्तःसाक्ष्य—गोस्वामीजी द्वारा लिखित ग्रन्थों में उपलब्ध उनकी जीवनी-सम्बन्धी संकेत।

(ख) बहिसाक्ष्य—तुलसीदासजी के समकालीन और परवर्ती कवियों एवं लेखकों की रचनाओं में प्राप्त होने वाले इनके जीवन सम्बन्धी उल्लेख।

(ग) जनश्रुतियाँ एवं किंवदंतियाँ—आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली पर शोध-कार्य करने वाले विद्वानों ने बहिसाक्ष्य की प्रामाणिकता पर संदेह प्रकट किया है और केवल अन्तःसाक्ष्य को ही प्रामाणिक माना है।

विस्तृत समीक्षा के पश्चात् डा० रामकुमार वर्मा ने अपने शोध प्रबन्ध हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास में लिखा है कि 'जब तक कि तथ्यपूर्ण और विश्वस्त खोज नहीं होती, तब तक हमें अन्तःसाक्ष्य की सामग्री को ही प्रामाणिक मानना चाहिए। "अपने शोध-प्रबन्ध तुलसीदास" के अन्तर्गत डा० माताप्रसाद गुप्त ने भी यही बात लिखी है कि, "गोस्वामीजी के जीवन वृत्त के लिए बहिसाक्ष्य बहुत है, पर उनमें से कितना विश्वसनीय है और कितना नहीं, यह कहना अधिकतर कठिन है। यदि हम पूर्णरूप से किसी साक्ष्य पर विश्वास कर सकते हैं, तो वह है अन्तःसाक्ष्य। उनकी कृतियों से ही उनके जीवन पर यत्किंचित जो प्रकाश पड़ता है, वही सर्वथा प्रामाणिक है।" डा० भागीरथप्रसाद दीक्षित ने भी बहिसाक्ष्य की कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए यह लिखा है कि, "इन बाहरी साधनों का एकदम परित्याग कर देना ही श्रेयस्कर होगा।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुल-जाति—इनके ग्रन्थों में इनकी जाति-पांति सम्बन्धी उल्लेख सर्वथा अस्पष्ट है।

(क) मेरे जाति पांति न चहौं काहू की जाति पांति,
मेरे कौउ काम को न हौं काहू के काम को।
(कवितावली)

(ख) आयो कुल मंगन बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
(कवितावली)

(ग) दियो सुकुल जनम सुन्दर सरीर हेतु जो फल चारि को।
(विनयपत्रिका)

(घ) कौन धौं सौमजागी अजामिल अधम कौन गजराज धौं वाजपेयी।
(विनयपत्रिका)

इस पद के आधार पर भागीरथप्रसाद दीक्षित ने तुलसीदास को कान्यकुब्ज ब्राह्मण वताया है—क्योंकि सनाढ्य और सरयूपारीण ब्राह्मणों में वाजपेयी नहीं होते हैं, वे कान्यकुब्जों में ही होते हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त के मतानुसार, 'वाजपेयी' का प्रयोग कवि ने यहाँ किसी ब्राह्मण उपजाति के अर्थ में नहीं किया है, वल्कि केवल 'सौभयागी' के समानान्तर 'वाजपेययागी' अर्थ में ही किया है। इसी प्रकार का प्रयोग उसने अन्यत्र भी 'विनयपत्रिका' के एक पद में किया है—

विरद गरीब निवाज राम को।
वाजिमेघ कब कियो अजामिल गज गायो कल साम को।

कवितावली के उत्तरकाण्ड के अन्तर्गत आने वाले निम्नलिखित छन्द में उनके ब्राह्मण होने का तो स्पष्ट संकेत है, परन्तु उनकी उपजाति समस्या ज्यों की त्यों वनी रहती है—

भागीरथी जल पान करौं अरु नाम है राम के लेत नितै हौं।
मोकों न लैनी न दैनी कछू कवि भूलि न रावरी ओर चितै हौं।
जानि के जोर करौं परनाम तुम्हैं पछितैहौं मैं न मितै हौं।
ब्राह्मन ज्यौं उगिल्यो उरगारि हौं त्यों ही तिहारै हिए न हितैहों।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माता-पिता—उनकी माता का नाम हुलसी था, इसके विषय में तुलसी की एक पंक्ति है—

रामहिं प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसीदास हित हियें हुलसी सी।
(रामचरितमानस, बालकाण्ड)

परन्तु तुलसी की एक अन्य पंक्ति में हुलसी का अर्थ उनकी माता का नाम नहीं है—

शंभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी।

रहीम के दोहे के अनुसार उनकी माता का नाम हुलसी ही ठहरता है—

सुरतिय नरतिय नागतिय, अस चाहत सब कोय।
गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय॥

पं० रामगुलाम द्विवेदी ने इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे बताया है। 'तुलसी-चरित' के आधार पर डाक्टर रामकुमार वर्मा ने इनका वंश-वृक्ष इस प्रकार उपस्थित किया है—

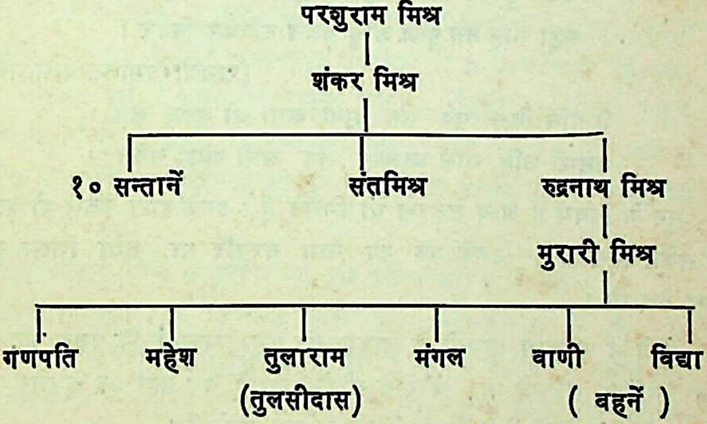

विशेष—(१) शंकर मिश्र ने दो विवाह किए थे। पहले से इन्हें १० सन्तानें हुई थीं। दूसरे से दो पुत्र हुए, संत मिश्र और रुद्रनाथ मिश्र।

(२) मुरारी मिश्र के पुत्र तुलाराम ही तुलसीदास थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाम—कवितावली के एक छन्द में इन्होंने स्वयं कहा है कि उनका मूल नाम 'तुलसी' था जिसमें उन्होंने किसी समय 'दास' जोड़ लिया था—

नाम तुलसी भोंड़े भाग सौं कहायो दास ।
कियौ अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को । (उत्तरकाण्ड)

बरवै रामायण में भी, एक स्थान पर इसी प्रकार का उल्लेख पाया जाता है—

केहि गिनती महँ जस बन घास ।
नाम जपत भए तुलसी तुलसीदास ॥

स्पष्ट है कि उनका मूल नाम तो तुलसी रहा होगा—अथवा ऐसा कोई अन्य नाम जिसका प्रथम शब्दांश तुलसी रहा होगा, और सम्भवत: दीक्षित होने पर उसे 'तुलसीदास' बना लिया गया हो ।

गुरु—गोस्वामीजी ने गुरु के सम्बन्ध में भी वहुत कम लिखा है । निम्न-लिखित अंश ही उनके विषय में उपलब्ध है—

वंदौं गुरुपद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि ।
महा मोह तन पुन्ज जासु बचन रविकर निकर ।
(रामचरितमानस-वालकाण्ड)

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा जो सूकर खेत ।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेऊँ अचेत ।।

गुरु के विषय में अन्य उद्धरण भी मिलते हैं । इनके द्वारा केवल दो बातों का संकेत मिलता है—उनके गुरु का नाम नरहरि था, तथा शिक्षा क्षेत्र सूकर खेत था ।

सोरों में उपलब्ध सामग्री के आधार पर कहा जाता है कि इनके गुरु का नाम नरसिंह चौधरी था, और वे सोरों-निवासी थे । वहाँ पर वे लोग एक मन्दिर भी दिखाते हैं जिसे वे उन्हीं का मन्दिर कहते हैं ।

बाल्य-काल—गोस्वामीजी के जन्म और जन्म-स्थान के विषय में ही जब कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है, तब फिर उनके बाल्य-काल्य के विषय में कुछ भी कहना और भी अधिक कठिन है । इसका एकमात्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आधार जन-श्रुति ही समझना चाहिए। कहा जाता है कि गोस्वामीजी का जन्म अभुक्त मूल नक्षत्र में हुआ था। ऐसे बालक का मुँह देखते ही पिताजी की मृत्यु हो जाती है। बस इसी प्रमादजन्य भय के कारण पिता ने जन्म लेते ही उस बालक को त्याग दिया था। कवि ने 'कवितावली' में इसका संकेत किया है—

जायो कुल मंगल बधायो न बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।

इसी ग्रन्थ में उन्होंने अन्यत्र कहा है :—

मातु पिता जग जाइ तज्यो, विधि हू न लिख्यौ कछु भाल भलाई।

कुछ ऐसी ही बात उन्होंने 'विनय-पत्रिका' में भी कही है—

जननि जनक तज्यो जनमि, करम बिनु विधि हू सृज्यो अवडेरे।
तनु तज्यो कुटिल कीट ज्यौं, तज्यौं मातु पिता हू।

इन उल्लेखों से इतना ही समझना चाहिए कि तुलसीदास बाल्यकाल में ही घर से निकल पड़े थे। उन्हें साधुओं का सत्संग मिल गया। × × गुरु ने कृपा करके सूकरखेत में उन्हें राम-कथा सुनाई × × × वे राममय हो गए। × × × तुलसीदास ने उनसे वेद वेदांग, शास्त्र, इतिहास, पुराण, काव्य-कला आदि का बड़े मनोयोग से अध्ययन किया। पन्द्रह वर्ष तक यह अध्ययन क्रम चला। तुलसी राम-भक्त हो ही चुके थे। विद्या पाकर पारंगत पंडित भी हो गये।

अतएव निष्कर्ष रूप में हमारा मत इस प्रकार ठहरता है कि—

(क) तुलसीदास एक उपेक्षित बालक थे। (ख) बचपन से ही उन्हें गुरु के घर अथवा देवालय (हनुमान जी का ही मन्दिर सही) में रहना पड़ा था। माता-पिता ने या तो उनका त्याग किया था, अथवा इनकी बाल्यावस्था में ही वे बैकुण्ठवासी हो गए थे। (ग) यहीं गुरु की कृपा से इनका विवाह हो गया होगा और पत्नी का ताना सुनकर वे वैरागी हो गए थे।

विवाहित जीवन तथा वैराग्य—इसमें सन्देह नहीं कि तुलसीदासजी का विवाह हुआ था और वे अपनी पत्नी पर अत्यधिक आसक्त थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनके ग्रन्थों में इस बात की साक्षी मिलती है।

बालेपन सूधे मन राम सनमुख गयौ,
राम-नाम लेत माँगि खात टूक टाक हौं।
परयो लोक रीति में पुनीति प्रीति राम राय,
मोह बस बैठो तोरि तरक तराक हौं। (हनुमान बाहुक)
खरिया खरी कपूर सब उचित न पिय तिय त्याग।
कै करिया मांहि-मेलि भै बिमल विवेक विराग। (दोहावली)

प्रियादास की 'भक्तमाल की टीका' द्वारा भी इस बात की पुष्टि होती है—

"तुलसीदास अपनी स्त्री से अत्यन्त प्रेम करते थे, उसकी भर्त्सना से विरागी होकर काशी चले गए।' (कवित्त संख्या ५०८)

कहा जाता है कि उनका पत्नी-प्रेम वहुत दिनों तक न चल सका। एक दिन इनकी अनुपस्थिति में वह अपने मायके चली गई।

तुलसीदास उसके वियोग में विह्वल हो गए। वे रात के समय ही, वर्षा की झड़ी में ही गंगा पार करके उसके पीछे-पीछे अपनी ससुराल जा पहुँचे। वहाँ उन्हें अपने ही पीछे आया देखकर वह अत्यन्त लज्जित हुई। उसके मुँह से निकल पड़ा कि—

लाज न आवत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक-धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ।
अस्थि चर्म-मय देह, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होत न तौ भवभीति।

पत्नी ने सम्भवतः यह वात यों ही साधारण तौर पर कही थी परन्तु तुलसीदास को यह वात लग गई। वे इस कशाघात से आहत होकर उलटे पांव लौट पड़े। प्रयाग पहुँच कर उन्होंने वैरागी का वाना धारण कर लिया। 'भविष्य-पुराण' में कथित 'नारी शिक्षा समादाय' तथा 'प्रियादास की भक्ति-माल की टीका' में वर्णित ब्यौरे के आधार पर भी यह वात पुष्ट हो जाती है कि तुलसीदास के वैराग्य से उनकी पत्नी का कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य था। उन्होंने स्वयं भी कहा है—

"हम तो चाखा प्रेम रस, पत्नी के उपदेस।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गृह त्याग के उपरान्त कवि को स्वभावतः एकान्त जीवन और समाज सम्बद्ध जीवन में से एक को ग्रहण करना था। मानवता के कल्याण के लिए उन्होंने द्वितीय मार्ग का अनुसरण किया। यथा—

घर छोड़े घर जात है घर राखे घर जाय।
तुलसी घर बन बीच ही राम प्रेम पुर छाय। (दोहावली)

कुछ विद्वानों के मतानुसार उनकी पत्नी का नाम 'रत्नावली' था और वह सोरों के पास ही गंगा-पार के एक गांव की रहने वाली थी। उनके बनाए हुए कतिपय दोहे रत्नावली-दोहावली में संग्रहीत हैं। ये दोहे अत्यन्त सुन्दर हैं। अपने पति को अनायास देखकर जो रत्नावली "लाज न लागत...." वाली कविता की तुरन्त ही रचना कर सकती थी, उसने यदि रत्नावली-दोहावली की रचना कर डाली हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

जान पड़ता है कालान्तर में जिन दिनों ये काशी में रहा करते थे, उन दिनों कुछ लोगों ने इन पर ऊटपटांग आरोप किए थे। उनसे चिढ़कर ही शायद इन्होंने ये बातें लिखी होंगी—

"लोग कहैं पोचु सौ न सोचु न संकोचु,
मेरे ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं।
(विनय-पत्रिका)

काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहन,
काहू की जाति बिगार न सोउन। (कवितावली)

इससे भी इनके गृहस्थाश्रम से विरक्त होने की परम्परागत धारणा पुष्ट होती है।

पर्यटन तथा तीर्थ यात्रा—यह सर्वथा संदेह के परे है कि तुलसीदास ने बहुत समय तक परिव्राजक के रूप में तीर्थाटन एवं सत्संग किया होगा। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह विभिन्न स्थानों पर रहे थे—

वारिपुर दिगपुर बीच बिलसत भूमि,
अंकित जो जानकी चरन जलजात की। कवित(ावली)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाँव बसत बामदेव मैं कबहूँ ने बिहौरे।

× × ×

अब चित्त चेत चित्रकूटहि चलु। (विनय-पत्रिका)

तुलसी जौ राम सौ सनेह साँचो चाहिए,
तो सेइए सनेह सों विचित्र चित्रकूट सों। (कवितावली)

स्पष्ट है कि गोस्वामीजी चित्रकूट रहे थे। जनश्रुति के अनुसार हनुमानजी की कृपा से उनको यहीं भगवान राम के दर्शन हुए थे। 'विनय-पत्रिका' में इसी प्रकार की किसी घटना का संकेत प्राप्त होता है—

तुलसी तोसों कृपालु जो कियौ कोसल पाल,
चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो।

अयोध्या में तो उन्होंने 'रामचरित-मानस' का प्रणयन ही आरम्भ किया था—

संवत् सोलह से इकतीसा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा।

अयोध्या और चित्रकूट के अतिरिक्त वह काशी में भी रहे थे। इस बात के प्रमाण हैं कि उन्होंने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध का अधिकांश भाग काशी में व्यतीत किया था।

सेइए सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलिकासी।

(विनय-पत्रिका)

तथा—

मुक्ति जन्म महि जान ज्ञान खानि अघ हानि कर,
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइय कस न।

(रामचरित-मानस)

जीवन यात्रा का अंत—गोस्वामीजी ने काशी के तत्कालीन उपद्रव के सम्बन्ध में रुद्रबीसी की चर्चा की है।[1] डा० माताप्रसाद गुप्त के मतानुसार रुद्रबीसी ज्येष्ठ मास संवत् १६४२ से ज्येष्ठ संवत् १६७१ तक रही थी।

कवितावली के कुछ छंदों में महामारी के प्रकोप का वर्णन है। कुछ

---

१. कवितावली, उत्तरकाण्ड १७० तथा दोहावली २४०।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्वानों के मतानुसार वह ताऊन से पीड़ित हुए थे, किन्तु भगवान राम ने उसका अंत कर दिया। यथा—

आश्रम बरन कलि बिवस बिकल भय,
निज-निज मरजाद मोटरी सी डार दी।
संकर सरोष महामारी हौं ते जानियत,
साहिब सरोष दुनी दिन-दिन दार दी।
नारि नर आरत पुकारत सुने न कोउ,
काहू देवतन मिलि मोही मूठ मार दी।
तुलसी सभीत पाल सुमिरें कृपालु राम,
समय सुकरूना सराहि सनकार दी।

(कवितावली—उत्तरकाण्ड)

'हनुमान वाहुक' के कुछ छन्दों में उनकी बाहुपीड़ा अन्य प्रकार की व्याधियों की चर्चा है। उसमें वे श्री हनुमान तथा भगवान राम से अपनी पीड़ा की शान्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। यथा—

(अ) पूतना पिसाचिनी ज्यौं कपि कान्ह तुलसी की,
बाहुपीर, महाबीर, तेरे मारे मरैगी।
(आ) पांय पीर, पेट पीर, बाहुं पीर मुंह पीर,
जर जर सकल सरीर पीर गई है।
(इ) घेरि लियो रोगनि कुलीमनि, कुजोगनि ज्यौं,
बासर जलद घनघटा धुकि धाई है।

सम्भवतः यह पीड़ा वर्षा ऋतु में आरम्भ हुई थी और काफी समय तक रही थी। वेदना कदाचित पहले दाईं भुजा में प्रारम्भ हुई और बाद में समस्त शरीर में फैल गई थी। कवि ने स्वयं कहा है कि भगवान की कृपा से उस पीड़ा का अन्त भी हो गया—

बाहुक सुबाहु नीच लीचर परीच मिलि
मुंहपीर के तुज़ा कुरोग जातु धान हैं।
रामनाम जप जाग सानुराग कियो चाहौं
काल कैसे दूत मृत कहा मेरे मान है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हनुमान वाहुक के छन्द संख्या ४०, ४१ को पढ़ कर ऐसा जान पड़ता है कि किसी समय गोस्वामीजी के सारे शरीर में वरतौर के घिनौने फोड़े निकल आए थे जिनमें रुधिर और पीव वहा थे। इन्हें अच्छा करने के लिए उन्होंने राम, शिव तथा हनुमान से प्रार्थना की थी। उन्होंने यह कहीं नहीं लिखा है कि इस रोग का शमन हो गया था। वहुत सम्भव है इसी रोग में उनकी मृत्यु हुई हो।

गोस्वामीजी की मृत्यु का कारण जो भी रहा हो, क्योंकि उसके विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलता है। जन-श्रुति के आधार पर संवत् १६८० का श्रावण शुक्ला सप्तमी को कासीघाट पर उनकी मृत्यु हुई थी। यथा—

सम्वत् सोरह से असी असी गंग के तीर।
सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यौ शरीर।

मूल गोसाईं चरित में यह दोहा इस प्रकार दिया गया है—

सम्वत् सोरह से असी असी गंग के तीर।
सावन स्यामा तीज शनि तुलसी तजे शरीर॥

गणना के अनुसार यह तिथि ठीक उतरती है। संवत् १६८० के श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की तृतीया शनिवार के दिन ही पड़ती है इसके अतिरिक्त गोस्वामीजी के मित्र टोडरमल के उत्तराधिकारी इनकी स्मृति में इसी तिथि को सीधा बांटते हैं और गोस्वामी जी की वर्षी मनाते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने श्रावण कृष्णा तृतीया संवत् १६८० के दिन अपना पार्थिव शरीर छोड़ा था।

कहा जाता है कि अन्त समय में गोस्वामीजी ने मकरी नाम की चिड़िया को देख कर यह सवैया पढ़ा था—

कुंकुन रंग सु अंग जितौ मुखचन्द सौं चन्दन होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्ध चवै अवलोकन सोच विषाद हरी है॥
गोरी कि गंग विहंगनि वेष कि मञ्जुल मूरति मोद भरी है।
पेखु सप्रेम पयान समै सब सोच विमोचन छेमकरी है॥

उनके अन्तिम शब्द उन्हीं के अनुरूप थे—

राम नाम जस बरनि के, भयौ चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिए, अबही तुलसी सौन॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्तः साक्ष्य के अनुसार संक्षेप में गोस्वामी तुलसीदास का जीवन वृतान्त इस प्रकार ठहरता है—

"तुलसीदास हुलसी के पुत्र थे। इनका जन्म उच्च ब्राह्मण कुल में हुआ था। इनका नाम राम-बोला था जो आगे चलकर तुलसी और तुलसीदास में परिणित होगया। ये बाल्यकाल में ही अपने माता-पिता के संरक्षण से विहीन हो गए, फलतः बचपन में इन्हें रोटियों तक के लिए तरसना पड़ा। अन्त में ये गुरु नरहरि के संरक्षण में आए। वहीं इन्होंने विद्या पढ़ी और वहीं इनका विवाह भी हो गया। सम्भवतः इनके कोई सन्तान नहीं हुई—"काहू की बेटी सौं बेटा न ब्याहब" का यही अर्थ निकलता है।

पत्नी की भर्त्सना ने इन्हें वैरागी बनाया। इन्होंने सम्पूर्ण भारतवर्ष का भ्रमण किया। चित्रकूट तथा अयोध्या इन्हें विशेष प्रिय थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे। रामचरित मानस का रचना-काल संवत् १७३१ है।

जीवन का उत्तरार्द्ध इन्होंने काशी में व्यतीत किया और यही १०० वर्ष से अधिक की आयु में असी घाट पर संवत् १६८० के श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की तृतीया को इनका शरीरान्त हुआ।

प्रश्न ८—नन्ददास और तुलसीदास के परस्पर भ्रातृ-सम्बन्ध के विषय में जो मत प्रचलित हैं, उन पर आलोचनात्मक प्रकाश डालिए।

उत्तर—गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी के सम्बन्ध में बहुत दिनों से विस्तृत शोधकार्य हो रहा है। इस शोध-कार्य के मध्य एक महत्वपूर्ण बात यह सामने आई है कि गोस्वामी तुलसीदास जी रास पंचाध्यायी के प्रसिद्ध रचयिता कवि नन्ददास के बड़े भाई थे। यह बात दो साक्ष्यों के आधार पर उठाई गई—सोरों से प्राप्त सामग्री, तथा दो सौ वैष्णवन की वार्त्ता।

सोरों में तुलसीदास के भाई नन्ददास के उत्तराधिकारी बताए जाते हैं। सोरों में सनाढ्य शुक्लों का एक घराना है जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि वह नन्ददास की वंश परम्परा में है। इस परिवार के पंडित बाबूराम से डा० माताप्रसाद गुप्त की भेंट हुई थी और उनके भाई स्वर्गीय मुरारीलाल के पुत्र ने डा० गुप्त को 'मानस' की प्रति दिखाई थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस सम्बन्ध में डा० गुप्त का जो कथन है, वह बहुत ही स्पष्ट रूप से उत्तराधिकारी वाली सामग्री की प्रामाणिकता को अस्वीकार करता है। उनका कहना है कि "इस बात का यथेष्ट प्रमाण कोई नहीं है कि बाबूराम शुक्ल और उनके घर वाले नन्ददास के वंशज हैं। स्वर्गीय मुरारीलाल शुक्ल का कथन मात्र इस सम्बन्ध में प्रमाण नहीं हो सकता है। सोरों यात्रा में मैंने बाबूरामजी से मिलना चाहा, पर वे बाहर चले गये थे। इसलिए मिलना न हो सका। पर, जो कुछ मैंने उनके सम्बन्ध में वहाँ सुना उससे मुझे संदेह है कि वे भी अपने को नन्ददास का वंशज कहते हैं या नहीं।"

सोरों से प्राप्त सामग्री के द्वारा जो महत्वपूर्ण बातें हैं उनमें तुलसीदास और नन्ददास का भ्रातृत्व भी है—"तुलसी के पूर्व पुरुष एटा जिले के रामपुर नामक ग्राम में जिसे उनके चचेरे भाई नन्ददास ने नाम बदल कर श्यामपुर कर दिया था, रहते थे। यह स्थान सोरों से दो मील दूर है। विशेष परिस्थितियों के कारण तुलसी के पिता आत्माराम शुक्ल को सपरिवार सोरों जाना पड़ा। पर उनके भाई (नन्ददास के पिता) उसी गाँव में रहे। उनकी ससुराल बदरिया ग्राम में थी। नन्ददास के एक पुत्र कृष्णदास भी थे।"

यह सामग्री नन्ददास के तथाकथित पुत्र कृष्णदास द्वारा लिखित दो ग्रन्थों—सूकर क्षेत्र महात्म्य तथा वर्ष फल—के रूप में है। इन कृष्णदास की लिखी हुई एक रामायण की खण्डित प्रति भी मिलती है, जिसका रचना-काल संवत् १६४३ है। इसके लिपिकार लक्ष्मणदास ने यह भी लिख दिया है कि "श्री तुलसीदास गुरु की आज्ञा सों उनके भ्राता सुत कृष्णदास सोरों क्षेत्र निवासी हेत लिखित।"

इस सामग्री के द्वारा स्पष्ट हो जाता है कि तुलसी का जन्म स्थान सोरों था और तुलसीदास और नन्ददास भाई-भाई थे।

इस सामग्री का वैज्ञानिक अध्ययन किया गया और ऐसा प्रतीत हुआ कि तुलसी जैसे युग-प्रतिनिधि कवि के साथ स्थान विशेष का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए ही यह परिश्रम योजना-बद्ध ढंग से किया गया है। शोधों के द्वारा सोरों की उपर्युक्त सामग्री अप्रामाणिक सिद्ध की जा चुकी है—

बाबा रघुवरदास कृत 'तुलसी चरित' के द्वारा भी तुलसी के जीवन से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्बन्धित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। उसमें तुलसी के तीन भाइयों का उल्लेख है—गणपति, महेश और मंगल। नन्ददास का नाम इनमें नहीं है।

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में नन्ददास की वार्ता के सम्बन्ध में तुलसीदास का उल्लेख किया गया हैं। 'वार्ता' में तुलसीदास सम्बन्धी यह चर्चा इस प्रकार है—

"नन्ददासजी तुलसीदास के छोटे भाई हते।×× जब विनने (नन्ददास ने) तुलसीदासजी सूं पूंछी तब तुलसीदासजी श्री रामचन्द्रजी के अनन्य भक्त हते जासूं विनने द्वारका जायवे की नाहीं कही।

× × ×

सो वे नन्ददासजी ब्रज छोड़ कें कहूँ जाते नाहीं हुते। सो नन्ददासजी के बड़े भाई तुलसीदासजी काशी में रहते हुते।

× × ×

सो एक दिन नन्ददासजी के मन में ऐसी आई। जो जैसे तुलसीदासजी ने रामायण भाषा करी है। सो हम हूँ श्रीमद्भागवत भाषा करें।

× × ×

सो नन्ददासजी के बड़े भाई तुलसीदासजी हते। सो कासी जी तें नन्द-दासजी कुं मिलिवे के लिये ब्रज में आए।

तब नन्ददासजी श्रीगोकुल चले तब तुलसीदासजी हूं संग संग आये तब आयके नंददासजी ने श्रीगुसांईजी के दर्शन करे।। साष्टांग दण्डवत् करी और तुलसीदासजी ने दण्डवत् करी नहीं।×× तब नंददासजी ने श्रीगुसांईंजी सों वीनती करी ये मेरे भाई तुलसीदास हैं। श्रीरामचन्द्रजी विना और कुं नहीं नमें हैं।

इन उद्धरणों के द्वारा निम्नलिखित बातें ज्ञात होती हैं—

(१) तुलसीदास नन्ददास के बड़े भाई थे।

(२) तुलसीदास काशी में रहते थे। और उन्होंने रामायण की रचना की थी। उनके अनुकरण पर नंददास ने श्रीमद्भागवत् को आधार मानकर काव्य-रचना की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) तुलसीदासजी ने काशी से व्रज यात्रा की थी। वहाँ वे नंददास से मिले थे।

(४) तुलसीदास राम के सिवा किसी को माथा नहीं नवाते थे। वे अपनी व्रज-यात्रा में श्री गुसांईं विट्ठलनाथ से भी मिले थे।

अन्तःसाक्ष्य के द्वारा तुलसीदास की अनन्य राम-भक्ति, उनका काशी-निवास और मानस-रचना तो पुष्ट हो जाती है, परन्तु उनका नंददास से सम्वन्ध किसी प्रकार भी अनुमोदित नहीं होता है।

वावा वेणीमाधवदास कृत 'गुसांईंचरित' में नंददास को तुलसीदास का गुरुभाई माना है उनके वृन्दावन गमन की वात है, परन्तु गुसांईं विट्ठलनाथ से मिलाप को बात नहीं है।

तुलसीदास के शिष्य वावा रघुवरदास कृत 'तुलसीचरित' ग्रन्थ में गोस्वामीजी का वंशवृक्ष उत्पन्न किया गया है। उसमें भी नन्ददास को तुलसीदास का गुरुभाई होने का संकेत नहीं मिलता है—

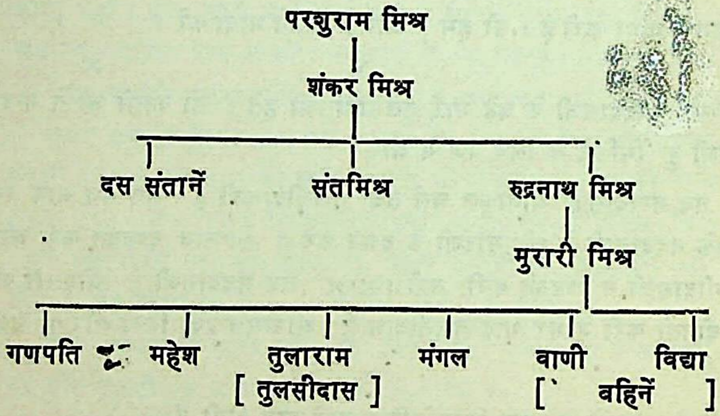

'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता' के उल्लेख पर विचार करते हुए डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि "मान भी लीजिए कि तुलसीदास और नंददास भाई-भाई हैं और एक ही स्थान पर दोनों पैदा हुए और पले थे और उनमें से तुलसीदास पूर्व की ओर काशी चले आते हैं और नंददास पश्चिम मथुरा वृन्दावन चले जाते हैं और दोनों आजीवन इन दो स्थानों पर निवास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हैं तो होना यह चाहिए कि नंददास में तुलसीदास की अपेक्षा फारसी अरबी शब्दों का प्रयोग अधिक मिलना चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं है।

वार्ता में नंददास को सनौढ़िया (सनाढ्य) ब्राह्मण कहा गया है। यदि तुलसीदास और नंददास भाई-भाई थे, तो तुलसीदास को भी सनाढ्य ब्राह्मण मानना पड़ेगा। जबकि हम पुष्ट प्रमाणों के आधार पर तुलसीदास सरयूपारीण दुबे कह आए हैं।

नाभादासकृत 'भक्तमाल' में प्रायः समस्त तत्कालीन भक्त कवियों का परिचय दिया गया है। नाभादासजी ने 'भक्तमाल' में तुलसीदास और नंददास दोनों के सम्बन्ध में एक-एक छप्पय लिखा है। उन्होंने दोनों कवियों की प्रशंसा भी की है, परन्तु किसी भी छप्पय में उनके भ्रातृत्व सम्बन्ध की ओर संकेत नहीं किया है।

नन्ददास का परिचय देते हुए उन्हें 'रामपुर ग्राम निवासी' और 'चन्द्रहास अग्रज सुहृद' कहा है, जबकि तुलसीदास के निवास स्थान का नाम लिया है और न उनके किसी भाई का ही उल्लेख किया है। यदि तुलसीदास और नन्ददास भाई-भाई होते, तो नाभादासजी इसका संकेत क्यों नहीं करते? तुलसी के बजाय वह चन्द्रहास के साथ क्यों सम्बन्ध स्थापित करते जिनके सम्बन्ध में उन्होंने भक्तमाल में एक शब्द भी नहीं लिखा है?

सोरों की सामग्री के अनुसार नन्ददास के सगे भाई का नाम चन्द्रहास था।

अतः डा० माताप्रसाद गुप्त का यह कथन सर्वथा संगत प्रतीत होता है कि, "यह कहा जा सकता है कि नाभादासजी ने केवल चन्द्रहास का भी भ्रातृ सम्बन्ध नन्ददास का परिचय देते हुए दिया हो, फिर भी किसी और प्रकार से दोनों महानुभावों की सन्निकटता नाभादासजी व्यक्त कर ही सकते थे। सं० १७६९ में उक्त छप्पयों पर टीका करते हुए प्रियादासजी भी इस सम्बन्ध का उल्लेख नहीं करते। इसलिए प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर यह विश्वास करना जरा कठिन ज्ञात होता है कि तुलसीदास और नन्ददास भाई-भाई थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३)

काव्य-कृतियाँ

प्रश्न ९—अन्तः साक्ष्य, बहिर्साक्ष्य तथा विभिन्न शोध-कर्त्ताओं के मतों का परीक्षण करते हुए गोस्वामी तुलसीदास की काव्य कृतियों के नाम तथा उनका रचना-क्रम निर्धारित कीजिए।

अथवा

प्रश्न १०--आपकी दृष्टि में तुलसीदास की कौन-कौन सी कृतियाँ प्रामाणिक हैं ? प्रत्येक का संक्षेप में परिचय दीजिए।

उत्तर—गोस्वामी तुलसीदास ने किन-किन ग्रन्थों की रचना की, इसका उल्लेख इनके किसी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता है। उन्होंने अपने कुछ ही ग्रन्थों में अपनी रचनाओं के वारे में छुट-पुट संकेत मात्र दिए हैं। अतः इस सम्बन्ध में अन्तः साक्ष्यः मौन है और अधिकांशतः हमको बहिर्साक्ष्य का ही सहारा लेना पड़ता है।

अन्तर्साक्ष्य और वहिर्साक्ष्य के आधार पर अनेक विद्वानों एवं संस्थाओं ने गोस्वामीजी द्वारा रचित ग्रन्थों की खोज की है, और सबने अपने-अपने अनुमान के अनुसार उनके ग्रन्थों की संख्या निर्धारित की है। गोस्वामी तुलसी दास के ग्रन्थों की चर्चा के मुख्य स्रोत तीन हैं। यथा—

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट—इसके अनुसार गोस्वामी तुलसीदास द्वारा लिखित ग्रन्थों की संख्या ३५ होनी चाहिए—

(१) रामाज्ञा, (२) छन्दावली-रामायण, (३) वाहु-सर्वांग, (४) राम-शलाका, (५) वृहस्पति कांड, (६) पार्वती-मंगल, (७) रामलला नहछू, (८) अंकावली, (९) उपदेश-दोहा, (१०) कवित्त रामायण, (११) कृष्ण-चरित, (१२) गीतावली-रामायण, (१३) कृष्ण-गीतावली, (१४) छप्पय-रामायण, (१५) जानकी-मंगल, (१६) तुलसी-सतसई, (१७) वरवै-रामायण,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१८) भगवद्गीता-भाष्य, (१९) रस-भूषण, (२०) रामचरित-मानस, (२१) विनय-पत्रिका, (२२) वैराग्य-संदीपनी, (२३) सगुनाती, (२४) सूरज-पुराण, (२५) ज्ञान का प्रकरण, (२६) ज्ञान-दीपिका, (२७) पदावली रामायण, (२८) तुलसीदासजी की वानी, (२९) दोहावली, (३०) ध्रुव प्रश्नावली, (३१) वाहुक, (३२) मंगल-रामायण, (३३) रस-कल्लोल, (३४) राम मुक्तावली तथा (३५) आरती।

शिवसिंह सेंगर कृत शिवसिंह सरोज—शिवसिंह सेंगर ने गोस्वामी कृत ७ रामायण और ११ अन्य ग्रन्थ—इस प्रकार १८ ग्रन्थ वताए हैं। इनका कहना है कि "इनके वनाए ग्रन्थों की ठीक-ठीक संख्या हमको मालूम नहीं हुई। केवल जो ग्रन्थ हमने देखे अथवा हमारे पुस्तकालय में हैं, उनका जिक्र किया जाता है। यथा—

(१) चौपाई रामायण, (२) कवितावली, (३) गीतावली, (४) छन्दावली, (५) बरवै, (६) दोहावली, (७) कुंडलियाँ, (८) सतसई, (९) रामसलाका, (१०) संकट-मोचन, (११) हनुमान-वाहुक, (१२) कृष्ण-गीतावली, (१३) जानकी-मंगल, (१४) पारवती-मंगल, (१५) करखाछन्द, (१६) रोला-छंद, (१७) झूलना छंद, तथा (१८) विनय-पत्रिका।

'विनय पत्रिका' को आपने 'विचित्र मुक्ति रूप प्रज्ञानंद-सागर ग्रन्थ' वताया है।

सर जार्ज ग्रियर्सन—आपने तुलसीदासजी के ग्रन्थों का उल्लेख तीन प्रकार से किया है—

(क) "नोट्स ऑन तुलसीदास"—२१ ग्रन्थ।

(ख) "इन्ट्रोडक्शन टु मानस"—१७ ग्रन्थ।

(ग) "एन्साइक्लोपीडिया आव रिलीजन एण्ड एथिक्स"—१२ ग्रन्थ।

अन्त में इन्होंने १२ ग्रन्थ ही प्रामाणिक माने हैं। यथा—

(१) रामचरित-मानस, (२) रामलला नहछू, (३) वैराग्य-संदीपनी, (४) वरवै-रामायण, (५) पार्वती-मंगल, (६) जानकीमंगल, (७) रामाज्ञा-प्रश्न, (८) दोहावली, (९) कवितावली, (१०) गीतावली, (११) श्रीकृष्ण गीतावली, तथा (१२) विनय-पत्रिका।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपर्युक्त ग्रन्थों की खोज तथा उनके अध्ययन के फलस्वरूप अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी स्थापनाएँ की हैं। यथा—

मिश्र-बन्धु—अपने 'हिन्दी नवरत्न' के अन्तर्गत मिश्र-बन्धुओं ने १२ ग्रन्थ प्रामाणिक माने हैं। परन्तु इनके ग्रन्थों के नामों और उपर्युक्त ग्रन्थों में अन्तर है। इनके द्वारा मान्य १२ ग्रन्थ ये हैं—

(१) रामचरित-मानस, (२) कवितावली, (३) गीतावली, (४) जानकी मंगल, (५) कृष्ण गीतावली, (६) हनुमान-बाहुक, (७) हनुमान-चालीसा, (८) रामशलाका, (९) राम-सतसई, (१०) विनय-पत्रिका, (११) कलिधर्म निरूपण तथा (१२) दोहावली।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—तुलसी ग्रन्थावली के सम्पादकों (जिनमें पं० रामचन्द्र शुक्ल प्रमुख हैं) ने लिखा है कि गोस्वामीजी के रचित बारह ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं जिनमें ६ बड़े और ६ छोटे हैं।

बड़े ग्रन्थ	छोटे ग्रन्थ
(१) दोहावली	(१) रामलला नहछू
(२) कवित्त रामायण (कवितावली)	(२) पार्वती मंगल
(३) गीतावली	(३) जानकी मंगल
(४) रामचरित मानस	(४) बरवै रामायण
(५) रामाज्ञा प्रश्न	(५) वैराग्य संदीपनी
(६) विनय-पत्रिका	(६) कृष्ण गीतावली

'शिवसिंह सरोज' में उल्लिखित अन्य ग्रन्थों के बारे में सम्पादक महोदय लिखते हैं कि, "इनमें से कई एक तो मिलते ही नहीं और कई दूसरे ग्रन्थों के अंश मात्र हैं, परन्तु एक 'राम सतसई' बड़ा ग्रन्थ है। सम्भव है कि किसी एक ग्रन्थ के दो नाम पड़ जाने से वे दो बार गिने गए हों।"

'रामसतसई' में लगभग डेढ़ सौ दोहे दोहावली के हैं। इसकी प्रामाणिकता विवादास्पद है। पंडित रामगुलाम द्विवेदी ने इस ग्रन्थ का नाम गोसाईंजी के १२ ग्रन्थों में नहीं गिनाया है, परन्तु पंडित शेषदत्त शर्मा उपनाम फनेस कवि ने इसको गोसाईंजी का बतलाकर इस पर टीका की है। सम्पादक वर्ग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के शब्दों में कुछ लोगों के मतानुसार यद्यपि इसमें बहुत से दोहे गोसाइंजी के हैं तथापि यह किसी तुलसी नामक कायस्थ कवि का बनाया ग्रन्थ है।"

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के अन्तर्गत १२ ग्रन्थों का उल्लेख करने के प्रश्चात् सतसई के बारे में यह लिखा है कि "जो हो, वावा वेनीमाधवदास के नाम पर प्रणीत चरित में भी राम सतसई का उल्लेख हुआ हैं।"

डा० रामकुमार वर्मा ने उक्त १२ ग्रन्थों को प्रामाणिक मानते हुए लिखा है कि "यदि तुलसीदास की शैली पर दृष्टि डालकर इनके समस्त मिले हुए ग्रन्थों की समीक्षा की जावे तो इन ग्रन्थों के अतिरिक्त 'कलिकर्माधर्म निरूपण' भी प्रामाणिक माना जाना चाहिए।" (हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास)।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने अपने ग्रन्थ तुलसीदास के अन्तर्गत कवि तुलसी की कृतियों को दो श्रेणियों में विभक्त किया है—

(क) **वे रचनाएँ जो साधारणतः कविकृत मानी जाती हैं**—इनकी संख्या १३ मानी है। इनमें 'सतसई' भी है तथा कवितावली को बाहुक के साथ (कवितावली तथा वाहुक) लिखा है।

(ख) **अन्य रचनाएँ**—इस श्रेणी में २४ ग्रन्थों की गणना की है।

डा० भागीरथप्रसाद दीक्षित ने 'तुलसीदास और उनके ग्रन्थ' पुस्तक में तुलसीकृत ग्रन्थों की संख्या १५ मानी है। इनमें इन्होंने १४ प्रामाणिक माने हैं और १५वें के बारे में अधिक खोज का सुझाव दिया है।

इन्होंने १२ मान्य ग्रन्थों के अतिरिक्त 'सतसई' और 'कुण्डलिया रामायण' इन दो ग्रन्थों को भी माना है। १५वाँ ग्रन्थ है 'हनुमान चालीसा', जिसके विषय में आपका कथन है कि, "मेरा दृढ़ अनुमान है कि 'हनुमान चालीसा' भी गोस्वामीजी की रचना है। अभी हिन्दी के विद्वानों की विवेचना अपेक्षित है। अतः इसे संग्रह में नहीं लिया गया है।"

विद्वानों ने तुलसीदासजी के रचनाकाल पर भी विस्तारपूर्वक विचार किया है। सारांश रूप में गोस्वामीजी के सर्वमान्य ग्रन्थ काल-क्रमानुसार निम्नलिखित प्रकार हैं—

(१) रामलला नहछू (गार्हस्थ-जीवनकाल की रचना)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) वैराग्य संदीपनी (गृह त्याग के पश्चात् की रचना)।
(३) रामाज्ञा प्रश्न (संवत् १६२१ में काशी में रचित)।
(४) रामचरितमानस (संवत् १६३१ अयोध्या व काशी में रचित)।
(५) सतसई (संवत् १६४२)।
(६) जानकी मंगल (संवत् १६४३)।
(७) पार्वती मंगल (संवत् १६४३)।
(८) गीतावली (संवत् १६५३)।
(९) कृष्ण गीतावली (संवत् १६५८)।
(१०) वरवै रामायण (काशी में रचित) संवत् १६६१-८० के वाद।
(११) विनयपत्रिका (काशी में रचित) संवत् १६५३)।
(१२) दोहावली (यथावसर लिखित फुटकल दोहों का संग्रह, संवत् १६४३ से संवत् १६८० तक)।
(१३) कवितावली और वाहुक (संवत् १६११-८० के बीच)।

कुछ विद्वान वाहुक को कवितावली का अंग न मानकर एक पृथक रचना मानते हैं।

अवस्था तथा विकास-क्रम की दृष्टि से इन रचनाओं का वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार होगा—

(क) प्रारम्भिक अवस्था की रचनाएँ—संवत् १६११ से संवत् १६२५ के माध्य की रचनाएँ)—(१) रामलला नहछू, (२) वैराग्य-संदीपनी और रामाज्ञा-प्रश्न। इन ग्रन्थों की भाषा एवं भावाभिव्यक्ति अपेक्षाकृत कम प्रौढ़ है।

(ख) मध्यकालीन अवस्था की रचनाएँ—(संवत् १६२६ से लेकर संवत् १६४५ तक की रचनाएँ), (१) जानकी मंगल, (२) पार्वती-मंगल, (३) 'रामचरितमानस, और (४) सतसई।

(ग) उत्तरकालीन रचनाएँ (संवत् १६४६ से लेकर संवत् १६६० के बीच की रचनाएँ)—(१) गीतावली, (२) विनयपत्रिका, और (३) श्रीकृष्ण गीतावली। भाषा एवं अभिव्यक्ति इनमें प्रौढ़ है।

(घ) अन्तिम कालीन रचनाएँ—इनमें (संवत् १६६१ से लेकर संवत् १६८० तक की रचनाएँ)—(१) वरवै-रामायण, (२) दोहावली, (३) कवितावली, और (४) वाहुक।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न १० - गोस्वामी तुलसीदास के ब्रज भाषा में लिखे मुख्य ग्रन्थों के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ?

उत्तर गोस्वामी तुलसीदास द्वारा ब्रजभाषा में लिखित मुख्य ग्रन्थ पाँच हैं—गीतावली, कवितावली, विनय-पत्रिका, बाहुक और कृष्णगीतावली। इनका साहित्यिक परिचय निम्नलिखित प्रकार है—

गीतावली—'गीतावली' का रचना-काल संवत् १६५३ माना गया है। गीतावली सम्यक् ग्रन्थ के रूप में न लिखी जाकर स्फुट पदों का संग्रह है। पदों को 'रामचरितमानस' के काण्डों के क्रमानुसार रख दिया गया है।

गीतावली की भाषा-शैली प्रौढ़ है। इसके उत्तरकाण्ड में वर्णित कथा वाल्मीकि रामायण से अधिक साम्य रखती है। इसमें कुल पदों की संख्या ३२८ है। कांडों के आधार-विस्तार में समानता है। और इस कारण कथा का स्वरूप विशृंखल है। घटनाओं की विशृंखलता के साथ ही चरित्र-चित्रण भी अपूर्ण है। इस प्रकार के अभाव इस बात के प्रमाण हैं कि गीतावली की रचना स्फुट रूप में हुई थी।

उन दिनों कृष्ण की कथा का पद रूप में अत्यधिक प्रचार था। बहुत सम्भव है कि उसी के द्वारा आर्कषित होकर तुलसीदास ने राम कथा को पद-शैली में लिख डाला हो। जो भी हो इतना तो मानना ही पड़ता है कि गीतावली के ऊपर कृष्ण-काव्य के गायक सूरदास का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। गीतावली में अनेक पद ऐसे हैं जिनका पूर्ण साम्य सूरसागर में लिखे गये पदों से होता है। एक उदाहरण पर्याप्त है—

गीतावली—जागिए कृपानिधान जान राम राय रामचन्द्र।
जननी कहै बार बार भोर भयो प्यारे॥

सूरसागर—जागिए गुपाललाल आनन्दनिधि नन्दबाल।
यशुमति कहै बार बार भोर भयों प्यारे॥

शब्दों और पदों के अतिरिक्त सूरसागर और गीतावली के प्रकरणों में भी साम्य है। यथा—

(१) कृष्ण के समान ही राम का बाल-वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। अन्य ग्रन्थों में ऐसा नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) जिस प्रकार कृष्ण के वियोग में माता यशोदा भाँति-भाँति कल्पनाएँ करती हैं और पूर्व स्मृतियों को जगाती हैं, उसी प्रकार माता कौशल्या भी करती हैं। गीतावली के अतिरिक्त ऐसा वर्णन तुलसी के अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं है।

(३) गीतावली के उत्तरकाण्ड में राम-राज्य वर्णन के अन्तर्गत हिंडोला, बसन्त, होली, चाँचर वर्णन में घटनाएँ अधिकतर कृष्ण काव्य के क्षेत्र की हैं। इन घटनाओं के साथ रामचरितमानस के राम के मर्यादापूर्ण चरित्र की संगति नहीं बैठती है।

तुलसीदास की भक्ति दास्य भाव की थी और सूरदास की सख्यभाव की थी। यह अन्तर गीतावली में बना रहता है। फलतः तुलसीदास का बाल-वर्णन सूरदास के बाल-वर्णन के समान स्वाभाविक नहीं बन पाया है। 'गीतावली' में भी राम की अलौकिकता के संकेत बने रहते हैं। वात्सल्य के स्थान पर भय, आश्चर्य आदि भावनाओं का प्राबल्य हो जाता है।

गीतावली एक गीत रचना है। इसमें कोमल भावनाओं को ही प्रायः प्रश्रय मिला है। 'मानस' की भाँति न तो रामावतार की कथाएँ ही हैं और न रामचरित्र की विस्तृत आलोचना ही है। वस्तु स्थिति यह है कि गीतावली में भावनाओं का प्राधान्य है, घटनाओं का नहीं। इसी कारण उसमें कथा का अनियमित विस्तार है और भावनाएँ श्रृंखलित हो गई हैं। मुक्तक काव्य के लिए यह सर्वथा स्वाभाविक ही है।

गीतावली मुक्तक काव्य है। उसमें मुख्यतः भावनाएँ घनीभूत हैं और आत्माभिव्यक्ति की प्रधानता है। यदि केवल यही होता, तो गीतावली एक श्रेष्ठ गेय रचना अथवा मुक्तक काव्य होती। परन्तु यह पद रचना के माध्यम से तुलसीदासजी ने कथा-निर्वाह का भी उपक्रम किया है जो मुक्तक रचना के कारण विश्रृंखलित हो गया। "अतः गीतावली न तो पूर्णरूप से वर्णनात्मक काव्य ही है और न आत्माभिव्यक्ति का उदाहरण ही। कवि मध्य स्थिति में है। तुलसीदास गीतिकाव्य के अन्तर्गत केवल सौन्दर्य की सृष्टि कर सके, किसी उत्कृष्ट काव्यादर्श की नहीं। न तो वे विनय-पत्रिका के समान आत्म-निवेदन ही कर सके और न मानस के समान कथा-प्रसंग की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सृष्टि ही। अतः गीतावली एकान्त 'माधुर्य' की रचना है।" (डा० रामकुमार वर्मा) 'गीतावली' का प्रधान रस श्रृंगार है। अन्य रसों की व्यंजना मात्र है। पुरुष रसों की व्यंजना तो यत्र-तत्र ही हुई है, वह भी उद्दीपन विभावों के माध्यम से ही। संचारी भाव-निरूपण का तो प्रायः अभाव ही है।

कथा के कोमल रूप का प्रदर्शन करने में तुलसी को 'गीतावली' में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। राम का सौन्दर्य और ऐश्वर्य का सफल वर्णन गीतावली की आत्मा है।

विनय-पत्रिका—तुलसीदास जी ने अपने मन की दारुण व्यथा व्यक्त करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की। इसमें उन्होंने भगवान राम से कलियुग के विरुद्ध शिकायत की है, क्योंकि कलियुग के विकार उन्हें प्रायः सताते रहते थे। भगवान की कृपा से उन विकारों एवं व्याधियों से उनका उद्धार हो जाता है।

'विनय-पत्रिका' ब्रजभाषा में लिखी हुई एक प्रौढ़ रचना है। यह गोस्वामीजी के रचनाकाल के अन्तिम चरण की रचना है। इसका रचनाकाल संवत् १६६६ और संवत् १६८० के मध्य ठहरता है।

विनय-पत्रिका एक सम्यक् ग्रन्थ के रूप में लिखी हुई रचना है। इसमें मंगलाचरण है और क्रम से देवी देवताओं की प्रार्थना है। इसमें वैष्णव भक्ति की ७ भूमिकाओं तथा शरणागति के ६ नियमों का सांगोपाग निर्वाह है। यह वस्तुतः एक प्रवन्धात्मक काव्य-ग्रन्थ है। कुछ लोग इसको गीतावली और कवितावली की भाँति एक संग्रह-ग्रन्थ मानते हैं। परन्तु हमारे विचार से इसको सम्यक् ग्रन्थ मानना ही समीचीन प्रतीत होता है।

'विनय-पत्रिका' में न किसी कथा-सूत्र का निर्वाह है और न घटना क्रम का निर्वाह। इसने प्रधानतः तुलसी की मनोवृत्ति का निरूपण है। इसमें एक ही रस है। वह है शान्त रस। अन्य भाव शात रस के संचारी बन कर ही आये हैं।

'विनय-पत्रिका' का दृष्टिकोण बहुत ही उदार एवं व्यापक है। उसका प्रतिपाद्य साध्य यद्यपि राम-भक्ति है, तथापि तुलसी ने साधना के लिए विविध साधनों का वर्णन किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'विनय-पत्रिका' में तुलसी की भक्ति भावना अपने पूर्ण एवं मार्मिक रूप में अभिव्यक्ति दिखाई देती है। गोस्वामीजी ने दास्य भाव की भक्ति में आत्मा की सभी वृत्तियों को सजीव रूप देकर 'विनय-पत्रिका' की रचना की। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने 'विनय-पत्रिका' के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "भक्ति के कारण अन्तःकरण को जो और शुभ वृत्तियाँ प्राप्त होती हैं, सबकी अभिव्यंजना हम 'विनय-पत्रिका' के भीतर पा सकते हैं। × × चरम महत्व के इस भव्य मनुष्य-ग्राह्य रूप के सम्मुख भव-विह्वल भक्त-हृदय के बीच जो-जो भाव-तरंगें उठती हैं उन्हीं की माला यह 'विनय-पत्रिका' है। × × सारांश यह है कि गोस्वामीजी की यह 'विनय-पत्रिका' भक्ति रस के नाना स्वादों से भरी हुई है। हिंदी-साहित्य में यह एक अनमोल रत्न है।"

आन्तरिक प्रेरणा, आवेग, प्रसाधन की उपेक्षा और आत्माभिव्यंजन की प्रमुखता प्रत्येक उत्कृष्ट गीति-काव्य की शैली के लक्षण हैं। 'विनय-पत्रिका' में स्रोतों को छोड़कर प्रायः ये समस्त विशेषताएँ मिलती हैं। परन्तु 'गीतावली' में ये विशेषताएँ सीमित स्थानों पर ही मिलती हैं। कारण यह है 'गीतावली' कथा विशेष को लेकर चलती है और इस कारण वह शुद्ध गीति-काव्य नहीं रह गई है। अन्यथा तुलसी की शैली की मूल विशेषताएँ—आर्जव, लालित्य और प्रवाह-दोनों ही ग्रन्थों में उपलब्ध हैं।

कृष्ण गीतावली—इसकी रचना 'गीतावली' के ही साथ हुई। इसका रचना-काल संवत् १६५८ के आस-पास है। यह स्फुट पदों का संग्रह है। इसमें ६१ पद हैं। इसमें कोई कांड या स्कन्ध नहीं है। विभिन्न राग-रागनियों में घटना विशेष पर पद लिखे गये हैं।

इस ग्रन्थ में कृष्ण की कथा गाई गई है। इसमें कृष्ण चरित्र के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित पद हैं। यह ग्रन्थ तुलसी की एक सरल रचना है। इसमें श्रीकृष्ण चरित्र का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। श्रीकृष्ण गीतावली के कई पद सूरसागर में मिलते हैं।

कृष्ण चरित्र के वर्णन ने तुलसीदास को एक ऐसे वैष्णव का रूप दे दिया है जिसको विष्णु की पूर्ण व्यापकता में पूर्ण विश्वास है और जिसके लिए राम और कृष्ण में कोई अंतर नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीकृष्ण गीतावली में उत्कृष्ट गीति-काव्य की समस्त विशेषताएँ— आंतरिक प्रेरणा, आवेग, प्रसाधन की उपेक्षा और आत्माभिव्यंजन की प्रमुखता यथेष्ट मात्रा में पाई जाती हैं। इसमें गीतावली और विनय-पत्रिका की अपेक्षा अधिक एकरूपता दिखाई देती है।

इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसमें व्रज प्रान्त के स्थानीय शब्दों का प्रयोग किया गया है जिससे स्थानीय वातावरण की सृष्टि हो गई। इसमें प्रयुक्त कुछ शब्द तो ऐसे हैं जो केवल व्रज प्रदेश में ही बोले जाते हैं—ठाली (बेकार) सिगरी रसपूर्ण भट् (प्रिय) इत्यादि।

कवितावली—यह गोस्वामीजी के अन्तिम समय की रचना है। इसमें स्फुट कवित्त, सवैयों का संग्रह हैं, जिन्हें 'रामचरित-मानस' के काण्डों के अनुसार रख दिया गया है। इसमें कुल ३२५ छंद हैं, जिनमें १८३ छंद अकेले 'उत्तर-काण्ड' में हैं। अनुपात-रहित यह विस्तार 'कवितावली' के मुक्तक काव्य होने का प्रवल प्रमाण हैं।

'कवितावली' में राम की कथा का वर्णन है। इस वर्णन में राम के ऐश्वर्य-वर्णन का प्राधान्य है।

'गीतावली' के अन्तर्गत तुलसी ने राम के जीवन की प्रायः कोमल घटनाओं को ही लिया है। 'कवितावली' में उसमें छोड़ी हुई परुष घटनाओं का विस्तृत वर्णन है।

'कवितावली' की विशेषता यह है कि उसमें कवि के जीवन से सम्बन्धित व्यक्तिगत घटनाओं, तत्कालीन परिस्थितियों और विविध भावों का सविस्तार वर्णन किया गया है। तुलसी के जीवन-वृत्त से सम्बन्धित अन्तःसाक्ष्य की सामग्री में कवितावली का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें मीन की सनोचरी का वर्णन है और उसके आधार पर कवि के जीवन से सम्बन्धित कई बातों पर प्रकाश पड़ता है। उत्तर-काण्ड में ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की महिमा खूब वर्णन की गई है। इस कांड में तुलसी के आत्म-चरित का काफी निर्देश है। इसमें भयानक रौद्र और अद्भुत रसों का चित्रण बहुत ही सफल हुआ है। ऐसा रामचरित-मानस में भी नहीं हुआ है। इसमें लंका दहन का वर्णन बहुत ही ज्वलंत है। इसमें प्रधानतः वीर और रौद्र एक दृष्टि से तथा शृंगार और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शांत दूसरी दृष्टि से प्रयुक्त हुए हैं। अन्य रस गौण हैं। करुण-रस का अभाव है।

'कवितावली' में संग्रहीत छंदों की रचना एक विस्तृत काल में की गई, अतः इसमें तुलसी की विभिन्न शैलियों के दर्शन होते हैं। शैली की दृष्टि से कवितावली तुलसीदास का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। तुलसीदास ने वस्तुतः कवित्त और सवैया शैली का इतना सफल प्रयोग हिंदी-साहित्य में प्रथम बार किया।

हनुमान बाहुक—यह गोस्वामी तुलसीदासजी की अन्तिम रचना है। इसका रचना-काल संवत् १६८० के कुछ ही पूर्व माना जाना चाहिए।

इसमें ४४ छंद हैं। छंद चार प्रकार के हैं—छप्पय, झूलना, मत्तगयंद और घनाक्षरी।

बाहुक एक सम्यक् ग्रन्थ में लिखा हुआ ग्रन्थ प्रतीत होता है। इस ग्रन्थ में तुलनीदासजी ने अपनी वाहु पीड़ा और उसके शमन की प्रार्थना वहुत ही करुण स्वरों में हनुमानजी से की है। यह प्रार्थना वड़ी ही करुण और हृदय-द्रावक है। वाहुक की भाषा बहुत प्रौढ़ और परिष्कृत है। इसमें ब्रजभाषा का बहुत ही परिमार्जित और परिनिर्दिष्ट रूप दिखाई देता है।

इसमें भाषा भावों की अनुगामिनी है। बाहुक कविकी प्रौढ़ और अमर कृतियों में है।

कुछ लोगों के मतानुसार वाहुत एक पृथक ग्रन्थ न होकर 'कवितावली' का एक ही एक अंश है। शैली की दृष्टि से कवितावली और वाहुक को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—एक वालकाण्ड से लंकाकांड तक और दूसरा उत्तर कांड तथा बाहुक। प्रथम भाग की शैली सरल, ललित एवं प्रवाह युक्त है। दूसरे भाग की शैली में लालित्य का अभाव है। वह सरल और प्रवाहयुक्त तो है। सारांश यह है कि कवितावली के वालकांड से लंका-काण्ड तक की शैली परवर्ती भाग की अपेक्षा अधिक रमणीय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४)

राम-कथा और गोस्वामी तुलसीदास

प्रश्न ११—रामकथा के विकास पर प्रकाश डालते हुए गोस्वामी तुलसीदास के महत्व को स्पष्ट कीजिए और बताइए कि उन्होंने किस प्रकार बिभिन्न स्रोतों से मधु संचय करके अपनी राम-कथा का स्वरूप निर्धारित किया।

उत्तर—राम-कथा और तुलसी—राम-कथा का और भारतीय संस्कृति का अन्योन्याश्रित सम्वन्ध है। एक के विकास को अन्य के विकास से पृथक नहीं किया जा सकता है। राम-कथा भारतवर्ष की सांस्कृतिक विचार-धारा के विकास का प्रतिरूप है। अधर्म के ऊपर धर्म की जय के मध्य नारायण की दिव्यकला के प्रति भारतीय मनीषा ने जो आत्म निवेदन किया, वही वस्तुत: राम-कथा के रूप में मूर्तिमंत हो गया।

राम-कथा की लोक प्रियता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण उसमें निहित 'सत्य मेव जयते' का आदर्श है, जो समस्त पौरस्त्य संस्कृति की आदर्श भावना का मेरुदण्ड रहा है। देखिए—

रामायणं महाकाव्यमादौ वाल्मीकिना कृतम्।
तन्मूलं सर्वकाव्यानामितिहास पुराणयोः ॥
संहितानांव सर्वासां मूलं रामायण मतम्।
तदेवादर्शमाराध्यं वेदव्यासो हरं कला।
चक्रे महाभारताख्या मितिहासं पुरातनम् ॥

(पूर्वभाव, अध्याय २५, बृहद्धर्मपुराण)

भारतीय साहित्य, काव्य, कला, संस्कृति, सभ्यता आदि सभी राम-कथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में प्रतिपादित आदर्शों द्वारा अनुप्राणित रहे हैं। इसी प्रेरणा दायी राम-कथा ने गोस्वामी तुलसीदासजी को काव्य-प्रणयन में प्रवृत्त किया—

एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहउँ रघुपति कथा सुहाई।

× × × ×

भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरें मन प्रबोध जेहि होई।

राम-कथा के विकास का प्रथम सोपान वाल्मीकिकृत रामायण है। ईसवी पूर्व चौथी शताब्दी तक राम-कथा सम्बन्धी आख्यानों की रचना होने लगी थी। वैदिककाल के बाद इक्ष्वाकु वंश के सूतों द्वारा इन आख्यानों की रचना की जाने लगी थी। इसी समय स्फुट आख्यान काव्य के आधार पर वाल्मीकि ने राम-कथा विषयक एक विस्तृत काव्य 'रामायण' की रचना की। इसमें राम-कथा की रचना एक नर-काव्य के रूप में की गई। 'रामायण' की कथा के राम एक आदर्श क्षत्रिय और वीर प्रतापी सम्राट के रूप में हमारे सामने आते हैं।

इसके पश्चात् जब राम को विष्णु का अवतार माना जाने लगा, तब राम-कथा का द्वितीय सोपान आरम्भ हुआ। इस समय रचित राम-काव्यों में राम को विभिन्न रूपों में देखा गया। राम-कथा के अन्तर्गत राम के जीवन का अतिरंजित स्वरूप प्रस्तुत किया जाने लगा। राम का यह काल्पनिक एवं अलौकिक घटनाओं से युक्त अतिरंजित स्वरूप हिन्दू, बौद्ध एवं जैन धर्म ग्रन्थों में बिखरा हुआ पाया जाता है। इसी समय विदेशों में भी राम-कथा का विस्तार हुआ।

राम-कथा के विकास का तृतीय सोपान १३ वीं शताब्दी से आरम्भ होता है। यह वह समय है जब दक्षिण भारत में भक्ति का आन्दोलन प्रबल रूप धारण करके उठ खड़ा हुआ था। संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, रामानुज, विष्णु स्वामी, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य आदिक एक के बाद एक आचार्य भक्ति-भावना को लेकर सामने आ रहे थे और भक्ति का यह स्रोत बंगाल एवं उत्तर भारत की ओर बढ़ता चला आ रहा था। ये धार्मिक आन्दोलन काफी शक्तिशाली थे। इस प्रसंग को स्पष्ट करते हुए डा० बल्देवप्रसाद मिश्र ने लिखा है कि "अब राम को विष्णु ही नहीं परब्रह्म का पूर्णावतार माना जाने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगा। राम भक्ति के प्रवर्त्तन के पश्चात् राम-कथा का रूप आदर्शात्मक हो गया और वह भक्त-वत्सल साक्षात भगवान राम की कथा बन गई।"

इसी के पश्चात् रामानन्दजी का युग आ जाता है। इन्हीं दिनों कबीर आदि संत कवि राम की निर्गुण भक्ति का प्रचार कर रहे थे। दूसरी ओर वल्लभाचार्यजी कृष्ण की सगुण भक्ति का प्रचार कर रहे थे। मुसलमान शासकों के दमनकारी व्यवहार ने भगवान को टेरने के लिए मनोवैज्ञानिक वातावरण प्रस्तुत कर दिया था। इसी समय गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव हुआ। उन्होंने राम की सगुण भक्ति के प्रचारार्थ राम-कथा के उपर्युक्त रूप को ग्रहण किया। उनके राम भक्त-वत्सल साक्षात् परब्रह्म के अवतार थे। तुलसीदासजी ने अपनी राम-कथा में रामचरित्र की अपेक्षा राम-नाम को अधिक महत्व प्रदान किया।

राम साहित्य—महाभारत के 'द्रोणपर्व' और 'शान्तिपर्व' के अन्तर्गत हमें रामचरित्र के दर्शन होते हैं। इस प्रकार हमें वाल्मीकि रामायण के पूर्व भी आख्यान साहित्य के रूप में राम-साहित्य उपलब्ध होता है। राम-साहित्य स्रोतों का अध्ययन करते हुए राम-साहित्य की विकास धाराओं को निम्नलिखित किया जा सकता है—

(१) संस्कृत के ललित काव्यों में उपलब्ध राम साहित्य।
(२) बौद्ध एवं जैन साहित्य में उपलब्ध राम-साहित्य।
(३) विदेशों में उपलब्ध राम-साहित्य।
(४) संस्कृत के धार्मिक साहित्य में उपलब्ध राम-साहित्य।

इनमें चतुर्थ धारा-संस्कृत का धार्मिक साहित्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ईसवी सन् ४०० के आसपास हरिवंश, ब्रह्मांड तथा विष्णु पुराणों में रामचरित्र का उल्लेख उपलब्ध होता है। पाँचवीं से बारहवीं शताब्दी तक मत्स्यपुराण, भागवत पुराण, वायु पुराण, कूर्मपुराण, अग्नि पुराण, स्कंदपुराण, नारदीय पुराण, गरुड़ पुराण, ब्रह्मपुराण, महाभागवत पुराण, श्री मद्देवीभागवत् पुराण, वृहद् धर्मपुराण, सौरपुराण कालकापुराण आदि के अन्तर्गत हमें रामचरित्र का उल्लेख उपलब्ध होता है। इन समस्त ग्रन्थों में राम को अवतारी महापुरुष के रूप में चित्रित किया गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१२-१३ वीं शताब्दी में रामानुज सम्प्रदाय के अन्तर्गत कुछ वैष्णव संहिताओं एवं उपनिषदों की रचना हुई। इनमें अगस्त्य संहिता, रामतापनीय उपनिषद् और रामार्चन चन्द्रिका उल्लेखनीय हैं। इन ग्रन्थों के अन्तर्गत राम भक्ति और राम-पूजा का शास्त्रीय प्रतिपादन किया गया है। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अध्यात्म रामायण, अद्भुत रामायण, सहस्रमुख रावणचरित आनन्द रामायण आदि ग्रन्थों की भी रचना हुई। यह क्रम १५वीं शताब्दी तक चलता रहा। इसी समय रामानन्दजी का आर्विभाव हुआ और उनके साथ ही जनसाधारण के मध्य राम भक्ति का प्रचार होने लगा।

१५-१६ वीं शताब्दी में स्थिति यह थी कि भारतवर्ष की विभिन्न भाषाओं (तेलगू, कन्नड़, मलयालम, मराठी, गुजराती, बंगाली, असमी) में राम सम्बन्धी साहित्य स्वतन्त्रता पूर्वक रचा जाने लगा था। इसी समय उत्तर भारत में गोस्वामी तुलसीदास का आर्विभाव हुआ। उन्होंने राम भक्ति के परम्परागत स्वरूप को अपनाया और उसको हिय प्रबोधानुसार अपने रामचरितमानस के रूप में भाषाबद्ध किया। उन्होंने पूर्वोक्त पूर्ववर्ती समस्त उपलब्ध सामग्री से मधुसंचय करके अपने अमर काव्य की रचना की।

रामचरितमानस के कथा-स्रोत—

गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'रामचरितमानस' की रचना के प्रेरणा-स्रोतों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

नाना पुराण निगमागम सम्मत यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्योऽपि।
स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा
भाषा निबंध मति मजुल मातनोति॥

अभिप्राय यह है कि गोस्वामीजी ने पुराणों से कथानक ग्रहण किया, वेदों उपनिषदों से ज्ञान-चर्चा ली और शास्त्रों से ज्ञान-भक्ति के साधन ग्रहण किये। तत्पश्चात् उनको अपनी रुचि एवं बुद्धि के अनुसार प्रस्तुत किया।

रामचरितमानस का अध्ययन करने पर हमें उसके प्रेरणास्रोत इस प्रकार दिखाई देते हैं—

(क) पुराण—भागवत पुराण, पद्म पुराण, स्कन्द पुराण, शिव पुराण,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्रह्माण्ड पुराण (अध्यात्म रामायण), ब्रह्मवैवर्त पुराण, मार्कण्डेय पुराण तथा नृसिंह पुराण।

(ख) **निगम**—(वैदिक वाङ्मय) ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, तैत्तिरीय उपनिषद्, श्वेताश्वर उपनिषद् तथा शाकटायन उपनिषद्।

(ग) **आगम**—(शैव, शाक्त, वैष्णव शास्त्र तथा दर्शन)—नारद पंचरात्र, अहिर्बुध्न्य संहिता।

(घ) **रामायण**—तात्पर्य वाल्मीकि रामायण से है—रामायणे निगदितम्।

(ङ) **क्वादिदन्यतोऽपि**—

(i) **महाभारत**—वाल्मीकि के साथ तुलसी ने व्यास को भी आदरपूर्वक प्रणाम किया है।

(ii) **महाकाव्य**—महाभारत, रघुवंश, जानकीहरण, भट्टिकाव्य।

(iii) **नाटक**—प्रसन्न राघव, हनुमन्नाटक।

(iv) **नीतिग्रन्थ**—पंचतन्त्र, हितोपदेश, चाणक्यनीति, भर्तृहरिशतक।

(v) **गीता**—श्रीमद्भागवद्गीता, गुरुगीता तथा पाण्डवगीता।

विशेष—(i) गोस्वामीजी ने 'वेद' शब्द का प्रयोग सनातन धर्म के समस्त आप्त ग्रन्थों के लिए किया है।

(ii) अमान्य तांत्रिक साधना-पद्धति का तुलसी ने सर्वत्र तिरस्कार किया है।

(iii) 'मानस' के ऊपर लगभग दो सौ ग्रन्थों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

इन ग्रन्थों का प्रभाव 'रामचरितमानस' पर स्पष्टतः दिखाई देता है। कहीं भाव की छाप है और कहीं भाषानुवाद भी है। विशेषता यह है कि गोस्वामीजी ने स्वरचित छंदों में अधिकाधिक व्यंजना भर दी है।

तुलसीदासजी ने रामचरित मानस की रचना एक महाकाव्य के रूप में की है। इसमें राम के सम्पूर्ण जीवन का, रामकथा का सांगोपांग वर्णन किया है। इसके लिखने में तुलसीदास ने निम्नलिखित ग्रन्थों का आधार प्रधान रूप से लिया है—

(१) **वाल्मीकि रामायण**—कथा के विस्तार के लिए वाल्मीकि रामायण का आधार लिया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) **अध्यात्म रामायण**—कथा का दृष्टिकोण प्रायः इस ग्रन्थ के अनुसार है।

(३) **हनुमन्नाटक**—लक्ष्मण-परशुराम संवाद का समावेश इस ग्रन्थ के आधार पर किया है। यह प्रसंग वाल्मीकि में नहीं है।

(४) **प्रसन्न राघव**—जनकपुरी में पुष्पवाटिका का वर्णन इस ग्रन्थ के आधार पर है। यह प्रसंग वाल्मीकि रामायण में नहीं है। पुष्पवाटिका में राम और सीता के पूर्वराग-वर्णन द्वारा कथा में रोचकता आ गई है। युग की प्रवृत्तियों के अनुसार यह आवश्यक था।

श्रीमद्भागवत्—सूक्तियाँ। ज्ञान और भक्ति के निरूपण में इस ग्रन्थ का प्रभाव स्पष्ट है।

सारांश—तुलसीदास ने कथा-भाग का रूप प्रायः वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही रक्खा है, पर दृष्किकोण अध्यात्म रामायण के अनुसार रखा है। 'रामचरित-मानस' में वर्णित राम के मर्यादापूर्ण जीवन और उसके लोक शिक्षा के आदर्श ने इस कथा को बहुत ही मनोरम और भावपूर्ण बना दिया है।

प्रश्न १२—"तुलसी ने एक ही राम कथा को भिन्न शैलियों में गाया है, फिर उसमें नवीनता, चमत्कार और आकर्षण है।" तुलसी की कृतियों के आधार पर इस कथन की परीक्षा कीजिए।

उत्तर—गोस्वामी तुलसीदास ने अपने समय में प्रचलित काव्य-भाषा के दोनों रूपों—अवधी और ब्रज भाषा में काव्य-रचना की। इतना ही नहीं, इन्होंने अपने समय में प्रचलित समय काव्य-शैलियों में राम-कथा का वर्णन लिखा जिससे राम-कथा का संदेश भारतवर्ष के कोने-कोने में पहुँच सके।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने निम्नलिखित प्रकार से भिन्न शैलियों में राम-कथा लिखी—

(क) **विद्यापति और सूरदास की गति-शैली**—यह शैली ब्रजभाषा के कवियों की थी। इसमें कविगण प्रायः पद-रचना करते थे। इस शैली में इन्होंने 'गीतावली' में राम-कथा का वर्णन किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ख) गंग आदि भाटों की कवित्त-सवैया-पद्धति—इस शैली पर भी इन्होंने राम के पूरे चरित्र का वर्णन किया। इस शैली पर इन्होंने 'कविता-वली' में राम-कथा का गायन किया।

(ग) बरवा शैली—इस शैली को रहीम ने प्रचलित किया था। इस पद्धति पर आपने 'बरवै रामायण' में राम-कथा का वर्णन किया।

(घ) दोहा-चौपाई की प्रबन्ध-काव्य की शैली—इस शैली पर आपका लिखा हुआ ग्रन्थ 'रामचरित-मानस लोक प्रसिद्ध है।

गोस्वामीजी ने यद्यपि एक ही राम-कथा को इन भिन्न शैलियों में लिखा है तथापि किसी भी स्थिति में उसका आकर्षण कम नहीं हो पाता है। इन्होंने प्रत्येक शैली को इतने रोचक एवं मौलिक ढंग से अपनाया कि "जेतो निहा-रिये नेरे है नैनन तेती खरी विगसे सी निकाई" वाली लोकोक्ति चरितार्थ होती है।

गीतावली को ही लीजिए। गीतावली के अन्तर्गत स्फुट पदों के रूप में राम-कथा का वर्णन किया गया है। गीतावली में गोस्वामीजी की भावुकता का अच्छा दर्शन प्राप्त हो जाता है। गीतावली की ब्रजभाषा में कोमल भावों की विशेष अभिव्यक्ति हुई है। इसमें राम के माधुर्य का विशेष निरूपण है। रामचरित-मानस में राम के मर्यादा रूप का ही चित्रण हुआ है। और उनको राजसी व्यक्तित्व प्रायः उपेक्षित ही रह जाता है। 'गीतावली' में इस अभाव की पूर्ति हो जाती है। गीतावली के उत्तर काण्ड में राजा राम के वैभव विलास का अतिरंजित वर्णन हैं। इसमें राम के हिंडोला, फूला, होली, फाग आदि के मनोरम वर्णन हैं। इन वर्णनों को पढ़ते समय पाठक को कृष्ण-काव्य के सरस वर्णनों का आनन्द आ जाता है, और वह रस मग्न हो उठता है।

गीतावली की ब्रजभाषा संस्कृत निष्ठ एवं कोमल कांत पदावली युक्त है। विशेषता यह है कि वह अस्वाभाविक नहीं होने पाई है। उसमें यथा स्थान शुद्ध देश भाषा का भी माधुर्य दिखाई देता है। गीतावली के द्वारा एक प्रकार से सूरदास आदि कृष्णभक्त कवियों के पदों का आनन्द प्राप्त हो जाता है और इस प्रकार पाठक को उनका अभाव खटक नहीं पाता है। गीतावली में विविध भावों की जो व्यंजना की गई है, वह अत्यन्त मधुर बन पड़ी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कौशल्या के सामने भरत अपनी आत्मग्लानि की व्यंजना किस प्रकार करते हैं, देखिए—

जो हौं मातुमते महँ ह्वै हौं।
तो जननी जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वै हौं ?
क्यों हौं आजु सुचि सपथनि, कौन मानिहै साँची ?
महिमा-मगी कौन सुकृती की खल-बच-बिसिबन्ह बाँची ?

इसी प्रकार चित्रकूट में राम के सम्मुख जाते हुए भरत की दुविधा पूर्ण इस दशा का चित्रण देखिए। घटना वही है परन्तु 'गीतावली' में उसको एक रूप ही प्रदान कर दिया गया है—

बिलोके दूरि तें दोउ बीर।
मन अगहुँड़ तन पुलक सिथिल भयो, नयन-नलिन भरे नीर।
गड़त गोड़ मनो सकुच पंक महँ, कढ़त प्रेम बल धीर।

राम-कथा के जितने भी कोमल प्रसंग हैं उनका वर्णन विभिन्न राग-रागनियों में इस ग्रन्थ में किया गया है। इस कारण यह संगीत प्रेमियों का कण्ठहार बनी हुई है। गीतावली में घटनाएँ कम हैं। भावों की मधुर अनुभूति और कोमल चित्र-विधान के कारण यह एक बहुत ही श्रेष्ठ एवं लोक प्रिय रचना बन गई है। इसमें मनोदशा के करुण चित्र हैं, जिन्हें पढ़ते समय पाठक भाव-विभोर हो उठता है। तुलसी के अन्य ग्रन्थों में यह विशेषता नहीं पाई जाती है। इस कारण 'गीतावली' में राम-कथा एक नवीन रूप धारण कर लेती है।

अब हम ब्रजभाषा में ही लिखी हुई एक अन्य कृति 'कवितावली' को लेते हैं। यह भी स्फुट छंदों का संग्रह है जिसमें पदों को 'रामचरित-मानस' के काण्डों के अनुसार व्यवस्थित करके रख दिया गया है। इसमें भी राम-कथा का रूप 'रामचरित-मानस' में वर्णित कथा से भिन्न है। कवितावली में राम के ऐश्वर्य का वर्णन विशेष रूप से किया गया है तथा परुष भावों की व्यंजना पर विशेष बल दिया गया है। इसमें नाना रसों का सन्निवेश अत्यन्त विशद रूप में किया है। कवितावली में भाषा भावों की अनुगामिनी है। कोमल और कठोर दोनों ही प्रकार की भाषा के परिमार्जित रूप को प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करके पाठक शृंगारी कवियों की रचनाओं का आनंद प्राप्त करने लगता है और दरवारी कविता का अभाव उसको नहीं खटकता है। 'कवितावली' में व्यवहृत कोमल भाषा का उदाहरण देख लीजिए—

राम को रूप निहारत जानकी, कंकन के नग की परिछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गईं, कर टेकि रहीं, पल टारति नाहीं।

वीर और भयानक प्रसंगों में गोस्वामीजी कठोर शब्दावली का प्रयोग करते हैं—

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल लाल मानौ.
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
केधौं व्योम-वीथिका भरे हैं भूरि धूम केतु,
बीररस बीर तरवारि सी उघारी है।

रामचरित-मानस तथा गीतावली में भयानक और रौद्र रसों के वर्णन नहीं किए गए हैं अथवा वहुत ही कम किए गए हैं। इस अभाव की पूर्ति इस ग्रन्थ में कर दी गई है। इस ग्रन्थ में भयानक और रौद्र रसों के वहुत ही सफल वर्णन किए गए हैं। लंका दहन का वर्णन सजीव एवं चित्रात्मक है। देखिए—

लपट कराल ज्वाल जाल माल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने, पहिचानै कौन काहि रे।
पानी को ललात, बिललात, जरे गात जात,
परे पाइमाल जात भ्रात! तूँ निबाहि रे।
प्रिया! तूँ पराहि, नाथ! नाथ! तूँ पराहि, बाप,
बाप! तूँ पाराहि, पूत! पूत! तूँ पराहि रे।
तुलसी बिलोकि लोग व्याकुल बेहाल कहैं,
लेहि दससीस! अब बीस चख चाहि रे।

तथा, जलती हुई लंका का यह स्वरूप भी देखिए—

हाट-बाट हाटकु पिघिल चलो घी-सो घनो,
कनक-राही लंक तलफति तायसों।

'कवितावली' का कवि युद्ध में भी राम के सौन्दर्य को नहीं भूलता है—

सोनित छींटि छटानि जरे तुलसी प्रभु सोहैं महाछवि छूटी।
मानो मरक्कत सैल बिसाल में फैलि चली बरबीर बहूटी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'कवितावली' में कवि-जीवन एवं तत्कालीन परिस्थितियों से भी सम्बन्धित अनेक संकेत हैं। इस प्रकार यह ग्रन्थ कवि की मनोवृत्ति पर प्रकाश डालने में पूर्णतः समर्थ हुआ है।

'वरवै रामायण' अपने ढंग का नया ही ग्रन्थ है। इसमें रहीम द्वारा प्रचारित वरवा छन्द में राम-कथा का वर्णन है। इस ग्रन्थ में राम-कथा का क्रमवद्ध वर्णन नहीं है। यह स्फुट छंदों का संग्रह है जिसमें राम-कथा के कुछ प्रसंगों का वहुत ही चलते हुए रूप में वर्णन कर दिया गया है।

इस ग्रन्थ के अनेक छंद तो अलंकारों के उदाहरण स्वरूप लिखे हुए जान पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त इसमें सीता के वियोग का ऊहात्मक वर्णन है तथा संयोग श्रृंगार-वर्णन रीति-कालीन वर्णन शैली की तरह हुआ है। इस प्रकार इस ग्रन्थ में तुलसीदासजी ने रीति-ग्रन्थों के समान इस ग्रन्थ में अलंकार और रस का निरूपण करने का प्रयास किया है।

उन दिनों रीति की प्रवृत्तियाँ पनपने लगी थीं। सूरदास ने राधा-कृष्ण के प्रेम का मधुर वर्णन किया तथा अनेक कूटपद लिखे थे। नंददास नायिका भेद-कथन कर चुके थे। रहीम ने नगर शोभा वर्णन लिखा था। इस प्रकार साहित्य के प्रति अभिरुचि रखने वाले व्यक्तियों के सम्मुख रीति की प्रकृतियाँ आने लगी थीं। गोस्वामीजी ने इस प्रकार की रुचि रखने वाले व्यक्तियों के लिए इस ग्रन्थ के माध्यम से राम-कथा प्रस्तुत की। इस ग्रन्थ की रचना वस्तुतः रीति-पद्धति पर किया गया एक नवीन प्रयोग था। इस ग्रन्थ में कवि की कला ही अधिक है, भावगाम्भीर्य कम है। डा० रामकुमार वर्मा ने ठीक ही लिखा है कि "यदि इस ग्रन्थ में उत्तर-काण्ड न होता, तो यह रीति-कालीन रचना कही जा सकती थी।

अव हम इनके सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रामचरित-मानस' पर विचार करते हैं। इसमें गोस्वामी तुलसीदास ने राम-कथा का वर्णन चार प्रकार से किया है अथवा उसके वक्ता-श्रोता चार-चार हैं। राम के चरित्र का वर्णन चेतना-विकास के चार स्तरों के अनुरूप किया गया है। 'रामचरित-मानस' में रामचरित्र का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि चेतना अथवा ज्ञान के प्रत्येक स्तर का व्यक्ति उसका रसास्वादन कर सके, अथवा व्यक्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आजीवन रामचरित-मानस कहता-सुनता रहे और उसका आनंद प्राप्त करता रहे। इस तथ्य को लक्ष्य करके गोस्वामीजी ने ठीक ही लिखा है कि—

रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेस जाना तिन नाहीं।

इसमें उपदेश, आदर्श ज्ञान, भक्ति, धर्म आदि प्रत्येक का निरूपण किया गया है और प्रत्येक क्षेत्र में वह एक उत्कृष्ट कोटि की रचना ठहरती है। इसमें राम के सौन्दर्य, शक्ति और शील का सांगोपांग निरूपण किया गया है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन की प्रत्येक समस्या का समाधान प्राप्त होता है और इसी कारण 'रामचरित-मानस' चिर नवीन ग्रन्थ वना रहता है। अन्तःप्रकृति के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा वाह्य प्रकृति के संश्लिष्ट समायोजन सभी दृष्टियों से रामचरित-मानस एक अत्यन्त उच्च कोटि की रचना है।

वाह्य पक्ष अथवा भाषा, शैली आदि की दृष्टि से भी इसकी जितनी प्रशंसा की जाए, थोड़ी है। इसके कलापक्ष के वारे में हरिऔधजी की यह उक्ति सर्वथा सार्थक है कि "कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला।"

कला और ज्ञान का इतना सुन्दर समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है। 'रामचरित-मानस' वस्तुतः काव्य क्षेत्र का एक आश्चर्य ही है।

निष्कर्ष—राम-कथा के सांगोपांग अध्ययन के लिए तुलसीदास की एक ही कृति 'रामचरित-मानस' पर्याप्त थी। परन्तु भिन्नरुहिलोका वाली वात है। प्रत्येक व्यक्ति को 'मानस' का संयत, संतुलित, मर्यादित, गम्भीर एवं परिनिष्ठित दृष्टिकोण संतुष्ट न कर सके, इसी को दृष्टि में रखकर गोस्वामी जी ने अन्य तत्त्वों पर बल देते हुए अन्य ग्रन्थों की रचना कर डाली। गीतावली में कोमल प्रसंगों का विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया। रामचरित-मानस में राम के राजन्य रूप को छोड़ दिया था। उसकी पूर्ति इसमें कर दी गई। कवितावली में परुष भावों की रसपूर्ण व्यंजना कर दी। वरवै के अन्तर्गत रीति-पद्धति वालों के समाधान की सामग्री प्रस्तुत कर दी। तात्पर्य यह है कि ये समस्त ग्रन्थ स्वतन्त्र होते हुए भी परस्पर पूरक ग्रन्थ हैं। गोस्वामीजी की शैली की मौलिकता एवं नवीन प्रसंगों की उद्भाविका प्रतिभा ने इनको विशेष आकर्षक एवं रुचिकर वना दिया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५)

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य की प्रवृत्तियाँ

प्रश्न १३—गोस्वामी तुलसीदास की काव्य-रचनाओं के आधार उपलब्ध विभिन्न प्रवृत्तियों का स्वरूप स्पष्ट कीजिए। इनके आधार पर क्या गोस्वामीजी को राष्ट्रीय कवि कहा जा सकता है ?

उत्तर—काव्य-भाषा पर व्यापक अधिकार—गोस्वामी तुलसीदास के आविर्भाव के समय हिंदी काव्य-भाषा के दो रूप प्रचलित थे—व्रजभाषा और अवधी। गोस्वामीजी ने दोनों ही काव्य भाषाओं में समान अधिकार पूर्वक काव्य-रचना की। इतना ही नहीं, इन्होंने दोनों ही भाषाओं के दोनों रूपों—व्यावहारिक और परिनिष्ठित रूप में रचना की। और 'कृष्ण गीतावली' में हमको संस्कृत की कोमलकान्त पदावली युक्त व्रजभाषा का व्यावहारिक रूप मिलता है। 'विनय-पत्रिका' तथा 'हनुमाम वाहुक' में संस्कृत वहुला परिनिष्ठित व्रजभाषा के दर्शन होते हैं।

इसी प्रकार अवधी के भी दोनों रूपों में काव्य रचना के दर्शन होते हैं—'पार्वती मंगल', 'जानकी मंगल', 'वरवै रामायण' तथा 'रामलला नहछू' ठेठ अवधी अथवा लोक-व्यवहार में प्रचलित अवधी की रचनाएँ हैं। 'रामचरित मानस' पश्चिमी अवधी अथवा परिनिष्ठत अवधी की प्रसिद्ध रचना है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, "व्रजभाषा का जो माधुर्य हम सूरसागर में पाते हैं वही माधुर्य संस्कृत रूप में हम 'गीतावली' और 'कृष्ण गीतावली' में पाते हैं। ठेठ अवधी की जो मिठास हमें जायसी की पद्मावत में मिलती है, वही जानकी मंगल, पार्वती मंगल, वरवै रामायण और रामलला नहछू में हम पाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समस्त रचना-पद्धतियों का समावेश— गोस्वामी तुलसीदास के समय में काव्य-रचना की कई शैलियाँ प्रचलित थीं। अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के द्वारा उन्होंने समस्त महत्त्वपूर्ण काव्य-पद्धतियों में काव्य-रचना की। यथा—

(क) वीर-गाथा काल की छप्पय-पद्धति—इस पद्धति पर इनके कुछ स्फुट छंद ही मिलते हैं। परन्तु इनमें इनकी निपुणता पूर्णरूप से प्रदर्शित है।

धनुषभंग को अवसर का वर्णन करते हुए एक छंद देखिए—

डिगति उर्वि अति गुर्वि, सर्व पब्बै समुद्र सर।
ब्याल वधिर तेहि काल, विकल दिगपाल चराचर।
दिग्गयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्ख भर।
सुरविमान हिमभानु, संघटित होत परस्पर।
चौंके विरंचि संकर सहित, कोल कमठ अहि कलमल्यौ।
ब्रह्मांड खंड कियो चंड धुनि, जबहिं राम सिव धनु दल्यौ।

(ख) विद्यापति और सूरदास की गीत-पद्धति—इस पद्धति पर गोस्वामीजी ने बहुत विस्तृत और सुन्दर रचना की। गीतावली, श्रीकृष्ण-गीतावली और 'विनय-पत्रिका' इस पद्धति पर लिखी गई रचनाएँ हैं। गोस्वामीजी को इन रचनाओं के सम्बन्ध में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि, "सूरदासजी की रचना में कोमल कांत पदावली और अनुप्रासों की वह विचित्र योजना नहीं है जो गोस्वामीजी की रचना में है। × × हृदय के विविध भावों की व्यंजना गीतावली के मधुर पदों में देखने योग्य है।" 'विनय-पत्रिका' का संस्कृत पद विन्यास तो 'गीत गोविन्द' के पद विन्यास की कोटि का है। इतना ही नहीं वल्कि इसमें एक विशेषता भी है। वह यह कि गीत गोविंद का पद विन्यास विषय है जबकि 'विनय-पत्रिका' का पद विन्यास सर्वत्र रसानुकूल है।

गीतावली में हृदय के विविध भागों की मधुर व्यंजना द्रष्टव्य है। देखिए निम्नलिखित पद में कौशल्या के सामने भरत अपनी आत्म ग्लानि की व्यंजना किन शब्दों में करते हैं—

जो हौं मातुमते महं ह्वै हौं।
तौ जननी जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रसंग के अन्तर्गत यह बता देना आवश्यक है कि गीतावली की रचना सूरदासजी के पदों के अनुकरण पर की गई थी। राम की बाललीला सम्बन्धी कई पदों में केवल राम श्याम का ही अन्तर है। इस अनुकरण का प्रभाव यहाँ तक हुआ है कि गीतावली के अन्तिम भाग में तुलसीदासजी का मर्यादित रूप तिरोहित हो गया है। गीतावली में लंकाकाण्ड तक जो मार्मिक स्थलों का चुनाव हुआ है, वह तुलसी के अनुरूप है परन्तु उत्तरकाण्ड में पहुँचते-पहुँचते सूर-पद्धति के अतिशय अनुकरण के कारण उनकी गम्भीरता बहुत कम हो गई है।

(ग) गंगा आदि भाटों की कवित्त-सवैया-पद्धति—'कवितावली' इसी पद्धति पर की गई रचना है। इस ग्रन्थ में गोस्वामी तुलसीदासजी कवित्त-सवैया में सम्पूर्ण रामचरित्र कह गये हैं। इसमें विभिन्न रसों से सम्बन्धित वर्णन अत्यन्त विशद रूप में उपलब्ध होते हैं। भाषा अत्यन्त पुष्ट एवं प्रांजल व्रजभाषा है। इसमें कोमल कांत पदावली युक्त ध्वनिगर्भा व्रजभाषा का उदाहरण देखिए—

राम को रूप निहारत जानकी, कंकन के नग की परिछाहीं।

× × ×

तथा—

गोरो गरूर गुमान भरो यह, कौसिक छोटो सो ढोटो है काको।

(घ) नीति के उपदेश की सूक्ति-पद्धति—यह पद्धति अपभ्रंश काल से चली आती थी। इस पद्धति पर कबीरदास आदि संत कवियों ने नीति-सम्बन्धी बानी की रचना की थी। इस पद्धति पर रचित अनेक दोहे 'रामचरितमानस' तथा दोहावली में मिलते हैं। इनमें धर्म, भक्ति, प्रेम, एवं लोक-व्यवहार सम्बन्धी मार्मिक बातें बड़ी ही कुशलता के साथ कही गई हैं। उदाहरण देखिए—

राम नाम मणि दीप धरु जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरेउ जो चाहत उजियार।

(ङ) जायसी आदि सूफी कवियों की दोहा-चौपाई वाली प्रबन्ध-पद्धति—

गोस्वामीजी की अमर काव्य-रचना 'रामचरितमानस' इसी पद्धति की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचना है। इसी पद्धति पर इनसे पहले जायसी अपने अमर-काव्य पद्मावत् की रचना कर चुके थे। 'पद्मावत्' की भाँति 'रामचरितमानस' की भी भाषा अवधी है। अन्तर यह है कि तुलसी की अवधी साहित्यिक, संस्कृत गर्भित और परिनिष्ठित है। जायसी में केवल ठेठ अवधी का माधुर्य है। परन्तु तुलसी की रचना में संस्कृत की कोमल काँत पदावली के माधुर्य का वहुत ही सुखद एवं मनोहर मिश्रण है। निम्नलिखित उदाहरणों द्वारा दोनों कवि पुंगवों की अवधी का अन्तर स्पष्ट हो जाता है—

जब हुँत कहिगा पेखि संदेसी। सुनिहुँ कि आवा है परदेसी।
भइउँ विरह जरि कोइलि कारी। डारि डारि जो कूकि पुकारी।

—जायसी

अमिय मूरिमय चूरन चारू। समता सकल भवरुज परिवारू।
सकुल संभु तनु विमल विभूती। मंजुल मंगल मोद प्रसूती।

—तुलसी

(च) **बरवा-पद्धति**—रहीम ने बरवा छन्द में रचना की शैली प्रचलित कर दी थी। यह अवधी का एक वहुत ही मधुर छन्द है। गोस्वामीजी ने इस छन्द में पूरे रामचरित्र का ही वर्णन कर डाला। यथा—

बिरह आग उर ऊपर जब अधिकाइ।
ये अँखियाँ दोउ बैरिन देंइ बुझाइ।

उपर्युक्त विवेचन द्वारा स्पष्ट है कि गोस्वामीजी ने काव्य की सब प्रकार की रचना शैलियों में काव्य-रचना प्रस्तुत की और प्रत्येक क्षेत्र में उच्च स्थान को प्राप्त किया। यह गौरव अन्य किसी कवि को प्राप्त नहीं है। जायसी ब्रजभाषा नहीं लिख सकते थे और सूरदास अवधी में रचना नहीं कर सके।

अनुबन्ध की दृष्टि से भी गोस्वामीजी ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही प्रकार के काव्य लिखे। कृष्ण गीतावली लिखकर उन्होंने कृष्ण-काव्य को भी अछूता नहीं छोड़ा।

गोस्वामीजी के काव्य की सामान्य प्रवृत्तियाँ—

हम ऊपर गोस्वामीजी द्वारा रचित विभिन्न ग्रन्थों एवं काव्य-पद्धतियों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का उल्लेख कर चुके हैं। इन ग्रन्थों के अध्ययन के फलस्वरूप हमारे सम्मुख उनकी निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ आती हैं—

(१) वह मर्यादा के प्रवल समर्थक थे। उन्होंने सदाचार को सर्वोपरि स्थान दिया।

(२) उन्होंने वेदों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। वह वैदिक-पौराणिक संस्कृति के प्रवल समर्थक थे। वह वर्ण-व्यवस्था जन्म परक मानते थे। वह मुस्लिम संस्कृति के स्थान पर पौराणिक संस्कृति की प्रतिष्ठा करने में प्रयत्न-शील रहे और इस दिशा में वह वहुत कुछ सफल भी हुए।

(३) वह समाज में साहित्यिक उच्च आदर्श प्रतिष्ठित करना चाहते थे। इस सम्बंध में डा० भागीरथ दीक्षित का कथन दृष्टव्य है। यथा—"इसी से अलंकार शास्त्र और रस-निरूपण की विशेषता उनकी रचना में खूब देख पड़ती है। × × नायिका भेद से उन्होंने अपने साहित्य को बचाने का पूरा प्रयत्न किया है, क्योंकि इसे वे देश और समाज दोनों के लिए अत्यन्त हानिकर समझते थे।

(४) विविध प्रकार की भाषा का परिमार्जित प्रयोग करके वह साहित्यिक जीवन का स्तर उठाना चाहते थे।

(५) राम नाम का प्रसार उनकी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति थी।

(६) समन्वय भावना उनकी सर्वोपरि एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति थी। अपने समय में प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायों का समन्वय और विभिन्न दार्शनिक विचारों की मूलभूत एकता का प्रतिपादन उनका मुख्य लक्ष्य था। इसके लिए उन्होंने ज्ञान और भक्ति, शिव और विष्णु, अद्वैत और विषिष्टाद्वैत की एकता का प्रतिपादन किया। उन्होंने राम-कथा का प्रवन्ध-विस्तार इस चतुराई एवं मौलिकता के साथ किया कि उसके अन्तर्गत समस्त मतों और विचारधाराओं का समन्वय हो गया। डा० वलदेवप्रसाद मिश्र ने तुलसी की समन्वय-भावना का निरूपण करते हुए लिखा है कि, "वस्तुतः गोस्वामीजी ने इस प्रकार की राम रसायन तैयार करने की मन में ठानी जिसमें गीता की अनासक्ति, श्रमणों का अहिंसावाद, वैष्णवों का अनुराग, शैवों का वैराग्य, शाक्तों का जपयोग, शंकराचार्य का अद्वैतावाद, रामानुज की भक्ति-भावना,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निम्बार्क का द्वैताद्वैतभाव मध्व की रामोपासना, वल्लभ का बालरूप आराधन, चैतन्य का प्रेम, गोरख आदि योगियों का संयम, कबीर आदि सन्तों का नाम महात्म्य ही नहीं किन्तु मुसलमानों का मानव-बन्धुत्व तथा सामूहिकत्व भी आदर सहित अपनाया।

(७) गोस्वामीजी ने अपने काव्य-ग्रन्थों के अन्तर्गत समस्त भावों और व्यवहारों को स्थान प्रदान किया। "एक ओर तो उनकी वाणी व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विरागपूर्ण शुद्ध भगवद् भक्ति का उपदेश करती है, दूसरी ओर लोकपक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्तव्यों का सौन्दर्य दिखाकर मुग्ध करती है। व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोकधर्म की अत्यन्त उज्ज्वल छटा उसमें वर्तमान है।" (पं० रामचन्द्र शुक्ल)

निष्कर्ष—समस्त काव्य-प्रवृत्तियों के साथ रागात्मक सम्बन्ध होने के कारण तथा विभिन्न मतों एवं वादों के मध्य समन्वय स्थापित करके लोक-ग्राह्य सामान्य धर्म का रूप प्रशस्त कर देने के कारण गोस्वामी तुलसीदासजी सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय कवि थे।

प्रश्न १४—"तुलसी का काव्य उनके युग का दर्पण है।" इस कथन की सत्यता प्रमाणित कीजिए।

उत्तर—साहित्यकार निर्वात या शून्य में काव्य रचना नहीं करता है। वह इच्छापूर्वक अथवा अनिच्छापूर्वक, प्रत्यक्ष रूप से अप्रत्यक्ष रूप से अपनी परिस्थितियों द्वारा, अपने वातवरण द्वारा प्रभावित होता ही रहता है। इन प्रभावों और अनुभवों के आधार पर वह अपनी अभिव्यक्ति करता है। परिस्थितियाँ अभिव्यक्ति को प्रभावित ही नहीं करती हैं अपितु अभिव्यक्ति को प्रेरणा भी प्रदान करती हैं। इसी से कहा जाता है कि साहित्यकार का निर्माण परिस्थितियों द्वारा होता है और साहित्य समाज का दर्पण होता है। गोस्वामी तुलसीदास भी इस नियम के अपवाद नहीं हैं। उनके ग्रन्थों में तत्कालीन परिस्थितियों का प्रतिपालन स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है।

राजनैतिक परिस्थितियाँ—गोस्वामी तुलसीदास का समय भारतवर्ष के इतिहास में लोधीवंश (पठानवंश) के शासन का अन्तिमकाल और मुगल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शासकों—बावर, हुमायूँ, अकवर, जहाँगीर का संस्थापन एवं अभ्युदय काल था इसके विपरीत वह देश के राजपूत राजों और शासकों का अवसान काल था।

मुगल सम्राट किसी भी प्रकार अपना राज्य स्थापित करना चाहते थे और देशी राजे अपना वैभव-विलास सुरक्षित रखना चाहते थे। इसलिए वे आपस में बात पाछे युद्ध कर बैठते थे और अपने प्रिय से प्रिय सम्बन्धी को भी तलवार के घाट उतारते हुए संकोच नहीं करते थे। प्रजा-पालन से प्रायः उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। अकवर ने इस स्थिति में वहुत कुछ परिवर्तन किया, परन्तु वह राजनीति में नैतिकता का समावेश नहीं कर पाया। जो भी हो प्रजा का शोषण बरावर होता रहा। प्रजा से कर वसूल करना अधिकारी गण अपना एक मात्र कर्तव्य मानते थे और दोहरे शासन-भार के नीचे प्रजा कराह उठी थी।

इन विषम राजनीतिक परिस्थितियों ने गोस्वामीजी के भावुक हृदय पर गम्भीर प्रभाव डाला। उनको प्रजापालन में तत्पर प्राचीन रघुवंशी राजाओं के आदर्श का स्मरण हो आया और उनके मुँह से ये शब्द निकल पड़े—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवस नरक अधिकारी।।

अपने आदर्श को मूर्त रूप देने के लिए गोस्वामीजी ने राम-कथा को लेकर 'रामचरितमानस' की रचना की। उन्होंने भरत जैसे भाई का आदर्श प्रस्तुत करके आपस में लड़ने वाले हिन्दू शासकों को सचेत किया। जब तक हिन्दू राजे आपस में राम और भरत की भाँति व्यवहार नहीं करेंगे, तब तक भारतवर्ष में सुख-शांति असम्भव है।

उन्होंने रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली तथा दोहावली में कलि-युग के रूप में राज्य एवं समाज का जो वर्णन किया, वह उनके समय की दुर्दशा का वर्णन मात्र है। उनके निम्नलिखित कथन तत्कालीन शासन और शासक वर्ग के प्रति उनकी खीझ को ही व्यक्त करते हैं—

गोंड़, गंवाह, नृपाल कलि, यवन महा महिपाल
साम न दाम न भेद अब, केवल दण्ड कराल।—(दोहावली)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दण्ड विडंव प्रजा नितहीं ॥
—(रामचरितमानस)

तथा— काल कराल नृपाल कराल व राज-समाज बड़ोई छली है।
—(कवितावली)

सामाजिक परिस्थितियाँ—राजनीतिक परिस्थितियाँ अस्तव्यवस्त हो जाने पर सामाजिक परिस्थितियों का विषम हो जाना स्वाभाविक ही है। उन दिनों मुग़ल साम्राज्य के प्रसार के साथ इस्लाम धर्म का भी प्रसार हो रहा था। रावण राज्य के बहाने गोस्वामीजी ने राक्षसी अत्याचारों से परिपूर्ण तत्कालीन राज्य का ही वर्णन किया था—

जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं वेद प्रतिकूला।
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाँउ पुर आगि लगावहिं।

इधर हिन्दू समाज की यह स्थिति थी कि भारतवर्ष की प्राचीन वर्णाश्रम व्यवस्था प्रायः लोप हो गई थी। ऊँच-नीच की भावना बड़े ही बुरे रूप में व्याप्त थी। इस स्थिति का वर्णन उन्होंने बड़े ही दर्द भरे शब्दों में किया है—

बरन धरम गयो, आश्रम निवास तज्यो,
जासन चकित सो परावनो परोसो है। (कवितावली)

तथा—
बरन धरम नहिं अत्याचारी। श्रुति विरोधरत सब नर नारी।
(रामचरित-मानस)

साधु-संतों का समाज में सम्मान था। परन्तु साधु-संत तथा विप्र-वर्ग अपने कर्त्तव्य का निर्वाह सम्यक् प्रकारेण नहीं कर रहा था। जनता की साधु-संत समाहरण वृत्ति का अनुचित लाभ उठाकर वे लोग धर्म के नाम पर पाखण्ड और आडम्बर का प्रचार कर रहे थे—

द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजाजन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।
मारग सोइ जा कहुँ जो भाधा। पंडित सोइ जो गाल बजावा।
मिथ्यादंभ-दम्भ रत गोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'उत्तर काण्ड (रामचरितमानस) में गोस्वामीजी ने कलियुग-वर्णं के बहाने वस्तुतः उस समय की सामाजिक दुर्दशा का बहुत ही सजीव वर्णन किया है। सारांश यह है कि सभी क्षेत्रों में मिथ्याचार का बोलवाला था—

सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दम्भ सो बड़ आचारी।
× × × ×
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी।

—इत्यादि

उन दिनों के शोषण कर्त्ता स्वार्थी शासकों ने आर्थिक स्थिति को एकदम बिगाड़ दिया था। चारों ओर दुर्भिक्ष पड़ रहे थे और लोग बेकार—बेरोजगार घूम रहे थे। "कवितावली" में इस स्थिति का सजीव वर्णन है—

बनिज को न बनिज चाकर को न चाकरी।
तथा— कहैं एक एकन सों कहाँ जाइ काह करी।"

नैतिक पतन की पराकाष्ठा थी। लोग काम के वशीभूत हो रहे थे। नारी के वश में होकर 'वन्दर' की तरह नाच रहे थे और उनको अनुजा-तनुजा का भी विचार नहीं रह गया था।

नारियों को केवल भोग की सामग्री समझा जाने लगा था। समाज में उनका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रह गया था। भारतीय कुल-ललना के रूप में उनका जो सम्मान प्राप्त था, वह समाप्त हो चुका था।

लोग पराई निन्दा में रस लेते थे। परअपवाद एक प्रकार से युग धर्म बन गया था। सारांश यह है कि समाज का सामान्य जीवन-व्यक्तिगत, पारिवारिक सभी स्तरों पर, पूर्णतया विश्रृंखलित हो गया था। इस स्थिति को देखकर तुलसी का संवेदन शील मानव दोलित हो उठा था—

इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि भूरि रही समता स्वगता।
सब लोग बियोग बिसोग हए। बरनाश्रम धर्म अचार गये।

इतना ही नहीं धर्म के क्षेत्र में भी दुर्व्यवस्था फैली हुई थी। अनेकानेक मत मतान्तर अपनी-अपनी कह कर प्रजा को गुमराह कर रहे थे। सबसे अधिक जोर ज्ञानमार्गी संतों का था। वे लोग ज्ञान के नाम पर दम्भ और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आडम्बर पूर्ण आचरण का प्रचार कर रहे थे। इस धार्मिक स्थिति की माँग थी कि एक ऐसे सामान्य मार्ग की प्रतिष्ठा की जाए, जो लोगों में अपने जीवन के प्रति अवस्था उत्पन्न करे और उन्हें कर्म-क्षेत्र में प्रवृत्त करे। गोस्वामी तुलसीदास ने इस आवश्यकता को पहचाना। उन्होंने पहले तो आडम्बर फैलाने वाले गोरखपंथी साधुओं को फटकारा—

गोरख जागयो जोग, भगति भगायो लोग
निगम नियोग ते, सो केलि ही छरो सो है।

(कवितावली)

तथा—

हम लखि, हमहिं हमार लखि, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहिं का लखै, राम नाम जपु नीच।

और फिर उन्होंने श्रुति सम्मत एवं संजुत विरति विवेक हरि भक्ति-पंथ की कल्पना की, जो लोक कल्याण कारी था तथा जिसमें जनता का मन रम सकता था। उन्होंने विष्णु के अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम राम की अवतारणा की और अनेक प्रकार से उनके लोकरंजनकारी स्वरूप के प्रति आस्था उत्पन्न की। राम-भक्ति का मार्ग कर्त्तव्य-पालन, लोक-कल्याण तथा धर्म-साधना का मार्ग था। भारतीय जनता का चित्र उसमें रमा। राम-भक्ति के के प्रवाह में उसकी खिन्नता या उदासी वह गई।

साहित्यिक परिस्थितियाँ—गोस्वामी तुलसीदासजी एक सहृदय एवं संवेदन शील व्यक्ति थे। वह सबको साथ ले चल कर समाज की भलाई करने के इच्छुक थे। उन्होंने अपने समय में प्रचलित समस्त काव्य-पद्धतियों को अपनाया, और अपनी रचनाओं में स्थान दिया।

उनके समय में काव्य के दो रूप प्रचलित थे—जायसी आदि सूफी कवियों के प्रबन्ध काव्य तथा दोहे पद आदि के रूप में मुक्तक काव्य। गोस्वामी जी ने दोनों ही रूपों में ग्रन्थ रचना की। 'रामचरित-मानस' उनका प्रसिद्ध काव्य है। दोहावली, वैराग्यसंदीपनी, वाहुक आदि मुक्तक काव्य के उदाहरण हैं। विशेषता यह है कि कई ग्रन्थों में प्रबन्धात्मक मुक्तक शैली का सफल निर्वाह है। गीतावली, बरवै, कवितावली ग्रन्थ मुक्तक काव्य के उदाहरण हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रबन्ध काव्य के भी दो रूप प्रचलित थे—महाकाव्य और खण्ड काव्य। 'मानस' तो महाकाव्य है ही। जानकी मंगल, पार्वती—खण्ड काव्य के सुन्दर उदाहरण हैं। इनके समय में काव्य भाषा के दो रूप प्रचलित थे—व्रज भाषा और अवधी। गोस्वामी जी ने दोनों ही काव्य भाषाओं को अपनाया। विनय-पत्रिका, गीतावली, कवितावली इनकी व्रज भाषा की रचनाएँ हैं। रामचरित-मानस' इनकी अवधी की प्रसिद्ध रचना है। यहाँ यह वता देना आवश्यक है कि 'रामचरितमानस' की भाषा पश्चिमी अवधी या परिनिष्ठित अवधी है। इन्होंने पूर्वी अवधी या ठेठ अवधी में भी ग्रन्थ रचना की। जानकी मंगल, पार्वती मंगल, वरवै रामायण, रामलला नहछू इनकी पूर्वी अवधी की रचनाएँ हैं।

गोस्वामीजी के समय में भक्ति के क्षेत्र में दो प्रकार की काव्य-रचना हो रही थी—राम भक्ति परक और कृष्ण भक्ति परक। गोस्वामीजी यद्यपि राम भक्त थे और उन्होंने प्रायः राम भक्ति का ही गायन किया, तथापि उन्होंने कृष्ण भक्ति परक काव्य को भी अछूता नहीं छोड़ा। उनकी श्रीकृष्ण गीतावली कृष्ण-भक्ति-काव्य का प्रतिनिधित्व करती है। गोस्वामीजी के समय में काव्य-रचना की कई शैलियाँ प्रचलित थीं। समस्त शैलियों का प्रतिनिधित्व हमें उनकी रचनाओं में प्राप्त हो जाता है। यथा—

(१) वीर-गाथा काल के कवियों की छप्पय शैली—इस शैली में वे कवि अपने आश्रयदाता राजाओं के शौर्य का वर्णन करते थे। गोस्वामीजी ने भी राम के शौर्य का वर्णन करते समय इसी ओजपूर्ण शैली का प्रयोग किया है। 'मानस' में धनुर्भंग के अवसर पर एवं 'लंका काण्ड' में युद्ध-वर्णन करते समय तथा 'कवितावली' के सुन्दर काण्ड एवं लंका कांड में इस शैली के दर्शन होते हैं। छप्पय के अतिरिक्त ऐसे अवसरों पर पद्धरी, तोमर जैसे ओज व्यंजक छन्दों के भी दर्शन हो जाते हैं।

(२) साखी अथवा दोहा-शैली—सिद्धों नाथपंथी संतों तथा निर्गुण उपासना के समर्थक कवीर आदि भक्त-कवियों की वानियों में हमको यह शैली मिलती है। गोस्वामीजी ने अनेक स्थलों पर—वैराग्य संदीपनी, रामाज्ञा प्रश्न तथा दोहावली में इसी शैली को अपनाया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) शृंगारी कवियों की कवित्त-सवैया वाली ललित शैली—ब्रजभाषा के शृंगारी कवि कोमल भावों की अभिव्यक्ति के लिये कवित्त-सवैया छंदों का प्रयोग करते थे। गोस्वामीजी के समकालीन शृंगारी कवि गंग कवि, ब्रह्म आदि इसी शैली में रचना किया करते थे। 'कवितावली' में कोमल भावपूर्ण स्थलों के वर्णन करते समय गोस्वामीजी ने इसी शैली को अपनाया।

(४) भक्त-कवियों की गीत अथवा पद शैली—विद्यापति तथा निर्गुण भक्त कवियों से इस शैली की परम्परा चली आती थी। सूरदास आदिक अष्टछाप के तथा अन्य कृष्ण भक्त कवियों ने इस शैली का विकास भी किया और शृंगार भी किया। यह शैली बड़ी ही मधुर एवं संगीत के स्वरों से गुञ्जायमान थी। इसकी संगीतात्मकता एवं मधुरता की ओर गोस्वामीजी आकृष्ट हुए और उन्होंने 'विनय-पत्रिका' 'गीतावली' तथा 'कृष्ण गीतावली' में इसी पद शैली का प्रयोग किया।

(५) सूफी कवियों की दोहा-चौपाई की शैली—प्रेमाख्यानक काव्य लिखने वाले सूफी कविराज कुतुबन, मंझन, जायसी आदि—दोहा-चौपाई में अवधी भाषा में प्रबन्धात्मक काव्य-रचना करते आ रहे थे। गोस्वामीजी ने रामचरित का गायन करने के लिए 'रामचरित-मानस' महाकाव्य में इसी शैली को अपनाया।

(६) बरवा शैली—अब्दुर्रहीम खानखाना ने नायिका का पद वर्णन करने के लिए 'बरवा छंद' को काव्योचित बना लिया था। यह छंद अवधी का लोकप्रिय एवं मधुर छंद है। गोस्वामीजी ने इस छंद में 'बरवै रामायण' की रचना की और इस छंद को भी प्रतिनिधित्व प्रदान किया।

(७) लोकगीत शैली—पुत्र-जन्म, विवाह आदिक मांगलिक अवसरों पर लोकगीत शैली में गीत गाने की परम्परा जन-जीवन का आवश्यक अंग है। यह परम्परा बहुत समय से चली आती थी। लोक-संस्कृति एवं जन-संस्कृति के अभिव्यंजक इन गीतों ने भी तुलसीदासजी को प्रभावित किया और इस शैली में उन्होंने 'जानकी मंगल' पार्वती मंगल और 'रामलला नहछू' की रचना की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निष्कर्ष—गोस्वामी तुलसीदास के काव्य-ग्रन्थों ने हमको सम-सामयिक परिस्थितियों एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों की पूरी छाया दिखाई देती है। उनके ग्रन्थों के अध्ययन द्वारा हम उनके समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों तथा साहित्यिक प्रवृत्तियों से पूर्णतया परिचित हो जाते हैं। अतः हम यह निस्संकोच कह सकते हैं कि, "गोस्वामी तुलसीदास का काव्य उनके युग का सच्चा दर्पण है।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोस्वामी तुलसीदास का भावपक्ष और उनकी भावुकता

प्रश्न १५—मानव प्रकृति के जितने अधिक रूपों के साथ गोस्वामीजी के हृदय का रागात्मक सामंजस्य हम देखते हैं, उतने अधिक रूपों के साथ हिन्दी भाषा के अन्य कवि का नहीं।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन का विवेचन कीजिए।

अथवा

प्रश्न १६—"तुलसी के काव्य में सभी रसों तथा भावों की बड़ी ही विशद मार्मिक और गम्भीर व्यंजना हुई है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न १७—सिद्ध कीजिए कि तुलसी भाव-क्षेत्र के सम्राट हैं।

उत्तर—विद्वानों के मत—गोस्वामी तुलसीदास ने मानव-जीवन की समस्त स्थितियों का वर्णन किया है। उन्होंने सभी रसों और भावों का सफल चित्रण किया है। वह भाव-क्षेत्र के सम्राट हैं। इस विषय में प्राय: समस्त आलोचक एक मत हैं। यथा—"मानव प्रकृति के जितने अधिक रूपों के साथ गोस्वामीजी के हृदय का रागात्मक सामंजस्य हम देखते हैं उतना अधिक हिन्दी भाषा के और किसी कवि के हृदय का नहीं।" (डा० श्यामसुन्दरदास)

× × ×

"मानस में जहाँ हम सौन्दर्य का वर्णन पाते हैं तो साथ ही उस सौन्दर्य को देखकर होने वाली प्रफुल्लता भी देखते हैं। इसी प्रकार जहाँ शक्ति है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहाँ प्रगति, जहाँ शील है वहाँ हर्षपुलक, जहाँ गुण है वहाँ आदर, जहाँ शोक है वहाँ करुणा, जहाँ पाप है वहाँ घृणा, जहाँ उपकार है, वहाँ कृतज्ञता, ये तुलसी के हृदय में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से विद्यमान हैं।" (आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल)।

डा० माताप्रसाद गुप्त का कथन है कि हमारे कवि का कौशल एक और क्षेत्र में भी असाधारण रूप में प्रस्फुटित हुआ है। वह क्षेत्र है भावों और मनोवेगों का। जितनी सफलतापूर्वक हमारे कवि ने विभिन्न कक्षा, तीव्रता और वेग के भावों और मनोवेगों का चित्रण किया है, वह एक महाकवि के अनुरूप ही हैं।....हमारे कवि की कृतियाँ मनुष्य के स्वाभाविक भावों और मनोवेगों के सुन्दर चित्रों में बड़ी सम्पन्न हैं। और उस पर भी विचित्रता यह है कि इन चित्रों में कहीं भी किसी प्रकार का प्रयास परिलक्षित नहीं होता।"

डा० रामकुमार वर्मा ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है कि "मानवी संसार की विभिन्न परिस्थितियों की मनोदशा का अधिकारपूर्ण ज्ञान तुलसीदास के कवित्व की सबसे बड़ी विशेषता है।

श्री रामनरेश त्रिपाठी गोस्वामीजी के मनोवैज्ञानिक वर्णन के प्रति आश्चर्य प्रकट करते हुए बहुत पहले ही लिख चुके हैं कि, "देखकर आश्चर्य होता है कि कवि को भिन्न-भिन्न स्वभावों और रुचियों के मनुष्यों का कितना प्रशस्त ज्ञान था। वे कितने सूक्ष्मदर्शी थे। किस अवसर पर मन में कैसी बात उपजती है, इसका पता उनको अच्छी तरह था।"

भावुकता की कसौटी—उपर्युक्त मतों के आधार पर हम कह सकते हैं कि किसी कवि के भावपक्ष अथवा उसकी भावुकता की श्रेष्ठता का मूल्यांकन करने की कसौटी निम्नलिखित अवयवों द्वारा निर्मित होती है—

(i) मार्मिक स्थलों की पहिचान।

(ii) मानव जीवन की अधिकतम स्थितियों का वर्णन।

(iii) भावों की गहराई।

(iv) संचारी भावों की सफल व्यंजना तथा नवीन मनोभावों की उद्भावना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोस्वामीजी के काव्य के भाव-पक्ष का आकलन

मार्मिक स्थलों की पहिचान—

कवि की भावुकता की पहिचान दो लक्षणों द्वारा की जाती है। मार्मिक स्थलों का विस्तृत वर्णन तथा वर्ण्य विषय के साथ कवि-हृदय का तादात्म्य। गोस्वामी तुलसीदास ने राम-कथा के अन्तर्गत आने वाले मार्मिक स्थलों को भली प्रकार पहचाना है और उनका मर्मस्पर्शी तथा सविस्तार वर्णन किया है। तुलसी द्वारा वर्णित राम-कथा के अन्तर्गत हमको ऐसे स्थलों का विस्तृत वर्णन मिलता है, जो मनुष्य मात्र के हृदय को स्पर्श करने वाले हैं। जैसे—जनक-वाटिका में राम-सीता का परस्पर-दर्शन, रामवन-गमन, दशरथ-मरण, भरत की आत्म-ग्लानि, वन के मार्ग में राम-लक्ष्मण-जानकी के प्रति नर-नारियों की सहानुभूति, चित्रकूट में राम-भरत-मिलन, शबरी का आतिथ्य, लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम का विलाप, सीता की अग्नि परीक्षा इत्यादि।

राम-वन गमन के प्रसंग के अन्तर्गत गोस्वामीजी ने ग्राम-वधूटियों का समावेश करके इस प्रसंग का वर्णन रामचरितमानस, गीतावली तथा कवितावली तीनों ही ग्रन्थों में बड़ी सहृदयता के साथ किया है। ये स्त्रियाँ राम-जानकी के सौन्दर्य पर मुग्ध होती हैं, लक्ष्मण के सेवा-भाव को सराहती हैं, ऐसे सुकुमार बालकों को वनवास की आज्ञा देने वाले राजा-रानी की निष्ठुरता पर पछताती हैं और उनको बुरा-भला कहती हैं। बुरा इसलिए कि उन्होंने अपनी पत्नी के कहने से आगा-पीछा सोचे बिना ही फूल सदृश सुकुमारों को वन के आतप-वात में भेज दिया। भला इसलिए कि उन्होंने उनको ऐसे अनुपम एवं मनोहर सौन्दर्य के दर्शन का लाभ प्रदान किया। इसी प्रसंग के अन्तर्गत गोस्वामीजी ने ऋषि-मुनियों की मनोदशाओं का संकेत करते हुए हल्का सा मज़ाक भी कर दिया है। वन-वासी ऋषि भी राम-वन-गमन को अच्छा समझने लगते हैं, क्योंकि इनकी चरणरज के स्पर्श से पर्वत-शिलाएँ चन्द्रमुखी नारियाँ बन जाएँगी और वे एकांकी जीवन के अभिशाप से मुक्त हो जाएँगे।

ग्राम के नरनारी राम-लक्ष्मण व जानकी के दर्शन करके कृतार्थ होते हैं—

राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयन फल होहिं सुखारी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और उनका सामीप्य-लाभ चाहते हैं—

एक देखि बट छांह भलि डासि मृदुल तृन पात।
कहहिं गंवाइय छिनकु श्रम गवनब अबहिं कि प्रात।

वे राम की ओर संकेत करती हुई जानकी से पूछती हैं—

"साँवरे से सखि रावरे को हैं" जानकी मुँह से उत्तर न देकर आँख के कटाक्ष द्वारा ही श्रीराम को अपना पति कह देती हैं। भारतीय कुल-ललना के इस मनोहर रूप को देखकर ग्राम-वधूटियाँ कृतकृत्य हो जाती हैं—

तिरछे कर नैन दै सैन तिन्हें समुझाइ कछू मुसकाय चली।
अनुराग तड़ाग में भानु उदै बिगसी मनो मंजुल कंज कली।

चित्रकूट में राम और भरत के मिलन का प्रसंग 'मानस' का सर्वाधिक मार्मिक प्रसंग है। इस प्रकार का मार्मिक प्रसंग हिन्दी साहित्य में अन्यतम है। इसके सम्बन्ध में आचार्य पं० रामचंद्र शुक्ल का कथन द्रष्टव्य है। 'चित्रकूट में राम और भरत का जो मिलन हुआ है वह शील और शील का स्नेह और स्नेह का, नीति और नीति का मिलन है। इस मिलन में संघटित उत्कर्ष की दिव्य-प्रभा देखने योग्य है। यह झाँकी अपूर्व है।''''शील से पूर्ण उस समाज को देखकर सभी वनवासी भी सात्विक वृत्ति में लीन हो गये। चित्रकूट-मिलन के प्रसंग में तुलसी ने नीति, स्नेह, शील, विनय, त्याग आदि उदात्त वृत्तियों का जो मनोयोग पूर्ण वर्णन किया है, वह सर्वथा अपूर्व एवं स्पृहणीय है। इसमें भारतीय शिष्टता और सभ्यता का अपूर्व चित्र उपस्थित किया गया है। इसमें धर्म के विविध स्वरूपों की जो योजना तथा हृदय के उदात्त भावों की जो उद्‌भावना की गई है वह 'रामचरितमानस' सदृश तुलसी के उदार 'मानस' में ही सम्भव थी।

वर्ण्य विषय के साथ हृदय का तादात्म्य स्थापित करने में भी तुलसी अद्वितीय हैं। वह जिस पात्र अथवा जिस दशा का वर्णन करते हैं, इसके साथ पूर्णतया एकाकार हो जाते हैं। उदाहरण के लिए हम लक्ष्मण-शक्ति के प्रसंग को लेते हैं। इस अवसर पर राम का धैर्य शोक के प्रवाह में बह जाता है। तुलसी के राम उस समय यह नहीं कहते हैं कि "कोई चिन्ता नहीं, मैं अकेला ही रावण का वध करके लंका-विजय करूँगा।" उस समय तुलसी के राम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक सामान्य जन की भाँति विलाप करते हुए दिखाई देते हैं। ऐसा लगता है मानो तुलसीदास ही अपने मूर्च्छित छोटे भाई की दशा पर विलाप करते हुए कह रहे हैं कि—

जो जनतो वन वंधु बिछोहू। पिता वचन मनतो नहिं ओहू।
जैहौं अवध कवन मुख लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई।

(रामचरितमानस)

तथा—

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
विपति बटावन वधु-वाहु बिन करौं भरोसो काको।

(गीतावली)

ऐसे अवसरों पर तुलसी की सहृदयता देखकर पाठक द्रवीभूत हो उठता है।

मानव-जीवन की समस्त स्थितियों का वर्णन—गोस्वामीजी ने मानव-जीवन की प्रत्येक स्थिति का भावुकतापूर्ण वर्णन किया है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि उनको भिन्न-भिन्न स्वभावों और रुचियों के मनुष्यों का कितना प्रशस्त ज्ञान था। वे कितने सूक्ष्मदर्शी थे। किस अवसर पर मन में कैसी वात उपजती है, इसका पता उनको अच्छी तरह था। वह अन्तर्गत में उत्पन्न होने वाले समस्त भावों के भावमय मनोहर चित्र खींचने में समर्थ और सफल हुए हैं। उनके काव्य के अन्तर्गत वर्णित मानव-स्थिति के अनेकानेक भेद हमें भाव-विभोर कर देते हैं। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में मानव-प्रकृति के जितने अधिक रूपों के साथ गोस्वामीजी के हृदय का रागात्मक सामंजस्य हम देखते हैं, उतना अधिक हिन्दी भाषा को और किसी कवि के हृदय का नहीं।"

इस प्रकार उनके काव्य के अन्तर्गत समस्त रसों की सरिता प्रवाहित है। आलम्बन भेद से रति के कई भेद होते हैं—वात्सल्य, भक्ति, दाम्पत्य और सौहार्द्र। गोस्वामीजी ने समस्त भेदों के सर्वांगपूर्ण और अत्यन्त सफल वर्णन लिखे हैं। अन्त में मातृ-भूमि के प्रति राम के प्रेम का वर्णन करके तो उन्होंने मानो प्रेम-पद्धति को पूर्णता ही प्रदान कर दी है—

जद्यपि सब वैकुण्ठ बखाना। वेद-पुरान-बिदित जग-जाना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवध सरिस प्रिय मोहि नहिं सोऊ। यह प्रसंग जानै कोउ कोऊ।

× × ×

अतिप्रिय मोहि इहां के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी।

दाम्पत्य प्रेम का वर्णन गोस्वामीजी ने बहुत ही मर्यादित और सुन्दर किया है। उसमें लोक-मर्यादा का उल्लंघन कहीं नहीं है। इसका रहस्य यह है कि गोस्वामीजी संयोग-शृंगार-वर्णन करते समय नायक-नायिका के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को भी साथ लेकर चलते हैं। जनक-वाटिका के प्रसंग में लक्ष्मण के प्रति राम के मन में उत्पन्न 'क्षोभ' का वर्णन करके वह मानो रति भाव को सर्वथा उज्ज्वल और पवित्र बना देते हैं। इनके द्वारा वर्णित दाम्पत्य प्रेम' के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि, "यह प्रेम कर्म क्षेत्र से अलग नहीं करता, उसमें विखरे हुए काँटों पर फूल विछाता है।

वीर-रस का वर्णन कौशल उन्होंने तीन शैलियों के भीतर दिखाया है— (i) प्राचीन राजपूत-काल के चारणों की छप्पय वाली ओजस्विनी शैली के भीतर (ii) मुक्ताकार कवियों की दण्डक वाली शैली के भीतर तथा (iii) अपनी निज की गीतिकावाली शैली के भीतर। युद्ध-वर्णन के अवसर पर उन्होंने वीभत्स रस के कई वर्णन लिखे हैं। नारद मोह के अन्तर्गत उन्होंने हास्य रस की योजना की है। एक-दो स्थलों पर उन्होंने अद्‌भुत रस की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। हनुमानजी जब पहाड़ हाथ में लिए हुए आकाश मार्ग से अपूर्व वेग के साथ उड़े जा रहे हैं, उस दृश्य का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी ने लिखा है कि—

मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुक धायो।"

"अद्‌भुत रस के इस आलम्बन द्वारा गोस्वामी जी की वह स्वाभाविक विश्व-व्यापार-ग्राहिणी सहृदयता लक्षित होती है जो हिन्दी के और किसी कवि में नहीं।" (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल)

सारांश यह है कि गोस्वामीजी ने मानव-जीवन के सुख और दुःख दोनों पक्षों के नाना रूपों के मर्मस्पर्शी चित्रण किए हैं। डा० श्यामसुन्दर के शब्दों में, "रामचरितमानस की व्यापकता से उन्हें अपनी कला के सम्पूर्ण कौशल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के विस्तार का सदुपयोग प्राप्त था। उसी में उन्होंने अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण-शक्ति का परिचय दिया। अन्तः-प्रकृति और वाह्य-प्रकृति दोनों से उनके हृदय का समन्वय था। ×× गोस्वामीजी केवल भावों के शुष्क मनोवैज्ञानिक विश्लेषक नहीं थे, उन्होंने उनके हल्के और गहरे रूपों को एक-दूसरे के साथ संश्लिष्टावस्था में देखा था, जैसा कि वास्तविक जगत में देखा जाता है। 'रामचरितमानस की विस्तीर्ण भूमि में इन्हीं के स्वाभाविक संयोग से उनकी रसप्रसविनी लेखनी सब रसों की धारा वहाने में समर्थ हुई है।"

भावों की गहराई—गोस्वामीजी ने जिन भावों का वर्णन किया है उनमें पूरी गहराई तक तीव्रता के दर्शन होते हैं। उनके द्वारा वर्णित प्रेम भाव अत्यन्त उत्कर्ष को प्राप्त दिखाई देता है। उनके द्वारा वर्णित प्रेम अनन्य और अलौकिक है। वन घनघोर चातक का आदर्श प्रेम है—

एक भरोसो एक बल, एक आस विस्वास।
एक राम घनस्याम हित, चातक तुलसीदास॥

मेघ के प्रति चातक का प्रेम मेघ के लोक-हितकर स्वरूप के प्रति आप से आप है—

जीव चराचर जहँ लग हैं सबको हित मेह।
तुलसी चातक मन वस्यो घन सों सहज सनेह॥

आराध्य के प्रेम तुलसी के प्रेम की अनन्यता ठीक ऐसी ही है—

जो जगदीस तो अति भलो, जो महीस बड़ भाग।
तुलसी चाहत जनम भर रामचरन अनुराग॥

तुलसी के प्रेम का विरह-पक्ष भी निराला है। यह कर्म में प्रवृत्त करके लोक का भार उतारने वाला विरह है। राम के प्रति सीता के विरह का जो वर्णन गोस्वामीजी ने किया है, उसमें गम्भीरता के साथ-साथ प्रेम की अनन्यता, विश्वास आदि कई भावों की गहरी व्यंजना दिखाई देती है। दशरथ-मरण के अवसर पर गोस्वामीजी ने जिस शोक का वर्णन किया है, वह शोक सर्वव्यापी एवं सर्वग्राही है। इस शोक की गम्भीरता उस समय साकार हो उठती है जब शोकाकुल नृपति दशरथ प्राण त्याग देते हैं और समस्त अयोध्या शोक के सागर में मग्न हो जाती है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लागति अवध भयावनि भारी। मानहु काल राति अँधियारी॥
घोर जन्तु सम पुर नर नारी। डरपहिं एकहि एक निहारी॥
× × ×
करि विलाप सब रोवहिं रानी। महा बिपति किमि जाइ बखानी॥
सुनि बिलाप दुखहू दुख लागा। धीरजहू कर धीरज भागा॥

गोस्वामीजी ने आत्म ग्लानि एवं दैन्य का वहुत ही पवित्र एवं सच्चा चित्रण किया है। 'विनय-पत्रिका' इस प्रकार के भावों की माला है ही। अन्यत्र भी इन भावों की मार्मिक व्यंजना हुई है। भरत और कैकेयी के प्रसंग में उसके साथ अमर्ष का जो संयोग हुआ है, वह अत्यन्त मनोहर है—

जो पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारेसि मोही॥

संचारी भावों की सफल व्यंजना तथा नवीन भावों की उद्भावना—गोस्वामीजी ने संचारी भावों की योजना में अपने मानवी प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का अच्छा परिचय दिया है। उनकी यह योजना वहुत ही मार्मिक एवं प्रभावशाली है। 'दैन्य' संचारी का यह उत्कर्ष देखते ही वनता है—

खीझिबे लायक करतब कोटि-कोटि कटु।
रीझिबे लायक तुलसी की निलजई।

चिन्ता और अभिलाषा संचारी भावों की यह व्यंजना देखिए—

तात जनक तनया यह सोई। धनुष जग्य जेहि कारन होई॥
तासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा॥
सो सब कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता॥

इतना ही नहीं गोस्वामीजी ने ऐसे-ऐसे मनोभावों का चित्रण किया है जिनकी ओर आजतक किसी कवि अथवा साहित्यशास्त्री का ध्यान ही नहीं गया है। विषाद, क्षोभ आदि से उत्पन्न मानसिक शैथिल्य के रूप में वर्णित उदासीनता द्रष्टव्य है—

हमहुँ कहब अब ठकुर सुहाती। नाहित मौन रहब दिनराती॥
कोउ नृप होउ हमहिं का हानी। चेरि छांड़ि अब होब कि रानी॥

तुलसी ने आश्चर्य से मिलते-जुलते संचारी चकपकाहट की योजना की है। 'चकपकाहट' किसी ऐसी वात पर होती है, जिसकी कुछ भी धारणा हमारे मन में न रही हो, और जो एकाएक हो जाए। जब राम द्वारा समुद्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर सेतु बाँध लेने का समाचार रावण को प्राप्त होता है तव वह एकदम चकपका जाता है। वह आश्चर्यचकित होकर मानो अपने दसों मुखों से एक साथ चिल्ला उठता है—

बाँधे वन निधि ! नीर निधि ! जलधि ! सिंधु ! बारीस।
सत्य, तोयनिधि ! कंपती ! उदधि ! पयोधि ! नदीस !

इसी प्रकार क्षोभपूर्ण 'आत्मनिन्दा' के रूप में एक नवीन संचारी की उद्भावना गोस्वामीजी ने की है। सोने के हिरन के पीछे अपनी सोने की सीता को खोकर राम वन-वन विलाप करते हुए घूमते हैं। भागते हुए हिरनों को देखकर वह आत्म-प्रवंचना करते हैं—

हमहिं देखि मृग-निकर पराहीं। मृगी कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं॥
तुम आनन्द करहु मृग जाए। कंचन मृग खोजन ये आए॥

स्वतन्त्र रूप में 'श्रम' संचारी की निम्नलिखित व्यंजना गोस्वामीजी की मौलिक उद्भावना है—

पुर तें निकसी रघुबीर बधू, धरि धीर दए मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै॥
फिर बूझति हैं चलनो अब केतिक, पर्नकुटी करिहौं कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की, अंखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै॥

मनुष्य की अन्तःप्रवृत्ति का छोटे से छोटा भाव भी गोस्वामीजी की दृष्टि से ओझल नहीं हो सका है। अयोध्या लौटने पर राम जब भरत से मिलते हैं तब सुग्रीव और विभीषण के मन में क्या होगा ? यही न कि एक ये भाई हैं, एक हम भाई हैं—

सघन चोर मग मुदित मन धनी गही ज्यौं भेंट।
त्यौं सुग्रीव विभीषनहिं, भई भरत की भेंट।

तात्पर्य यह है कि किसी के भी मन का कोई भाव गोस्वामीजी की दृष्टि से बचकर जा नहीं सका है।

प्रभावोत्पादक दृश्य उपस्थित करने के लिए व्यापार-शोधन का विवेचन करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "प्रस्तुत व्यापार के स्थान पर इसी के सदृश अप्रस्तुत व्यापार चुनने में भी गोस्वामीजी ने प्रभावोत्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राकृतिक दृश्यों की परख का पूर्ण परिचय दिया है। प्रेम-भाव का उत्कर्ष दिखाने के लिये उन्होंने चातक और मीन को लिया है। ऐसी अन्योक्तियाँ 'दोहावली' में भरी पड़ी हैं। ऐसे अवसरों पर उन्होंने तत्काल हृदय में चुभने वाले दृश्य उपस्थित किए हैं—

नव रसाल-वन-बिहरन-सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला॥

निष्कर्ष—तुलसी के काव्य में समस्त भावों एवं रसों की बड़ी ही विशद एवं मार्मिक व्यंजना हुई है। अन्तर के ऐसे भावों पर उनकी दृष्टि गई है जहाँ अन्य किसी की गति नहीं है। तुलसी का हृदय निस्सन्देह भावुकता से भरा था। वह सचमुच भाव-क्षेत्र के सम्राट हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७)

गोस्वामी तुलसीदास और प्रकृति-चित्रण

प्रश्न १८—गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में उपलब्ध प्रकृति-चित्रण पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिए।

अथवा

प्रश्न १९—"गोस्वामीजी को अन्तः प्रकृति के साथ-साथ वाह्य प्रकृति का भी पूर्ण ज्ञान था और उनको इसके वर्णन में भी पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।" इस कथन का विश्लेषण करते हुए गोस्वामी तुलसीदास के प्रकृति-वर्णन पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—काव्य में प्रकृति-चित्रण के प्रचलित प्रकार—प्रकृति-चित्रण के अन्तर्गत अन्तःप्रकृति और वाह्य-प्रकृति दोनों पर विचार किया जाता है। अन्तः प्रकृति से तात्पर्य पात्रों के चरित्र-चित्रण से है तथा वाह्य-प्रकृति से तात्पर्य प्राकृतिक दृश्य-विधान से होता है। यहाँ हम गोस्वामीजी द्वारा किये गये वाह्य-प्रकृति वर्णन पर विचार करते हैं।

प्रकृति को सामान्यतः दो रूपों में ग्रहण किया जाता है—(i) प्रस्तुत रूप में और (ii) अप्रस्तुत रूप में। प्रस्तुत रूप में प्रकृति को आलम्बन रूप में में ग्रहण करते हैं। इस प्रकार के दृश्य-विधान के दो भेद माने जाते हैं—(क) संश्लिष्ट-वर्णन अथवा विम्ब-ग्रहण तथा (ख) वस्तु-परिगणन अथवा अर्थ-ग्रहण मात्र। इस प्रकार के वर्णन परम्परामुक्त होते हैं। अप्रस्तुत रूप में प्रकृति-वर्णन के सामान्यतः तीन प्रकार होते हैं—(क) उद्दीपन रूप में, (ख) उपमान-विधान के लिए अथवा अलंकार रूप में तथा (ग) उपदेशिका के रूप में।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कभी-कभी प्रकृति के दृश्यों में हमें अपने मनोभावों की छाया पड़ती दिखाई देती है और वह हमारे दुःख से दुःखी तथा सुख से सुखी प्रपीत होती है। इस प्रकार प्रकृति हमारे जीवन का एक अंग ही वन जाती है और हम उसकी सहानुभूति के पात्र वन जाते हैं। गोस्वामीजी के काव्य में प्रायः सभी प्रकार के प्रकृति-वर्णन उपलब्ध होते हैं।

आलम्बनगत प्रकृति-वर्णन

विम्ब-ग्रहण अथवा संश्लिष्ट-योजना के रूप में गोस्वामीजी के काव्य में प्रकृति-वर्णन वहुत ही विरल हैं। इस सम्वन्ध में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि, चित्रकूट, पंचवटी आदि स्थानों में गोस्वामी जी राम-लक्ष्मण को ले गए हैं, पर उनके राम-लक्ष्मण में प्रकृति के नाना रूपों और व्यापारों के प्रति वह हर्षोल्लास नहीं है जो वाल्मीकि के राम-लक्ष्मण में है।''

इस अभाव का एक विशेष कारण भी है। गोस्वामीजी के समय में कवि-प्रचलित कवि-परम्परा में प्रकृति के संश्लिष्ट-वर्णन का अभाव ही था। उनके समय तक तीन प्रकार के कवि कविता करते आ रहे थे—(i) वीरगाथा काल के चारण कवि (ii) प्रेम-गाथा लिखने वाले मुसलमान सूफी कवि और (iii) कृष्ण भक्त कवि। इनमें से एक भी वर्ग के कवि प्रकृति के सान्निध्य में नहीं थे। अतएव इनमें किसी में भी प्रकृति के प्रति अपेक्षित सूक्ष्म दृष्टि नहीं थी। इतना होने पर भी गोस्वामी तुलसीदास जी के काव्य में हमको कई स्थलों पर प्रकृति के संश्लिष्ट वर्णन उपलब्ध हो जाते हैं। गोस्वामी जी ने 'गीतावली' के अन्तर्गत 'चित्रकूट' का वहुत ही विस्तृत एवं संश्लिष्ट वर्णन किया है। इस वर्णन में उनका सूक्ष्म निरीक्षण सहज ही देखा जा सकता है—

सोहत स्याम जलय मृदु घोरत रगमगे शृंगनि।
मनहुँ आदि अंभोज विराजत सेवित सुर-मुनि भृंगनि।
× × ×
मंदाकिनी मिलत झरना झरि झरि झरि जल आछे।
तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानौ राम-भगति के पाछे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'रामचरितमानस' के अन्तर्गत भी हमें चित्रकूट का सजीव वर्णन प्राप्त होता है—

लखनु दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा।
नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलिसाउज नाना।
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठ भेरी।

इन थोड़ी सी पंक्तियों में गोस्वामी जी ने चित्रकूट और उसके पाद पर बहने वाली मंदाकिनी का सुन्दर एवं यथातथ्य चित्र अंकित कर दिया है और साथ ही तीर्थ का महात्म्य भी कह दिया है। प्रस्तुत और अप्रस्तुत का इतना सार्थक समन्वय गोसाईं जी की ही कला का कौशल है।

गोस्वामी तुलसीदास कृत प्रकृति के संश्लिष्ट वर्णन के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र शुक्ल ने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन किया है— "कहीं-कहीं इस प्रकार की संश्लिष्ट योजना और सूक्ष्म निरीक्षण का जो विधान दिखाई पड़ता है, उसे ऐसा समझिए कि वह उनकी भाव मग्नता के कारण आप से आप हो गया है। पंपा सरोवर का वर्णन करते हुए वह लिखते हैं कि—

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा।
बोलत जल-कुक्कुट कल हंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा।
× × ×
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं।

पंपा सरोवर पर जल पीने के लिए आए हुए मृगों के झुंड का यह चित्र भी वस्तु स्थिति को ठीक आँखों के सामने खींच देता है—

जहँ तहँ पियहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक-भीरा।

वास्तविक बात यह है कि सबके संरक्षक राम के प्रेम ने उन्हें संरक्षण के मूल शीलमय धर्म का प्रेमी बनाया था जिसके संरक्षण में उन्हें प्रकृति भी संलग्न दिखाई देती थी।

सुखी मीन सब एक रस अति अगाध जल माहिं।
जथा धर्म सीलन्हि के दिन सुख संजुत जाहिं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परम्परा मुक्त प्रकृति-वर्णन

गोस्वामीजी ने कई स्थलों पर परम्परा मुक्त, अर्थ-ग्रहण मात्र की दृष्टि से, प्रकृति का वर्णन किया है—

झरना झरहिं सुधा-सम बारी। त्रिबिध ताप-हर त्रिविध बयारी।
बिटप-बेलि-तृन अगनित जाती। फल-प्रसून-पल्लव बहु भाँती।

इतना ही नहीं, इन्होंने कृष्ण भक्त कवियों की शैली पर चित्रकूट का वर्णन किया है—

फटिक-सिला मृदु बिसाल संकुल सुरतरु तमाल,
ललित लता-जाल रहित छबि बितान की।
× × ×
सब ऋतु ऋतुपति-प्रभाउ, संतत बहै त्रिबिध बाउ,
जनु बिहार-वाटिका नृप पंच-बान की।

गोस्वामी जी द्वारा किए गए प्रकृति के परम्परा मुक्त वर्णन के सम्बन्ध में यह समझ लेना चाहिए कि इनके ये वर्णन रीति-कालीन कवियों के परम्परा मुक्त प्रकृति-वर्णन से भिन्न हैं। इन्होंने देश-काल का काफी ध्यान रखा है और अपनी आँखों से भी काम लिया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि "गोस्वामीजी ऋतु-वर्णन करने में रीति-ग्रन्थों में गिनाई हुई वस्तुओं तक ही सीमित नहीं रहते हैं। कुछ हिंदी कवियों ने वहुत-सी वस्तुओं की लम्बी सूची देने को ही वर्णन पटुता समझ लिया था। × × गोस्वामीजी को यह हवा बिल्कुल न लगी।"

उद्दीपन विभाव के रूप में प्रकृति-वर्णन

दाम्पत्य विषयक 'रति' के अन्तर्गत प्रकृति का उद्दीपन-विधान कवि कर्म की एक सामान्य मान्य परम्परा है। गोस्वामीजी ने संयोग श्रृंगार तथा वियोग श्रृंगार दोनों के ही अन्तर्गत प्रकृति का उद्दीपन-विभावान्तर्गत वर्णन किया है। जनक की वाटिका की शोभा अपार है। वहाँ राम और लक्ष्मण आते हैं—

भूप बागु वर देखिउ जाई। जहँ बसन्त रितु रही लुभाई।

वहीं राम और सीता के परस्पर दर्शन द्वारा 'रति' भाव का प्रस्फुरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है। प्रकृति का यह वर्णन संयोग शृंगार के उद्दीपन विभावान्तर्गत आएगा।

विरही राम को बादलों का गर्जन प्रिया की याद में अत्यन्त विकल बना देता है—

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा।

'अशोक वाटिका' में विराजमान विरहिणी सीता की विरह-व्यथा का वर्णन करते समय भी गोस्वामीजी ने प्रकृति को उद्दीपन-विभावान्तर्गत ग्रहण किया है। शीतकर नाम चन्द्रमा विरहिणी सीता को पावकमय प्रतीत होता है—

पावकमय ससि स्रवत न आगी। मरनहुँ मोहि जानि हतभागी।

यह वर्णन बहुत कुछ कवि विहारीकृत वर्णन सदृश है—

हौं ही बौरी बिरह बस कै बौरो सब गाउँ।
कहा जान ये लेत हैं ससिहि सीतकर नाँउ।

शिवजी की समाधि भंग करने के लिए कामदेव के लीला-विस्तार के अन्तर्गत प्रकृति का वर्णन कामोद्दीपक है—

नदी उमँगि अम्बुधि कहुँ आई। संगम करहिं तलाब तलाई।

गोस्वामीजी ने पूज्य बुद्धि समन्वित 'रति' अथवा भक्ति-भावना के अन्तर्गत प्रकृति को उद्दीपन रूप में ग्रहण किया है। यह उनकी मौलिकता है। भारद्वाज और शिव के प्रसंग में निम्न लिखित उद्दीपन-विधानान्तर्गत प्रकृति की झाँकी देखिए।

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि।
आश्रम परम पुनीत सुहावा। देखि देबरिषि मन अति भावा।
निरखि सैल सर बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा।

अलंकार-विधान (उपमान) के रूप में प्रकृति-वर्णन

गोस्वामीजी ने प्रकृति के परम्परागत उपमानों को स्वीकार किया है। सीता के वियोग में राम विलाप करते हुए कहते हैं—

खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप-निकर कोकिला प्रवीना।
कुन्दकली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहि—भामिनी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बसन-पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि, निज सुनत प्रसंसा।
श्रीफल, कनक, कदलि, हरषाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं।

इसी प्रकार उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत आदि के साथ गुण वर्णन भी वहुत हैं। विशेषता यह है कि वस्तुओं और व्यापारों का उल्लेख वहुत पूर्ण है। चित्रकुट की वस्तुओं और व्यापारों को लेकर जो होली का उत्सव खड़ा किया है, उसमें उत्प्रेक्षा का उल्लास दृष्टव्य है। भरत के पैरों के तलवों के छालों को कमलकोश के ओस विंदु के समान वताने वाली उपमा सर्वथा अनूठी है—

झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज कोस ओसकन जैसे।

उपदेशिका के रूप में प्रकृति-वर्णन

गोस्वामीजी ने प्रकृति के प्रांगण में घटित होने वाली विभिन्न घटनाओं से जीवनोपयोगी सामग्री संकलित की है। ऐसे स्थलों पर उन्हें प्रकृति उपदेशिका के रूप में दिखाई देती है। प्रकृति का यह विधान वहुत कम कवियों में पाया जाता है। किष्किन्धा काण्ड में वर्षा-वर्णन की प्रत्येक पंक्ति में प्रकृति उपदेश देती हुई दिखाई गई है—

दामिनि दमक रही घन माहीं। खल की प्रीति जथा थिर नाहीं।
बूंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के वचन संत सह जैसे।

संवेदनशील रूप में प्रकृति-वर्णन

डा० श्यामसुन्दर दास ने इस विषय का विवेचन करते हुए वहुत ठीक ही लिखा है कि, "उनके विशाल हृदय में जड़ और चेतन सृष्टि के दोनों अंग एक ही उद्देश्य की पूर्ति करते हुए उद्‌भावित होते हैं। उनकी दृष्टि में ग्लानि रहित हृदय को लेकर रामचंद्र को मना लेने के लिए जाने वाले शील निधान भरत के उद्देश्य में प्रकृति की भी सहानुभूति है। इसीलिए उनके मार्ग को सुगम वनाने के लिए, 'किए जाहिं छाया जलद, सुखद वहत बर बात।' इसी प्रकार राम-वनचारी राम के प्रसंग में—

"जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। तहँ-तहँ मेघ करहिं नभ छाया।"

पक्षियों का कलरव जिनमें वे परमात्मा का गुणगान करते थे, उन्हें आमन्त्रण देता हुआ प्रतीत होता था। यथा—

बोलत जल कुक्कुट कल हंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राम के वियोग में राज-महल के घोड़े एवं वाटिका के पशु-पक्षी तो दुःखी हैं ही, उद्यान के विटप एवं लता तक कुम्हला जाते हैं तथा सर और सरिता नीरस प्रतीत होने लगते हैं—

बागन्ह विटप बेलि कुम्हिलाई। सरित सरोवर देखि न जाहीं।

राम के वियोग में व्याकुल पशु-पक्षियों की दशा भी देख लीजिए—

राम वियोग विकल सब ठाढ़े। जहँ-तहँ मनहुँ चित्र लिखि काढ़े।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन को दृष्टि में रखते हुए पाठक देखेंगे कि विभिन्न विद्वानों ने गोस्वामीजी के प्रकृति-वर्णन के बारे में जो निष्कर्ष प्रस्तुत किए हैं वे सर्वथा उपयुक्त हैं। यथा—

(क) "ऋतु-वर्णन करने में वे अपनी आँखों से ही पूरा काम लेते थे। उन्होंने देश का ध्यान रखा है।"

(आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गोस्वामी तुलसीदास)

(ख) "प्रकृति-सौन्दर्य के लिए उनके हृदय में जो कोमल स्थान था, उसी का प्रसाद है कि हिंदी में स्वीकृत विवरण मात्र दे देने की परम्परा से ऊपर उठकर कहीं-कहीं उनकी प्रतिभा ने पूर्ण चित्रों का निर्माण किया है।"

(डा० श्यामसुन्दर दास, गोस्वामी तुलसीदास)

(ग) 'मनुष्येतर प्राणियों के मर्म को भी पहचानने में प्रवीण तुलसी ने मानस में मानसिक दशाओं और प्राकृतिक रूपों की बड़ी ही मनोमोहक छवि दुरेही है।" (पं० रामबहोरी शुक्ल, तुलसी)

(घ) प्राकृतिक दृश्य के वर्णन में अंग्रेजी कवियों में वर्डसवर्थ ही से तुलसीदास की समता हो सकती है, क्योंकि दोनों की दृष्टि में प्रकृति सजीव है। × × वह अंग्रेजी कवि कीट्स (Keats) या अन्य उर्दू-हिंदी के कवियों की भाँति ऐसे विवरण में नहीं लग जाते कि जिसमें प्रधान उद्देश्य हाथ से जाता रहे। (बाबू राजबहादुर लमगोड़ा, हिंदी भाषा और तुलसीकृत रामायण, तुलसी ग्रन्थावली भाग—३)

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८)

गोस्वामी तुलसीदास की प्रबन्ध पटुता

प्रश्न २०—प्रबन्ध काव्य-कार के रूप में गोस्वामी तुलसीदास के महत्व की स्थापना कीजिए।

अथवा

प्रश्न २१—गोस्वामी तुलसीदास अपने मूल कथा स्रोतों से बहुत कम हटे हैं। जहाँ उन्होंने ऐसा किया है, वहाँ हमें उनकी कलात्मकता दिखाई देती है।"

उक्त कथन को ध्यान में रखते हुए गोस्वामी तुलसीदास के प्रबन्ध कौशल की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—गोस्वामीजी ने 'रामचरित-मानस' में बाल्मीकि द्वारा प्रणीत राम-कथा को मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'रामचरित-मानस' के प्रबन्ध की कथा बाल्मीकि से प्राप्त की और उसको प्रायः उसी रूप में बनाए रखा। स्वकल्पित संवादों के अतिरिक्त गोस्वामीजी ने घटनाओं में विशेष हेर-फेर नहीं किया। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "उनकी कल्पना वस्तु-स्थिति को ज्यों की त्यों लेकर उसके मार्मिक स्वरूपों के उद्घाटन में प्रवृत्त होती थी, नई वस्तु-स्थिति खड़ी करने नहीं जाती थी।" इसका तात्पर्य यह है कि उन्होंने बाल्मीकि प्रदत्त राम-कथा के मूलरूप में तो विशेष परिवर्तन नहीं किया, परन्तु भावुकता, मार्मिकता एवं प्रवन्ध सौष्ठव के विचार से यथा स्थान परिवर्तन अवश्य किए। इस तथ्य को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बहुत अच्छी तरह स्पष्ट किया है—"पहली बात तो यह है कि बाल्मीकि ने राम के नरत्व और नारायणत्व इन दो पक्षों में से नरत्व की पूर्णता प्रदर्शित करने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के लिए उनके चरित्र का गान किया है। पर गोस्वामीजी ने राम का नारायणत्व लिया है और अपने 'मानस' को भगवद्भक्ति के प्रचार का साधन बनाया है। × × बहुत कुछ परिवर्तन गोस्वामीजी ने अपने समय की लोक-रुचि और साहित्य की रुढ़ि के अनुसार किया है।"

इस सम्बन्ध में डाक्टर रामकुमार वर्मा ने भी अपना मत व्यक्त करते हुए इसी प्रकार की बात कही है—"राम तो वही हैं जो बाल्मीकि, कालिदास या 'अध्यात्म रामायण' के हैं, किन्तु तुलसी के राम वही होते हुए भी इन सबसे भिन्न हैं—वे केवल तुलसी के ही राम हैं। उनके चरित्र में उन्होंने समाज की आदर्शभूत आवश्यकताओं का समावेश किया है। जिसे अनुपयोगी समझा उसे छोड़ दिया, जिसे उपयोगी समझा उस पर विशेष जोर दिया और जिसे आवश्यक समझा उसे जोड़ भी दिया।"

केवल रामचरित-मानस ही तुलसी का प्रबन्ध काव्य है

गोस्वामीजी ने यद्यपि अनेक ग्रन्थ लिखे (उनके १४ ग्रन्थ तो प्रामाणिक माने जाते हैं), तथापि केवल 'रामचरित-मानस' उनकी ऐसी रचना है जिसे हम 'प्रबन्ध-काव्य' कह सकते हैं। अतएव गोस्वामीजी की 'प्रबन्ध-पटुता' पर विचार करते समय हम प्रायः 'रामचरित-मानस' के प्रबन्ध पर ही अपनी दृष्टि रखेंगे।

प्रबन्ध-काव्य के तीन आवश्यक तत्त्व

प्रबन्ध-काव्य के लिए तीन बातें अनिवार्य मानी जाती हैं—

(१) सम्बन्ध-निर्वाह, (२) कथा के गम्भीर और मार्मिक स्थलों की पहिचान तथा (३) दृश्यों की स्थानगत विशेषता।

इन्ही तीन अनिवार्य तत्त्वों के अन्तर्गत प्रबन्ध सौष्ठव के समस्त अवयव आ जाते हैं। 'रामचरित मानस' में हमें इन तत्वों का सम्यक् निर्वाह दिखाई देता है। रामचरित-मानस में कथा-काव्य के समस्त अवयवों (इतिवृत्त, वस्तु-व्यापार-वर्णन, भाव-व्यंजना और संवाद) का उचित समीकरण दिखाई देता है। अयोध्यापुरी, जनकपुरी आदि स्थानों के, तथा जनक की वाटिका, अभिषेकोत्सव के वर्णन अधिक लम्बे नहीं हैं, इसी प्रकार पात्रों के संवाद भी अनावश्यक रूप से कहीं भी बड़े नहीं दिखाई देते हैं। भावों की व्यंजना भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संक्षिप्त एवं मार्मिक है। युद्ध के वर्णन करते समय इन्होंने वीरगाथाकाल के कवियों को भाँति घोड़े, हाथी, हथियारों आदि अनेक वस्तुओं की लम्बी सूची भी नहीं गिनाई हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन विशेषताओं को लक्ष्य करके ठीक ही लिखा है कि, "इस अनर्गल विधान से दूर रह कर उन्होंने अपने गौरव और गाम्भीर्य की पूर्ण रक्षा की।"

गोस्वामी तुलसीदास के प्रबन्ध-सौष्ठव की विशेषताएँ

(१) 'रामचरितमानस' के इतिवृत्ति की शृंखला सर्वथा अक्षुण्ण बनी रहती है। वह कहीं भी विशृंखल नहीं हो पाती है।

(२) गोस्वामीजी को कथा के मार्मिक स्थलों की खूब पहचान है। राम-कथा के अन्तर्गत आने वाले मार्मिक स्थल ये हैं—राम जानकी का प्रथम मिलन, राम-वन-गमन, सीता-हरण, चित्रकूट में राम-भरत-मिलन, भरत की आत्म-ग्लानि, युद्ध में लक्ष्मण को शक्ति लगना, सीता की अग्नि-परीक्षा इत्यादि। कहने की आवश्यकता नहीं है कि गोस्वामी जी ने अपने प्रबन्ध-निर्वाह में इन प्रसंगों का सविस्तार एवं भावुकतापूर्ण वर्णन किया है। ये वर्णन मनुष्य मात्र के हृदय को स्पर्श करने वाले हैं।

(३) गोस्वामीजी ने ऐसे दृश्यों को बचाया है जो तनिक भी भद्दे अथवा कुरुचिपूर्ण कहे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए भोजन का दृश्य ही लीजिए। उन्होंने पूरे कथानक के अन्तर्गत केवल दो पंक्तियाँ लिख कर ही काम चलाया—

> भोजन करत चपल चित इत-उत अवसरु पाइ।
> भाजि चले किलकत मुख दधि-ओदन लपटाइ।

(४) गोस्वीमीजी ने जहाँ मार्मिक स्थलों का जी खोलकर वर्णन किया है वहाँ उन्होंने ऐसे स्थलों का चलता-सा उल्लेख करके ही काम चलाया है जिनमें श्रोता या पाठक को कोई रस नहीं मिल सकता। जैसे—चित्रकूट से भरत का तथा लंका-विजय से राम का प्रत्यावर्तन। इसी प्रकार उन स्थलों में भी वर्णन-लाघव है जिनमें कवि ने केवल सूचना देना आवश्यक समझा है, अथवा जिनके अनावश्यक विस्तार से कथा की रोचकता में बाधा पड़ती। कवि ने अरोचक वर्णनों से बचाव किया है। जैसे जनकपुर तक बारात का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाना, जनक द्वारा दिए गए दायज का वर्णन, इत्यादि। सारांश यह है कि इसी परित्याग और ग्रहण में उनकी मौलिकता है, जिसका रूप उनकी प्रबन्ध-पटुता के योग में अत्यन्त पूर्णता के साथ खिल उठता है।

(५) गोस्वामी जी ने अप्रिय प्रसंगों की सूचना भर दी है, उनको विस्तार से अथवा स्पष्ट रूप से नहीं बताया है। उदाहरण के लिए कवि ने राम के चौदह वर्ष के वनवास की बात कहीं भी खुलकर नहीं कही है।

(६) रस निरूपण का विवेचन करते हुए डा० श्यामसुन्दर दास ने लिखा है कि प्रबन्ध के स्वाभाविक प्रवाह के भीतर स्वतः ही इसकी तलैयां बंध गई हैं जिनमें जी भर कर डुबकी लगाकर ही साहित्यिक तैराक आगे बढ़ने का नाम लेता है।"

(७) रामचरित मानस की कथा को तीन वक्ता कहते हैं। पाठक कथा प्रवाह में कहीं वास्तविकता को भूल न जाए इसलिए वह समय-समय पर पाठक को यह याद दिलाते रहते हैं कि गरुड़ से भ्रशुंदि कथित कथा को शिव पार्वती से और शिव कथित कथा को याज्ञवल्क्य भारद्वाज से कह रहे हैं। तुलसी की प्रबन्ध पटुता प्रमाणित करने के लिये यह त्रिविधि सम्बन्ध-निर्वाह पर्याप्त है।

(८) गोस्वामी जी प्रारम्भ में ही कहते हैं कि उनकी रामकथा निगम, अगम और नाना पुराणों द्वारा समर्थित है। इसी दृष्टि से कथा के तीन वक्ता हैं शिव, भुशुण्डि और याज्ञवल्क्य। ज्ञान सम्बन्धी बात शिव कहते हैं, आचरण सम्बन्धी बात भुशुण्डि के मुख से कहलाते हैं तथा पुराणों में वर्णित कथा का कथन याज्ञवल्क्य जी कहते हैं। चेतना के तीन स्तरों पर एक साथ कथानक का निर्वाह प्रबन्ध-सौष्ठव का चमत्कार ही कहा जायेगा।

(९) उन्होंने श्रृंगार रस का वर्णन अत्यन्त मर्यादित ढंग से किया है। ऐसे अवसर उपस्थित होने पर गोस्वामी जी बड़ी ही सावधानी के साथ बच निकले हैं। उदाहरणार्थ—विवाह के अनन्तर शिव-पार्वती के विलास का वर्णन उन्होंने जिस सफाई के साथ किया है, वह देखते ही बनता है। यथा—

जगत मातु पितु शंभु भवानी। तेहि सिंगार न कहउँ बखानी।
करहिं विविध विधि भोगबिलासा। गणन समेत बसहिं कैलासा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। येहि बिधि विपुल काल चलि गयेऊ।

(१०) किसी भी घटना की पुनरावृत्ति से पाठक के मन में अरुचि की आशंका सदैव बनी रहती है और कथा-प्रबन्ध शिथिल पड़ जाता है। गोस्वामी जी ने इस ओर पूरी सजगता वरती है। एक बार कही हुई घटना को पुनः कहने का अवसर आने पर उसका उल्लेख कम कर दिया है। जैसे अशोक वाटिका में सीता के प्रति रावण का दुर्व्यवहार, जानकी का विलाप, आदि। इसका परिणाम यह हुआ है कि 'मानस' का कथानक वहुत ही गठा हुआ रहा है।

(११) "मानस को जो रूपक का स्वरूप दिया गया है, उसमें भी उपक्रम की नवीनता और प्रौढ़ि, साथ ही सन्दर्भण कला का अनूठा निर्देश है। मान-सरोवर के अतिरिक्त मानस का एक दूसरा अर्थ होता है—अर्थात् मानस, हृदय-सार-रहस्य। इस अर्थ में भी तुलसी ने मानस के रहस्य का आद्योपान्त निर्वाह किया है। इस प्रकार 'हरिचरित्र मानस' से राम के चरित्र का रहस्य ही उद्घाटित हुआ है। गोस्वामी जी ने दोनों अर्थों का ग्रन्थ भर में सांगोपांग निर्वाह किया है। (डा० राजपति दीक्षित)।

प्रबन्धात्मकता में खटकने वाली बातें

(क) गोस्वामीजी रामचरित मानस में बार-बार यह दिखाते चलते हैं कि राम परब्रह्म हैं। कभी-कभी तो स्वयं राम भी यह कह देते हैं कि मैं परब्रह्म हूँ। अपने कपि मित्रों को विदा करते हुए कहते हैं कि—

अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सबंगत सर्वहित, जानि करेहु अति प्रेम।

इससे कथा के रस में व्याघात उत्पन्न होता है।

(ख) कथा के मध्य देवता बार-बार स्वर्ग से फूल बरसाते हैं, यह अस्वा-भाविक एवं असम्भव सा प्रतीत होने लगता है और विज्ञ पाठक कभी-कभी शंका करने लग जाता है। इससे सरसता भंग होती है।

(ग) कहीं-कहीं ऐतिहासिक न्यूनता भी रसमग्नता में वाधा उपस्थित कर देती है। जैसे ऋषियों के आश्रमों और विभीषण के दरवाजे पर गोस्वामी जी ने तुलसी का पौधा लगाया है तथा राम के मस्तक पर रामानन्दी तिलक लगा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिया है। इतना ही नहीं, उन्होंने राम के सिर पर चौगोशिया टोपी भी रख दी है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि वैदिक काल में इन बातों की ओर किसी का ख्याल नहीं जाता था। वस्तुतः यह देश-काल-सम्बन्धी काफी बड़ा दोष है।

(घ) अंगद और रावण का संवाद राजसभा के गौरव और सभ्यता के विरुद्ध है। यह बात नहीं है कि उन्हें सभा-चातुरी का ज्ञान नहीं था। राज-समाज के सभ्य भाषण का अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण उन्होंने चित्रकूट में एकत्र सभा के मध्य प्रस्तुत किया है, परन्तु भक्ति के प्रवाह में वह रावण की सभा में कदाचित् मर्यादा का निर्वाह आवश्यक नहीं समझते थे। राक्षसों के बीच शिष्टता, सभ्यता आदि का उत्कर्ष प्रकट करना वह कदाचित् दिखाना ही नहीं चाहते थे।

निष्कर्ष—यद्यपि रामचरित मानस के प्रवन्ध प्रवाह को अवरुद्ध करने वाले कतिपय तत्वों की ओर विद्वानों ने संकेत किया है, तथापि उनका कोई विशेष महत्व नहीं है। रामचरित की भागीरथी के प्रवाह में ऐसे रोड़े कहीं टिक सकते हैं? गोस्वामी जी ने प्रवन्धात्मकता का निर्वाह वड़े ही कौशल एवं पूर्ण सफलता के साथ किया है। हमारा कवि मूल कथानक 'वाल्मीकि रामायण' और 'अध्यातमरामायण' से लेकर उसकी रूपरेखा का अनुगमन करते हुए उससे बहुत कम हटता है। फिर भी जब कभी और जहाँ कहीं वह हटता है, वहाँ वह प्रायः कलात्मकता प्रदर्शित करता है। यही कारण है कि गोस्वामी जी की प्रवन्ध धारा इठलाहट दिखाती, कलकल नाद करती हुई उत्तरोत्तर राम-सागर में लीन हो जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६)

गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति-भावना

प्रश्न २२—तुलसी की भक्ति-भावना की परीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न २३—तुलसी की भक्ति-पद्धति का निरूपण कीजिए और सिद्ध कीजिए कि वह मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क दोनों को सन्तुष्ट करने वाली तथा सदाचार को पुष्ट करने वाली है।

अथवा

प्रश्न २४—भक्ति-रस का पूर्ण-परिपाक जैसा तुलसीदासजी में देखा जाता है, वैसा अन्यत्र नहीं।—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन को स्पष्ट करते हुए गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति-भावना का विश्लेषण प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर—भक्ति के प्रचार में गोस्वामी तुलसीदास का स्थान

गोस्वामी तुलसीदास के समय में दो प्रकार के भक्तों के दर्शन होते हैं—

(१) वेद-शास्त्रज्ञ तत्त्वदर्शी आचार्यों द्वारा प्रवर्तित सम्प्रदायों के अनुयायी प्राचीन परम्परा के रामकृष्णोपासक भक्त। और

(२) समाज-व्यवस्था की निन्दा करने वाले एवं पूज्य और सम्मान्य व्यक्तियों के उपहास द्वारा लोगों को अपने प्रति आकर्षित करने वाले भक्त। नाथ-पंथी, कबीर-पंथी आदि सन्त इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इस वर्ग के जोगियों की वानी ने भक्ति की सच्ची भावना को दबा रखा था। इसी दशा को लक्ष्य करके गोस्वामीजी ने कहा था—

> गोरख जगायो जोग, भगति भगायो भोग,
> निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस समय गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ उस समय में एक ओर तो निर्गुण पंथ के सन्त अपनी परुष वाणी द्वारा लोगों को संसार के प्रति विरुद्ध वना रहे थे और दूसरी ओर कृष्ण भक्त अपनी संगीतमय वाणी द्वारा प्रेम की धारा वहा रहे थे। इस समय एक ऐसे लोक-नायक भक्त की आवश्यकता थी जो शास्त्रानुमोदित हरि-भक्त-पथ की प्रतिष्ठा करके जन-जीवन को लोक-धर्म के माधुर्य के प्रति आकर्षित करता। यह कार्य गोस्वामी तुलसीदास ने किया। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने द्वारा प्रतिपादित भक्ति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा कि:—

श्रुति सम्मत हरि-भक्ति पथ संजुत विरति विवेक।
जे परिहरहिं बिमोह बस कल्पहिं पंथ अनेक॥

भक्ति का स्वरूप-विवेचन—माहात्म्य के ज्ञान से उत्पन्न सुदृढ़ स्नेह का नाम भक्ति है। परमसत्ता के प्रति जव पूर्ण समर्पण की भावना जाग्रत हो तव भक्ति-भावना का उदय मानना चाहिए। आचार्य पं० रामचंद्र शुक्ल के शव्दों में, "धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति है। धर्म है व्रह्म के, सत्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति जिसकी असीमता का आभास अखिल विश्व स्थिति में मिलता है।"

यदि महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति का नाम श्रद्धा है तो हम यह सहज रूप से कह सकते हैं कि श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है।

प्रेम सौन्दर्य या रूप सापेक्ष होता है, और श्रद्धा गुण सापेक्ष होती है। श्रद्धा शक्ति और शील दोनों से सम्वन्धित हो सकती है। इसी कारण भक्ति के पूर्ण प्रकर्ष के लिए इष्टदेव अथवा आराध्य में अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्ति और अनन्त शील की प्रतिष्ठा की जाती है।

महत्त्व की आनन्दपूर्ण स्वीकृति लघुत्व अथवा दैन्य को जन्म देती है। दैन्य भक्तों का वहुत वड़ा संवल—संवल ही क्यों सर्वस्व है। इसी कारण भक्ति के परिपाक के लिए प्रेम के अतिरिक्त आलम्वन के महत्त्व और अपने दैन्य का अनुभव परम अमर शव्द माना जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति-भावना का विश्लेषण

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर भक्ति-भावना के आवश्यक अवयव ये ठहरते हैं :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(क) आलम्बन में अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्ति एव अनन्त शील की प्रतिष्ठा ।

(ख) दैन्य

(ग) पूर्ण समर्पण ।

(घ) अनन्य प्रेम ।

(ङ) निष्कामना ।

(च) धर्म अथवा सदाचरण के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति ।

हम देखते हैं कि तुलसी की भक्ति-भावना में हमको ये समस्त अवयव स्पष्टतः लक्षित होते हैं । यथा :—

आलम्बन में अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्ति और अनन्त शील की प्रतिष्ठा—गोस्वामी तुलसीदास जी के इष्टदेव श्रीराम हैं । उनके राम अनन्त सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमा है । तीनों लोकों के सौन्दर्य का चरम उत्कर्ष उनके रूप में अभिव्यक्त होता है । तुलसी के राम सौन्दर्य के सार हैं—

नील सरोज नीलमणि नील नीर घर श्याम ।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सतकाम ।।

राम की स्तुतियों में उनका जो नखशिख वर्णन है, वह अनन्त सौन्दर्य का ही निरूपण करने वाला है ।

वन जाते हुए राम के जिस सौन्दर्य का वर्णन गोस्वामीजी ने किया है वह स्पृहणीय है । ऐसी अनन्त रूपराशि के सामीप्य लाभ के लिए, उसके प्रति सुहृद् भाव प्रदर्शित करने के लिए जी ललचाता है—"कहिहै जग पोच, न सोच कछु, फल लोचन आपन तौ लहिहैं ।"

राम की शक्ति का कहना ही क्या है ? त्रिलोक-विजयी खरदूषण एवं रावण सदृश महाबली राक्षसों को मारकर वह पृथ्वी का भार हल्का करने वाले हैं । जहाँ तक तुलसी के राम के शील का प्रश्न है, वह तो सर्वथा स्पृहणीय एवं अद्वितीय है । राम अनन्त शील की साक्षात् मूर्ति हैं । दया, दाक्षिण्य, कृपा, क्षमा, संकोच, कृतज्ञता आदि उत्पन्न गुणों की तो वे खान ही हैं । उनके प्रति यदि कोई राई भर भी उपकार कर देता है तो वह उसको पर्वत सदृश मानते हैं । उन्होंने हनुमान से कई वार कहा है कि मैं तुमसे उऋण नहीं हूँ, तू ही मेरा बोहरा है, चाहे तो रुक्का लिखवाले । और खुद का यह हाल है कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विभीषण को आते ही लंका का राजा बना देते हैं और मन में यही सोचते हैं कि इसको कुछ भी नहीं दे पाया। यह बेचारा न मालूम क्या-क्या आशाएँ लेकर आया होगा, परन्तु मैं इसको कुछ दे ही नहीं सका। देखिये राम के ये शील-समन्वित मनोभाव—

जो सम्पदा सिव रावनहिं दिए दीन्ह दस माथ।
सो सम्पदा विभीषनहिं सकुचि दीन्ह रघुनाथ।।

तुलसी द्वारा निरूपित ऐसे अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्ति और अनन्त शील के प्रतीक राम के विषय में आचार्य शुक्ल का कथन द्रष्टव्य है—"भगवान का जो प्रतीक तुलसीदासजी ने लोक के सम्मुख रखा है........उसमें सौन्दर्य के प्रभाव से हृदय को वशीभूत करके भक्ति के अलौकिक प्रदर्शन से उसे चकित करते हुए अन्त में वे इसे शक्ति या धर्म के रमणीय रूप की ओर आप-से-आप आकर्षित होने के लिए छोड़ देते हैं। जब इस शील के मनोहर रूप की ओर मनुष्य आकर्षित हो जाता है और अपनी वृत्तियों को उसके मेल में देखना चाहता है तब जाकर वह भक्ति का अधिकारी होता है।" जैसे—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ?
श्री रघुनाथ-कृपालु कृपा तें सन्त-सुभाव गहौंगो।
× × ×
परिहरि देह-जनित चिन्ता दुःख सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि-भक्ति लहौंगो।
(विनय-पत्रिका)

दैन्य—महत्त्व की अनुभूति भक्ति का मूल आधार है। दैन्य भक्तों का बहुत बड़ा बल है। भक्त को जिस प्रकार प्रभु के महत्त्व का वर्णन करने में आनंद आता है, उसी प्रकार अपना लघुत्व-वर्णन करते हुए उसको सुख-संतोष की प्राप्ति होती है—

राम सों बड़ो है कौन, मो सो कौन छोटो ?
राम सों खरो है कौन, मो सो कौन खोटो ? (विनय-पत्रिका)

भक्त अपने दोषों को झुक-झुक कर देखता ही नहीं है, बल्कि उन्हें उठा-उठा कर दिखाता भी है। इस उच्च मनोभूमि की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि लोक की सामान्य प्रवृत्ति तो ठीक इसके विपरीत होती है, जिसे अपनी ही मान कर गोस्वामीजी कहते हैं कि--

जानत हू निज पाप जलधि जिय, जल-सीकर, सम सुनत लरौं।
रज सम पर-अवगुन सुमेरु करि, गुन गिरि सम रजतें निदरौं।

स्वदोषानुभूति की इस वृत्ति को 'रामचरितमानस' में वाल्मीकि के द्वारा बड़े ही सुन्दर ढंग से कहलाया है। यथा—

गुन तुम्हार समुझइ निज दोषा। जेहि भाँति तुम्हार भरोसा।
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही।

"चरम महत्व के इस भव्य मनुष्य-ग्राह्य रूप के सम्मुख भव-विह्वल भक्त-हृदय के बीच जो-जो भाव तरंगें उठती हैं, उन्हीं की माला विनय-पत्रिका है।"

पूर्ण समर्पण—प्रभु के महत्व के नाना रूपों और अपने लघुत्व की अनुभूति से उत्पन्न अनेकानेक भाव-तरंगों की स्थिति परस्पर विम्व-प्रतिविम्व भाव से स्थित रहती है, फलतः लघुत्व महत्व में लय होना चाहता है। वह अपने आपको एकदम प्रभु के भरोसे छोड़ देता है। पुष्टि मार्ग में प्रभु की भक्ति की प्राप्ति साधन-साध्य न होकर प्रभु की कृपा पर ही अवलम्वित होती है। तुलसी ऐसे ही भक्ति-मार्ग पर चलने वाले भक्त थे। उन्होंने 'विनयपत्रिका' में तो कई स्थलों पर इस प्रकार के भाव व्यक्त किए हैं कि मैं आपके द्वार पर पड़ा हुआ हूँ। चाहे अपना लें, चाहे ठुकरा दें। यथा—

कहाँ जाउँ, कासों कहौं और ठौर न मेरो।
जनम गँवायो तेरेहि द्वार मैं किंकर तेरो।

अथवा—

प्रन कर हौं हठि आजु तें राम द्वार परयो हौं।
'तू मेरो' यह विन कहै उठिहौं न जनम भरि, प्रभु की सौं करि निवरयो हौं।

इत्यादि।

अनन्यता—तुलसी राम के अनन्य भक्त हैं। राम उनके लिए माता, पिता गुरु, स्वामी, सखा आदि सब कुछ हैं। उन्होंने तो स्पष्ट ही कहा है। कि मेरे तेरे अनेक नाते हैं, जो अच्छा लगे, वह मान ले। उनकी तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मान्यता ही यह है कि "जाउँ कहाँ तजि चरन तिहारे" अथवा "जरि जाउँ सो जीह जो जाँचत औरे।"

उनके जीवन से सम्बन्धित एक किंवदन्ती तो अत्यन्त प्रसिद्ध है ही। वह एक बार वृन्दावन गए। वहाँ उन्होंने श्रीकृष्ण की प्रतिमा से कहा कि "तुलसी मस्तक तव नवै जब धनुषबान लेउ हाथ।" कहते हैं कि मुरलीधारी श्याम की मूर्ति धनुर्धारी राम की मूर्ति बन गई। अस्तु।

अनन्य प्रेम का आदर्श गोस्वामीजी ने चातक-प्रेम को लिया है। घन और चातक के प्रेम को लक्ष्य करते हुए उन्होंने अनेक सुन्दर उक्तियाँ कहीं हैं—

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम-घनस्याम हित चातक तुलसीदास। (दोहावली)

उनकी तो सुदृढ़ धारणा है कि—

गति रामहिं सों मति रामहिं सों रति राम सों रामहिं को बल है।
सबको न कहै तुलसी के मते इतनो जग-जीवन को फल है।
(कवितावली)

निष्कामना—तुलसी की भक्ति-भावना सर्वथा अहेतु की है—उसमें स्वार्थ-सिद्धि की गन्ध भी नहीं है। तुलसी राम से भक्ति केवल इसलिए करते हैं कि राम उन्हें अच्छे लगते हैं, इसलिए नहीं कि राम उन्हें बदले में भुक्ति या मुक्ति प्रदान करेंगे। यथा—

जो जगदीस तौ अति भलो जो महीस बड़-भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि, राम-चरन अनुराग।

'रामचरितमानस' में वाल्मीकि ने भक्ति की भूमिकाओं का निरूपण करते हुए अन्ततः निष्काम हृदय को भगवान का 'निज-गेह' बनाया है—

जिन कहँ कछु न चाहिए तुम सन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु उर सो राउर निज गेह।।

भक्त के लिए भक्ति का चरम फल भक्ति ही है। तुलसी के भरत की वाणी में भक्ति की यह निष्कामना मुखरित हो उठी है—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहहुँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म या सदाचरण के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति

इस भक्ति का लक्षण अथवा फल है—

तुलसीदासजी की भक्ति का लक्षण शील है। शील और सदाचार का नित्य सम्बन्ध उन्होंने बड़ी ही भावुकता के साथ व्यक्त किया है। शील हृदय की वह स्थायी स्थिति है जो सदाचार की प्रेरणा स्वतः करती है। शील और सदाचार की प्रतिष्ठा के द्वारा मनुष्यता को पहुँचा हुआ हृदय राम-भक्ति के प्रति अवश्य आकर्षित होगा—

सुन सीतापति सील सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ।

(विनयपत्रिका)

इसी कारण उनका कहना है कि राम की भक्ति की प्राप्ति का लक्षण है मन का आपसे आप सुशीलता की ओर ढल पाना। तुलसी के मन में राम की भक्ति का अंकुर स्थायी रूप से जम गया है, इसका पता उन्हें किस प्रकार लगे, इसके लिए वह अपना मापदण्ड स्वयं स्थापित करते हैं—

"तुम अपनायो तब जानिहों जब मन फिरि परिहै।"

(विनयपत्रिका)

सुशीलता की ओर मन के ढल पड़ने को राम भक्ति की प्राप्ति का लक्षण बताकर गोस्वामीजी ने शील को अपने व्यापक भक्ति क्षेत्र में अन्तर्भूत कर लिया है। गोस्वामीजी की 'श्रुतिसम्मत एवं संजुत विरति विवेक हरि-भक्ति' वही है जिसका लक्षण शील है—

प्रीति राम सों नीति-पथ चलिय, रागरिसि जीति।
तुलसी संतन के मते इहै भगति की रीति॥

गोस्वामीजी के मतानुसार धर्म का विरोध ही वस्तुतः राम का विरोध है, जिसे राम प्रिय नहीं उसको धर्म प्रिय नहीं। इसी से उनका कहना था कि—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
सो नर तजिय कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।

डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में "भक्ति की सर्वोच्च साधना ही तुलसी के धर्म की मर्यादा है।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राम के शील के अन्तर्गत 'शरणागत की रक्षा' को तुलसी ने बहुत प्रधानता दी है। इसका तात्पर्य यह है कि बड़े से बड़ा पापी भी अपने सुधार और अपने उद्धार की आशा कर सकता है। इस प्रकार गोस्वामीजी द्वारा प्रतिपादित राम भक्ति वह भाव है जिसका संचार होते ही अन्तःकरण शुद्ध और मन निर्मल हो जाता है। गोस्वामीजी ने अपने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कई स्थलों पर किया है कि भक्ति के अभाव में अन्तःकरण अथवा मन की शुद्धि सम्भव नहीं है—

तुलसिदास व्रत दान ग्यान तप सुद्धि हेतु स्रुति गावै।
रामचरन-अनुराग-नीर बिनु मल अति नास न पावै।

जब तक भक्ति न हो तब तक सदाचार में दृढ़ता नहीं आ सकती है। उनका स्पष्ट मत है कि भक्ति के बिना शील आदि समस्त गुण निराधार एवं नीरस हैं—

सूर सुजान सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई।
बिनु हरिभजन इन्दासन के फल तजत नहीं करु आई।
कीरति कुल करतूति भूति भलि सील सरूप सलोने।
तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने।

भक्ति की प्राप्ति प्रभु की कृपा पर अवलम्बित है—भक्ति की प्राप्ति साधन-साध्य न होकर प्रभु की कृपा पर अवलम्बित है। तुलसी भगवत्कृपा को ही सर्वस्व मानते हैं—

यह गुन साधन तें नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाउ कोइ कोई।

अथवा— (रामचरितमानस)

जाने बिनु भगति न जानिबो तिहारे हाथ, समुझि सयाने नाथ पगनि परति।

(विनय-पत्रिका)

भक्ति का फल—भक्ति की आनन्दमयी प्रेरणा से मनुष्य संत पद को प्राप्त होता है, शील के प्रति उसकी सहज प्रवृत्ति हो जाती है—

भए सब साधु किरात किरातिनि, रामदरस मिटि गइ कलुषाई।

निष्कर्ष—तुलसी की भक्ति-पद्धति के साथ लोक-धर्म का पूर्ण सामंजस्य है। उसमें कर्म, ज्ञान एवं उपासना का सुखद संयोग है। उसमें जिस विरति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या वैराग्य की चर्चा है, वह लोक-कर्तव्यों से विमुख करने वाला वैराग्य नहीं हैं, वह परहित-चिन्तन के प्रति प्रवृत्त करने वाला वैराग्य है। अतः हम कह सकते हैं कि "भक्ति रस का पूर्ण परिपाक जैसा तुलसीदासजी में देखा जाता है वैसा अन्यत्र नहीं।"

प्रश्न २५—"गोस्वामी तुलसीदास यद्यपि रामानन्दजी के शिष्य थे, तथापि उनकी भक्ति-भावना पर वल्लभाचार्यजी के पुष्टि मार्ग का व्यापक प्रभाव दिखाई देता है।" इस विरोधाभास को ध्यान में रखते हुए गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति-पद्धति के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—स्वामी रामानंद की भक्ति-पद्धति का सामान्य परिचय— जगद्गुरु शंकराचार्यजी द्वारा निरूपित अद्वैतवाद के उपरांत विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदाय उठ खड़े हुए, क्योंकि उनकी 'विवर्त्तवाद' अथवा मायावाद बहुत बड़े विवाद का विषय बन गया था। स्वामी रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित विशिष्टाद्वैत, महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित शुद्धाद्वैत आदि पर इसी परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाना चाहिए।

स्वामी शंकराचार्यजी ने यद्यपि ब्रह्म की व्यावहारिक सगुण सत्ता को स्वीकार किया था, तथापि उनका मायावाद वह सुदृढ़ आधार प्रदान न कर सका जिस पर भक्ति भावना की प्रतिष्ठा की जा सकती। तात्पर्य यह है कि शंकराचार्य का अद्वैतवाद भक्ति के सन्निवेश एवं प्रसार के उपयुक्त नहीं था। दार्शनिक पृष्ठभूमि पर भक्ति के प्रसार के लिए आधार प्रदान करने का कार्य ११ वीं शताब्दी में स्वामी रामानुजाचार्य ने किया। इन्होंने 'विशिष्टाद्वैत' का निरूपण किया और भक्ति के लिए सुदृढ़ सम्बल प्रदान किया। इन्हीं की शिष्य परम्परा में आगे चल कर स्वामी रामानन्दजी हुए। गोस्वामी तुलसीदास इन्हीं के शिष्य थे। अतः जिस भक्ति-पद्धति में तुलसीदास दीक्षित हुए थे, उसको समझने के लिए रामानुजाचार्य जी द्वारा प्रतिष्ठित एवं स्वामी रामानन्दजी द्वारा प्रचारित भक्ति-पद्धति को समझ लेना अत्यन्त आवश्यक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामानुजाचार्य जी के विशिष्टाद्वैत के अनुसार चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म के ही अंश जगत् के सारे प्राणी हैं जो उसी से उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन होते हैं। अतः इन जीवों के लिए उद्धार का मार्ग यही है कि वे भक्ति के द्वारा, ब्रह्म के प्रति पूर्ण समर्पण द्वारा उसका (अंशों का) सामीप्य-लाभ प्राप्त करने में प्रयत्न हों। इन्होंने ब्रह्म के विष्णु या नारायण रूप की उपासना पर बल दिया।

१४ वीं शताब्दी के अंत में श्रीराघवानन्दजी से काशी में दीक्षा ग्रहण करके रामानन्दजी ने समस्त भारतवर्ष का पर्यटन करके अपने संम्प्रदाय का प्रचार किया। परन्तु अपनी उपासना पद्धति का इन्होंने विशेष रूप रखा। इन्होंने उपासना के लिए वैकुण्ठ-वासी विष्णु का स्वरूप न लेकर लोक में लीला विस्तार करने वाले उनके अवतार राम का आश्रय लिया। इनके इष्टदेव हुए राम और मूल मंत्र हुआ राम-नाम। इसके साथ इन्होंने एक कार्य और किया। भगवद्भक्ति के सम्बन्ध में महाभारत एवं पुराणों आदि में कथित सिद्धान्त के अनुसार इन्होंने मनुष्य मात्र को इस सुलभ सगुण भक्ति का अधिकारी माना, और देश-भेद, वर्ण-भेद, जाति-भेद का विचार भक्ति मार्ग से दूर रखा। इस प्रकार रामानुजाचार्य में दीक्षा जहाँ केवल द्विजातियों को दी जाती थी, वहाँ रामानन्दजी ने राम-भक्ति का द्वार सबके लिए खोल दिया। इन्होंने वर्णाश्रम धर्म को अस्वीकार नहीं किया। आश्रम और वर्ण की व्यवस्था मानते हुए भिन्न-भिन्न कर्त्तव्यों की योजना उन्हें स्वीकार थी। इस प्रकार "धर्म के क्षेत्र में शास्त्र-मर्यादा इन्हें मान्य थी, पर उपासना के क्षेत्र में किसी प्रकार का लौकिक प्रतिबन्ध ये नहीं मानते थे।"

महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की भक्ति-पद्धति का सामान्य परिचय

वल्लभाचार्यजी द्वारा प्रवर्तित भक्ति मार्ग 'पुष्टि-मार्ग' कहा जाता है।

शंकराचार्य ने केवल निरुपाधि निर्गुण ब्रह्म की सत्ता स्वीकार की थी। वल्लभाचार्य के निकट माया के लिए कोई स्थान नहीं है। दार्शनिक दृष्टि से इनका सिद्धान्त 'शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद' है। शंकर का अद्वैत जैसे शुद्ध बना दिया गया हो। वल्लभाचार्यजी ने सारी सृष्टि को लीला के लिए ब्रह्म की आत्मकृति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बताया। अपने को अंश के रूप में जीवों को बिखेरना ही ब्रह्म की लीला है। प्रकृति और जीव उससे उसी भाँति प्रकट हुए हैं जिस प्रकार अग्नि से चिनगारी। जिस प्रकार अग्नि और चिनगारियाँ स्वरूप से एक हैं, उसी प्रकार ब्रह्म और जीव का भी स्वरूपगत अभेदत्व है अर्थात् जीव भी उतना ही सत्य है जितना स्वयं ब्रह्म है किन्तु फिर भी जीव ब्रह्म नहीं है, केवल उसका अंश और सेवक है। वल्लभाचार्यजी ने सत्, चित् और आनन्द के आविर्भाव-तिरोभाव की चर्चा करके माया के लिए कोई स्थान नहीं रहने दिया।

वल्लभाचार्य जी के मत में श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं। आनन्द का पूर्ण आविर्भाव इसी पुरुषोत्तम में रहता है। वे अपने भक्तों के लिए व्यापी वैकुण्ठ में जो विष्णु के वैकुण्ठ के ऊपर है, अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते रहते हैं। इस व्यापी वैकुण्ठ के एक अंग का नाम गोलोक है। भगवान की इसी 'नित्य लीला' सृष्टि में प्रवेश करना ही जीव की सबसे उत्तम गति है। भगवान स्वेच्छा से स्वयं अवतरित होकर लीला करते हैं।

भक्ति की साधना के लिए वल्लभाचार्यजी ने केवल प्रेम लिया। इस प्रकार भक्ति में से श्रद्धा का अवयव निकल गया। इस प्रकार इन्होंने प्रेम लक्षणा भक्ति ही ग्रहण की। प्रेम साधना में इन्होंने लोक-मर्यादा और वेद-मर्यादा दोनों के त्याग में भी कोई हानि नहीं समझी। इस प्रेम लक्षणा भक्ति के प्रति जीव की प्रवृत्ति तभी होती है, जब भगवान का अनुग्रह होता है जिसे पोषण या पुष्टि कहते हैं। इसी कारण वल्लभाचार्यजी ने अपने भक्ति-मार्ग का नाम पुष्टि-मार्ग (Path of Divine Grace) रखा।

गोस्वामी तुलसीदास की भक्ति-पद्धति

गोस्वीमी तुलसीदासजी स्वामी रामानन्दजी के शिष्य थे, परन्तु उनके ऊपर वल्लभाचार्यजी के पुष्टि मार्ग का प्रभाव भी यत्र-तत्र परिलक्षित होता है। यथा—

बिनु सत्संग बिबेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ कि सोई।
सोइ जानइ जेइ देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई।
यह गुन साधन तें नहिं होई तुम्हरी कृपा पाउ कोई कोई।

(रामचरित मानस)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'विनय पत्रिका' में 'पुष्टि मार्ग' की भक्ति-पद्धति का अभाव अधिक व्यापक एवं स्पष्ट है—

(i) जनि बिनु भगति न जानिवो तिहारे हाथ,
समुझि सयाने नाथ पगनि परत।

× × ×

(ii) तुलसीदास प्रभु तव प्रकास बिनु संसय टरै न टारी।

× × ×

(iii) जाको हरि दृढ़ करि अंग कर्यो।
सोइ सुसील पुनीत वेदबिद, बिद्या-गुननि-भर्यो।

इत्यादि। (विनयपत्रिका)

कुछ व्यक्ति तुलसी के इन कथनों के आधार पर उनकी भक्ति-पद्धति में विरोधाभास के दर्शन करते हैं। हमें देखना है कि तुलसी ने जिस भक्ति-पद्धति की रामानन्दजी से दीक्षा पाई और जिस भक्ति-पद्धति को अपने काव्य-ग्रन्थों में व्यक्त किया, उन दोनों के मध्य क्या सचमुच किसी प्रकार का विरोध है? हमारे विचार से इसमें कोई विरोधाभास नहीं है।

रामानन्द और वल्लभाचार्य दोनों ही जीव को परब्रह्म का अंश मानते हैं। तुलसी ने भी जीव की स्थिति पर इसी दृष्टि से विचार किया है—

ईश्वर अंश जीव अविनासी। सहज अमल चेतन सुखरासी।
सो माया बस भयउ गोसाईं। बँधेउ कीर मरकट की नाईं।

वल्लभाचार्य ने ब्रह्म और जीव के मध्य सेव्य-सेवक भाव माना है। तुलसी ने भी यही माना है। श्रद्धा समन्वित भक्ति-भावना से इसका कोई विरोध नहीं है। महत्त्व की अनुभूति और लघुत्व की अनुभूति विम्ब-प्रतिविम्ब भाव से व्यक्त होनी चाहिए। तुलसी ने ऐसा ही किया है—

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धान्त विचारि॥

दार्शनिक दृष्टि से 'माया' की स्वीकृति की बात की ओर प्रायः संकेत किया जाता है। वल्लभाचार्यजी के निकट माया के लिए कोई स्थान नहीं है। गोस्वामी जी ने 'माया' को स्वीकार किया है। उन्होंने विद्या माया और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अविद्या माया करके 'माया' के दो भेद किए हैं। अतः इस दृष्टि से वह एकदम रामानन्दजी के निकट ठहरते हैं।

गोस्वामीजी ने रामानन्दजी की भाँति मोक्ष की प्राप्ति के लिए राम-नाम को आधार बताया है, परन्तु साथ ही मोक्ष को प्रभु की कृपा पर अवलम्बित माना है—

बिनु सत्संग बिवेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ कि सोई।

तथा—

जाने बिनु-भगति न जानिबो तिहारे हाथ।

आदि कथनों में वल्लभाचार्यजी की भक्ति-पद्धति का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। हमारे विचार से इस प्रकार के कथन भक्ति की 'अनन्यता' एवं समर्पण भावना के स्वाभाविक परिणाम स्वरूप ही माने जाने चाहिए। गोस्वामीजी भक्त थे। उनका साध्य भक्ति थी और साधन रूप भी वह भक्ति को ही मानते थे। पूर्ण भक्ति की प्राप्ति के लिए पूर्ण समर्पण एवं फल के प्रति अनासक्ति अपेक्षित हैं। इन्हीं को वैष्णव भक्ति-पद्धति के अन्तर्गत 'मानमर्षता' एवं 'आत्म-निक्षेप' कहा गया है। प्रेमलक्षणा भक्ति में हम भक्ति की प्राप्ति को प्रभु की कृपा का फल मान सकते हैं और पूज्य बुद्धि समन्वित भक्ति-पद्धति के अन्तर्गत हम भक्ति की प्राप्ति को प्रभु की शरणागत-वत्सलता का फल मान सकते हैं। हमारे विचार से 'कृपा' अथवा अनुग्रह और 'शरणागति' अथवा दीन-वत्सलता के मध्य कोई तात्त्विक भेद नहीं है। 'निम्नलिखित' पद को ही लीजिए। इसके ऊपर वल्लभाचार्यजी की 'पुष्टि' का प्रभाव नहीं है, परन्तु इसमें पूर्ण समर्पण की भावना की सशक्त अभिव्यक्ति है—

मेरे रावरिये गति रघुपति है बलिजाउँ।

तथा— देव, दूसरो कौन दीन को दयालु।

एवं— जाउँ कहाँ तजि चरन तिहारे। आदि

इसी प्रकार तुलसी ने अनेक स्थलों पर अनेक प्रकार से अपने 'दैन्य' की अभिव्यक्ति की है।

तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।

तथा— मैं हरि, साधन करइ न जानी। इत्यादि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तु स्थिति यह है कि 'वल्लभाचार्य' की भक्ति-पद्धति' में आत्म-निक्षेप की अभिव्यक्ति के लिए अधिक स्थान है और उनकी पुष्टि मार्गीय पद्धति अहंकारहीन भक्त जन को अधिक ग्राह्य हुई। तुलसी भी सच्चे भक्त थे। पुष्टि को लक्ष्य करके वह 'आत्म-समर्पण' अथवा आत्म-निक्षेप की अभिव्यक्ति अधिक सशक्त रूप में कर सके। इस प्रकार वल्लभाचार्यजी की भक्ति-पद्धति को स्वीकार करके तुलसीदासजी ने 'वैष्णव' भक्ति की अभिव्यक्ति को अधिक मार्मिक एवं ग्राह्य बना दिया है। उनकी भक्ति-पद्धति में विरोधाभास जैसी कोई बात नहीं है।

दार्शनिक दृष्टि से भी उन्होंने सर्वथा अहंकाररहित हो जाने की बात कही है। 'विनय-पत्रिका' के प्रसिद्ध पद केशव कहि न जाइ का कहिए' के अन्तर्गत उन्होंने अन्त में यह कहा है कि—

"कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानैं।
तुलसिदास परिहरैं तीन भ्रम, सो आपन पहिचानैं।"

इस पद का अर्थ यह नहीं है कि गोस्वामीजी को 'दर्शन' का प्रत्येक मत अमान्य था। वह केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि 'आत्म-दर्शन' के लिए 'अहंकार' का समूल निराकरण अनिवार्य है। उनकी यह चिन्तन-पद्धति इस प्रकार के कथनों के मेल में थी कि—'सोइ जाने जेहि देउ जनाई।' अथवा "जाको हरि दृढ़ करि अंग कर्यौ।"

वैष्णव भक्ति के अन्तर्गत सप्त भूमिकाओं में सातवीं भूमिका 'विचारणा' है। 'विचारणा' का लक्षण ही यह है कि दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन करते हुए उनकी दुस्साध्यता दिखाकर मन को भक्ति की ओर प्रवृत्त किया जाए। 'विनय-पत्रिका' में गोस्वामीजी ने ज्ञान और भक्ति की चर्चा समानान्तर रूप में की है और यह स्थापना की है कि कल्याण अनन्य भक्ति द्वारा ही सम्भव है—

कहा न कियो, कहां न गयो, सीस काहि न नायो ?
राम ! रावरे बिन भये जन जनमि-जनमि जग दुख दसहुँ दिसि पायो।

'रामचरित-मानस' के उत्तर-काण्ड में ज्ञान मार्ग की कठिनाइयों का निरूपण करते हुए उन्होंने भक्ति की श्रेष्ठता स्पष्टतः स्थापित कर दी है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विरति चर्म असि ग्यान मद लोभ मोह रिपु मारि ।
जय पाइअ सो हरि भगति देखु खगेस बिचारि ।

ऐसी भक्ति की प्राप्ति हरि-कृपा द्वारा ही सम्भव है—

मुनि दुर्लभ हरि भगति, नर पावहिं बिनहिं प्रयास ।
जे यह कथा निरंतर, सुनहिं मानि बिस्वास ।।

उपर्युक्त कथन को पढ़कर यदि कोई कहने लगे 'बिनहिं प्रयास' और "कथा निरंतर सुनहिं" में विरोधाभास है, तो इसका क्या उत्तर है ?

रामानन्दी भक्ति-पद्धति और वल्लभाचार्यजी की प्रेम-लक्षणा भक्ति पद्धति का साध्य एक ही है—'इच्छा रहित' हो जाना—

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता, सोइ मति मंडित पंडित दाता ।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता । रामचरन जाकर मन राता ।

(तुलसीदास)

इसी बात को 'पुष्टि मार्ग' के जहाज भक्त सूरदास ने इस प्रकार कहा है—

जापै दीनानाथ ढरै ।
सोइ कुलीन गुनी सोइ पंडित जब प्रभु कृपा करे ।

प्रश्न २६—"तुलसीदासजी का भक्तरूप प्रमुख है और कवि रूप गौण है ।" इस कथन की समीक्षा कीजिए ।

उत्तर—गोस्वामी तुलसीदास और भक्त-परम्परा—गोस्वामी तुलसीदास के आविर्भाव का समय भारतीय समाज के लिए, विशेषकर उत्तर भारत के हिन्दू-समाज के लिए निराशा का युग था । देश में मुगल-शासन प्रतिष्ठित था और वे विदेशी शासक मनमानी कर रहे थे । सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि प्रत्येक दृष्टि से समाज का पतन हो रहा था । चारों ओर घृणा, द्वेष, कलह, अत्याचार, अनाचार का साम्राज्य था ।

लगभग दो सौ वर्षों से संत और भक्त लोग समाज के सुधार का प्रयत्न करते चले आ रहे थे । समाज का सुधार, जन-जीवन में नव-जागृति करके लोक का कल्याण करने वाले इन भक्त-कवियों में गोस्वामी तुलसीदास का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन द्रष्टव्य है—"रामानंद और वल्लभाचार्य ने जिस भक्ति रस का प्रभूत संचय किया, कबीर और सूर आदि की वाग्धारा ने उसका संचार जनता के बीच किया। साथ ही कुतुबन, जायसी और मुसलमान कवियों ने अपनी प्रबंध रचना द्वारा प्रेम पथ की मनोहरता दिखाकर लोगों को लुभाया। इस भक्ति और प्रेम के रंग में देश ने अपना दुःख भुलाया, उसका मन बहला।"

भक्तों के दो वर्ग थे—(१) प्राचीन भागवत-संप्रदाय के नवीन विकास के अनुयायी भक्त। इनकी भक्ति वेद-शास्त्र-सम्मत सम्प्रदायों की वैष्णव भक्ति थी। इनकी भक्ति का आधार भगवान का लोक-धर्म-रक्षक और लोक-रंजक स्वरूप था। तथा (२) निर्गुण भक्ति के अनुयायी। यह वर्ग विदेशी परम्परा का अनुयायी लोक धर्म से उदासीन तथा शास्त्र-सम्मत समाज-व्यवस्था और ज्ञान-विज्ञान का विरोधी था। कबीर आदि संत कवि इसी वर्ग के कवि थे।

द्वितीय वर्ग के कवि विषम-परिस्थितियों के सामञ्जस्य-साधन में संतुष्ट रहा। परन्तु प्रथम वर्ग के भक्त कवियों ने भगवान के उस रूप की प्रतिष्ठा की जिसमें किसी जाति एवं समाज में नव-जीवन-संचार की शक्ति समाहित रहती है। सूर व तुलसी इसी वर्ग के कवि थे। उन्होंने लोक-रक्षक एवं लोक-रंजक भगवान की भक्ति के सुधारस से सींचकर मुरझाते हुए हिन्दू-जीवन को फिर से सरस-सुहाया बना दिया। सूरदास ने भगवान का हँसता-खेलता रूप दिखाकर हिन्दू-जाति की नैराश्य जनित खिन्नता हटाई और तुलसीदास ने भगवान का लोक-व्यापार-व्यापी मंगलमय रूप दिखाकर आशा और शक्ति का संचार किया। इस सम्बन्ध में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल का निष्कर्ष द्रष्टव्य है, "सूरदास तक आते-आते भगवान की लोकरंजनकारिणी प्रफुल्लता की पूर्ण व्यंजना हो गई। अन्त में उनकी अखिल जीवन-वृत्ति-व्यापिनी कला को अभिव्यक्ति करने वाली वाणी का मनोहर स्फुरण तुलसी के रूप में हुआ।"

तुलसी की काव्य-साधना—गोस्वामी जी ने राम-काव्य को लेकर छोटे-बड़े अनेक काव्य ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों की संख्या के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं—(i) रामचरितमानस, (ii) विनयपत्रिका, (iii) गीता-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वली, (iv) कवितावली, (vi) सतसई, (vi) दोहावली, (vii) कृष्णगीतावली, (viii) वैराग्य-संदीपनी, (ix) जानकी-मंगल, (x) पार्वती-मंगल, (xi) रामलला नहछू, (xii) वरवै रामायण, (xiii) हनुमान बाहुक, और (xiv) रामाज्ञा प्रश्न। तुलसी की ये कृतियाँ अपने समय में प्रचलित समस्त काव्य-शैलियों का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनके समय में काव्य भाषा के दो रूप प्रचलित थे—अवधी और व्रजभाषा तथा छः प्रकार की काव्य शैलियाँ प्रचलित थीं—(i) दोहा-चौपाई शैली, (ii) पद-शैली, (iii) छप्पय-शैली, (iv) नीति की दोहे वाली शैली, (v) रहीम के वरवै छंद की शैली, तथा (xi) कवित्त सवैया शैली।

इनके समम में काव्य रचना प्रवन्ध काव्य और मुक्तक काव्य दोनों रूपों में हो रही थी। कहने की आवश्यकता नहीं है कि गोस्वामीजी ने उक्त समस्त काव्य पद्धतियों एवं काव्य-शैलियों पर रचना की।

गोस्वामी जी का काव्य स्वान्तः सुखाय परजन हिताय है

गोस्वामी तुलसीदास का प्रमुख ग्रन्थ रामचरित मानस है। उसमें जीवन का समग्र चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसी ग्रन्थ में गोस्वामी जी ने काव्य-रचना सम्वन्धी एवं काव्य की मान्यताओं से सम्वन्धित अपने विचार प्रकट किए हैं। रामचरितमानस की रचना सम्वन्धी अपने दृष्टिकोण को प्रकट करते हुए आपने लिखा है कि "स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा—भाषा निवन्ध-कृति मंजुलमाननोति।" इसका अर्थ कुछ लोग यह लगाते हैं कि तुलसीदास काव्य की रचना को शतप्रतिशत वैयक्तिक वस्तु मानते थे। जग और जीवन से उन्हें कोई सम्वन्ध नहीं था, परन्तु गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर विदित होता है कि वास्तव में वात ऐसी नहीं है। गोस्वामीजी के समय में यह परंपरा थी कि काव्य-रचना प्रायः रामाश्रित होती थी अर्थात् कविगण दरवारों में रह कर कविता करते थे जिसमें अधिकांशतः आश्रयदाता राजा की प्रशस्ति ही हुआ करती थीं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने वस्तुतः नर-काव्य-रचना के विरुद्ध आवाज उठायी और इस वात की घोषणा की कि वह 'स्वामिनः सुखायं' काव्य-रचना न करके स्वान्तः सुखाय काव्य-रचना में प्रवृत्त हो रहे थे। उन्होंने स्पष्ट ही कहा है कि नर-काव्य की रचना करना सरस्वती का अपमान करना था—

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुन गिरा लगत पछिताना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परन्तु इतना समझ लेना चाहिए कि इनका काव्य 'स्वान्तः सुखाय परजन-हिताय' ही था। समाज का कल्याण करने वाले काव्य की रचना ही उन्हें सुख सन्तोष प्रदान कर सकती थी। उनका स्पष्ट कथन था कि—

जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बृथा बाल-कवि करहीं।
कीरति-भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।

तुलसी का कवि रूप गौण और भक्त रूप प्रमुख है—

राज्याश्रित कवि प्रायः चमत्कार प्रधान कविता किया करते थे। अपने आश्रयदाता की खुशामद करके इनाम पाना तथा कलापक्ष में अपनी बहुसत्ता का प्रदर्शन करके अपनी धाक जमाना उनका उद्देश्य रहा करता था। तुलसीदास जी ने यद्यपि स्वान्तः सुखाय एवं परजन-हिताय कविता लिखी, तथापि सामान्य लोकप्रचलित अर्थ में कवि होना स्वीकार नहीं था। अपने इस मन्तव्य को उन्होंने अत्यन्त विनम्रता पूर्वक किन्तु दृढ़ शब्दों में व्यक्त किया है—

कवि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू। सकल कला सब विद्या हीनू।
आखर अरथ अलंकृति नाना। छंद प्रबंध अनेक विधाना।
भाव-भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन विविध प्रकारा।
कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहउँ लिखि कागद कोरे।

इसका अर्थ कोई यह न समझे कि गोस्वामीजी को काव्य-शास्त्र का ज्ञान नहीं था। उनको काव्य-शास्त्र का कितना ज्ञान था, यह तथ्य तो उनके काव्य के कलापक्ष की श्रेष्ठता द्वारा स्वयं स्पष्ट हो जाता है। स्वयं उन्होंने भी कई स्थलों पर अपने काव्य-शास्त्र के ज्ञान की ओर संकेत किया है—

सरस कवित्त कीरति विमल, सोइ आदरहिं सुजान।

तथा—

बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बरनारी।

परन्तु उनकी धारणा यह थी कि काव्य का कला पक्ष गौण है और उनका भाव पक्ष प्रमुख है। भाव पक्ष भी वही सार्थक है जो भगवद्चर्चा गर्भित हो—

भनिति मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति जिन्ह के बिमल बिबेक।

काव्य-रचना की प्रक्रिया का वर्णन करते हुए वह स्पष्टतः कह देते हैं कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वही काव्य हृदयहारी होता है जिसमें राम कथा का सूत्र अनुस्यूत रहता है। यथा—

हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना।
जौं बरसइ बर बारि बिचारू। होहिं कवित मुकुतामनि चारू।
जुगति बेधि पुनि पोहिअहिं रामचरित बर ताग।
पहिरहिं सज्जन बिमल उर सोभा अति अनुराग।

उपर्युक्त कथन में 'जुगुति' का अर्थ 'कला पक्ष' है। स्पष्ट है कि वह कला पक्ष की उपेक्षा नहीं करते थे, परन्तु इसको काव्य का साधन मात्र मानते थे। काव्य का उद्देश्य 'कला पक्ष' का कौशल दिखाना नहीं, राम के महिमामय चरित्र के वर्णन द्वारा उच्चादर्शं के अनुसरण की प्रेरणा प्रदान करना था—

भनिति बिचित्र सुकवि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ।
× × ×
भनिति भदेस वस्तु भलि बरनी। राम कथा जग मंगल करनी।

क्योंकि—

सब गुन रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी।
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुन ग्राही।

राम-गुण गान के विना कवि-कर्म साधन नहीं होता है, उसका श्रम व्यर्थ ही चला जाता है—

भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवत धाई।
रामचरित सर बिनु अन्हवाएँ। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ।
कवि कोविद अस हृदय बिचारी। गावहिं हरिजस कलिमल हारी।

गोस्वामीजी 'स्वान्तः सुखाय' काव्य प्रणयन में प्रवृत्त हुए थे और काव्य के माध्यम से राम-गुण-गान करके उन्हें 'आत्म-सुख' की प्राप्ति हुई। यथा—

रघुपति कृपाँ जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा।

और इसका फल यह हुआ—

सुन्दर सुजान कृपा निधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बान प्रद सम आन को।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदास हूँ।
पायो परम विश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।

इस विवेचन द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवद् चर्चा तुलसी का साध्य था। काव्य-रचना को वह केवल साधन मात्र मानते थे।

तुलसी का सम्पूर्ण काव्य भक्ति-प्रधान है—

गोस्वामीजी ने प्रत्येक ग्रन्थ की रचना राम के नाम पर लिखी है और प्रत्येक की फलश्रुति स्वरूप राम के चरणाविंद की भक्ति की याचना की है। यथा—

कामिहि नारि पियारि जिमि लोभहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम।
(रामचरितमानस)

तथा—

माँगत तुलसिदास कर जोरे, बसहुँ राम सिय मानस मोरे।
(विनयपत्रिका)

इन्होंने राम भक्ति की प्राप्ति की याचना हेतु अनेकानेक देवी देवताओं की आराधना की—

देहु काम रिपु राम चरन रति, तुलसीदास कहै कृष्ण निधान।

'रामचरितमानस' का प्रत्येक पात्र 'भक्ति' की याचना करता है, कोई भी ऐसा पात्र नहीं है जिसने मुक्ति या मुक्ति की आकांक्षा प्रकट की हो। यहाँ तक कि 'मोक्ष' की भी अवमानना कर दी गई है—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहहुँ निरवान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन।

भरत ही नहीं, बालि सदृश दुष्ट भी यही कहते हैं कि—

जेहि जौन जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागहूँ।

इतना नहीं—

सगुनोपासक मोक्ष न लेहीं। तिन्ह कहँ राम भगति निज देहीं।

'विनयपत्रिका' का तो कहना ही क्या है? वह तो भक्ति के सागर में उठने वाली भाव तरंगों की 'माला' ही है। वह वैष्णव भक्ति का एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सांगोपांग ग्रन्थ ही है। अन्य समस्त ग्रन्थ भी राम भक्ति के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से ही लिखे गये जान पड़ते हैं।

तुलसी ने राम भक्ति के नाम पर सेवा-धर्म का प्रतिपादन किया है—

गोस्वामीजी ने सत्संगति और संत समाज की प्रशंसा जी भरकर की है। इनके महिमा-वर्णन में तो वे कदाचित् थकते ही नहीं है। संत और साधु वही है जो दुःख सहन करके भी दूसरों के दुःख का हरण करने का प्रयत्न करता है, जो सेवा-भाव द्वारा सदैव अनुप्राणित बना रहता है। सेवा-भाव ही जीव का सर्वोपरि धर्म है। धर्म और राम अन्योन्याश्रित हैं—

सो अनन्य गति जाके मति न टरइ हनुमन्त।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त॥

तुलसी की कविता का लक्ष्य भी इतना ही महान् है—

स्याम सुरभि पय बिसद अहि, गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस, गावहिं सुनहिं सुजान।

संतों की महिमा का वर्णन करते हुए वह यही कहना चाहते हैं कि परोपकार के हेतु ही संतों का जन्म होता है—

सत विटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन्ह कै करनी।

तथा—

पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाऊ खगराया।

सत्संग के बिना विवेक नहीं होता है, परन्तु सत्संग राम-कृपा द्वारा ही सम्भव है, अर्थात् मुख्य वस्तु है, राम की कृपा। इसके मूल जीवन में कुछ नहीं रह जाता है। राम-भक्ति ही समस्त सद्कार्य की मूल प्रेरणा है—

गिरिजा सत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होई सो गावहिं वेद पुरान।

संतों की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि भी रामभक्ति ही है—

बक पयोनिधि मंदर ग्यान सत सुर आहि।
कथा सुधा मथि काढ़हिं भगति मधुरता जाहि।

निष्कर्ष—भक्ति के द्वारा ही अन्तःकरण की पूर्ण शुद्धि सम्भव है अन्यथा नहीं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुलसीदास व्रत दान ग्यान तप सुद्धि हेतु स्त्रुति गावै ।
रामचरन-अनुराग-नीर बिनु मल अति नास न पावै ।

भक्ति के बिना सब कुछ निराधार और नीरस है—

तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने ।

भक्ति द्वारा ही मानव के आचरण में दृढ़ता आती है—

तुलसिदास भवरोग रामपद-प्रेम-हीन नहिं जाई ।

कहने का अभिप्राय यह है कि तुलसीदासजी ने भक्ति को साधन और साध्य दोनों ही रूपों में ग्रहण किया है। साथ ही वह भक्ति को सर्वाधिक व्यावहारिक एवं योगी मानते थे। भक्ति के अभाव में व्यक्ति के लोक-परलोक दोनों ही नष्ट हो जाते हैं—

बारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भवतरिअ, यह सिद्धांत अपेल ।

प्रश्न २७—तुलसीदास की भक्ति-पद्धति के साथ सूरदास की भक्ति-पद्धति की तुलना कीजिये ।

उत्तर—सगुण उपासना का मुख्य स्रोत-श्रीमद्‌भगवद्‌गीता—

भारतवर्ष एक आस्तिक एवं धर्मभीरु देश है। भगवान का नाम यहाँ के कण-कण में समाया हुआ है। भगवान की सर्वव्यापी विभूति का मार्मिक वर्णन हमको सर्वप्रथम भगवद्‌गीता में प्राप्त होता है। उसमें भगवान के निर्गुण एवं सगुण दोनों ही रूपों को स्वीकार किया गया है। इसमें भगवान के अवतार के कारणों पर विचार किया गया है तथा साथ ही सगुण उपासना करने वालों की श्रेष्ठता स्वीकार की गई है। सगुण उपासक अखिल विश्व स्थिति में ब्रह्म के सद्‌स्वरूप की सरस अभिव्यक्ति प्राप्त करके उसके प्रति आत्मभाव रखकर लोक-सेवा में प्रवृत्त होता है। यथा—

मय्यावेश्य मनोयेमां नित्ययुक्ता उपासते ।
श्रद्धया परयोपेते तास्ते मे युक्तम मताः ।

तथा—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयीपश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान कृष्ण ने कहा था कि "मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन श्रेष्ठता-श्रद्धा से युक्त हैं, मेरे सगुण रूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मेरे योगियों में भी अति उत्तम योनि मान्य हैं। सूरदास और तुलसीदास की भक्ति-भावना इसी परम्परा की भक्ति-भावना है और उनमें बहुत कुछ साम्य है। अन्तर केवल एक है। तुलसी भक्ति-भावना के आधार दार्शनिक चिन्तन का विवेचन करते चले हैं, सूरदास ने भक्ति-भावना में तल्लीन होकर लिखा है और दर्शन की उतनी ही चर्चा की है जितनी तल्लीन होने के लिए आवश्यक है।

सूरदास की उपासना-पद्धति अथवा भक्ति-भावना

सूर की भक्ति-भावना में श्रद्धा वाला अवयव बहुत कम है, वह मुख्यतः प्रेमलक्षणा भक्ति है। उनकी भक्ति-भावना का विकास श्री वल्लभाचार्य के द्वारा प्रवर्तित द्वैत ब्रह्मवाद एवं उनके द्वारा प्रतिष्ठित पुष्टिमार्ग के अनुसार हुआ। इनकी भक्ति-भावना में सेवा की चर्चा न होकर निष्काम प्रेम का मार्मिक निरूपण हैं जो अन्त में शांत आराधना के रूप में परिणत हो जाता है।

वल्लभाचार्य जी के अनुसार श्री कृष्ण ही ब्रह्म अथवा पूर्ण पुरुषोत्तम हैं। वह सत् चित् और आनंद के पूर्ण स्वरूप हैं। ईश्वर सर्व शक्तिमान न्यायकारी, दयालु और नित्य है। वह जड़, चेतन सब में समाया हुआ है। उसका यथार्थ वर्णन करना जीव की शक्ति के परे है।

तुलसी के ऊपर इस सिद्धान्त का व्यापक प्रभाव पड़ा। सूरदास तो इनके सम्प्रदाय में दीक्षित ही हुए थे। सूर और तुलसी की भक्ति-भावना का अध्ययन करने के पूर्व यह भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि दोनों की उपासना-पद्धति पर पुष्टिमार्गीय भक्ति-पद्धति का व्यापक प्रभाव है। इस भक्ति-पद्धति के अनुसार प्रभु की कृपा ही सब कुछ है, मोक्ष की प्राप्ति प्रभु की कृपा पर ही अवलम्बित रहती है, जो साधन-साध्य नहीं है। सूरदास पग-पग पर "जापै दीनानाथ ढरै" जैसे वाक्य कहते चलते हैं। तुलसी ने भी कई स्थलों पर इस प्रकार की बात कही है—

यह गुन साधन ते नहिं होई। तुम्हरिहि कृपा पाउ कोई कोई ; अस्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सूरदास की भक्ति-पद्धति—

महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित भक्ति-मार्ग (पुष्टि-मार्ग) में वर्णित ब्रह्म का वर्णन नवीन रूप में हमें सूरदास के काव्य में प्राप्त होता है। इस प्रकार सूर की उपासना का क्षेत्र विष्णु एवं ब्रह्म के अवतार कृष्ण की बाल्य एवं यौवन की लीलाओं के वर्णन तक सीमित है। इस काव्य-क्षेत्र के वह सम्राट हैं। भक्तों के हृदय में भगवान की भक्ति जगाने के लिये यह लीला-वर्णन किया जाता है। सूरदास ने गर्भावस्था से लेकर लगभग ११ वर्ष की अवस्थ तक के श्री कृष्ण की लीलाओं का सांगोपांग एवं अत्यधिक विस्तृत वर्णन किया है। इस लीला-वर्णन के ऊपर कृष्ण के अलौकिकत्व की छाप स्पष्ट है। कृष्ण के जन्म का वर्णन करते हुए सूरदास लिखते हैं कि "सकल लोक नायक, सुखदायक, अजन जन्म धरि आयौ"। राधा के मिलन तक यह वात्सल्य वर्णन अपने विशुद्ध रूप में दिखाई देता है। यहाँ यह बता देना भी आवश्यक है कि सूरदास ने श्री कृष्ण का नख-शिख वर्णन भी बड़े ही विस्तार के साथ एवं पूर्ण मनोयोग पूर्वक किया है।

राधा और कृष्ण के मिलन के साथ ही सूरदास श्रृंगार-वर्णन आरम्भ कर देते हैं। वल्लभाचार्यजी के मतानुसार भक्तों की अनुभूतियाँ दो रूपों में प्रकट होती हैं—संयोग और वियोग सूरदास ने भी कृष्ण और राधा एवं गोपियों के प्रेम का वर्णन भी द्विधा—संयोग और वियोग दोनों रूपों में किया है। उनके श्रृंगार के अध्ययन का अधिकारी वही हो सकता है जिसका हृदय वासना से रहित है।

सूर के संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वर्णन है—

कृष्ण और गोपियों का 'महारास'। इस 'महारास' में यह स्पष्ट हो जाता है कि कृष्ण और गोपियाँ अभिन्न हैं। इसी प्रकार सूरदास के वियोग-वर्णन के अन्तर्गत सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रसंग है—'भ्रमरगीत'। इसमें वियोग-श्रृंगार के प्रत्येक भेदोपभेद का मार्मिक एवं सटीक वर्णन मिलता है। सूरदास ने वस्तुतः अपने आपको गोपियों के रूप में प्रस्तुत किया है, क्योंकि गोपियाँ ही श्रीकृष्ण की सबसे बड़ी भक्तिन एवं उपासिकाएँ थीं, वे ही कृष्ण-प्रेम की सच्ची अधिकारी थीं, उन्हीं के माध्यम से कृष्ण-प्रेम की श्रेष्ठतम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभिव्यक्ति हुई है। 'भ्रमरगीत' के अन्तर्गत सूरदास ने गोपियों के प्रेम के क्रमिक विकास द्वारा उसका शान्त आराधना में पर्यवसान कर दिया है। उनका प्रेम सर्वथा निष्काम है, वह लोक-कल्याण की कामना का ही दूसरा नाम है—

जहं जहं रहौ राज करौ सुख सों लेहु कोटि रस भार।
सूर स्याम हम देत असीस हैं, न्हात खसै जनि बार।

सूरदास की भक्ति का निष्कर्ष विशुद्ध अथवा अहेतुकी प्रेम है। सर्वथा इच्छा रहित हो जाना ही भक्ति की प्राप्ति है, जो प्रभु की कृपा पर अवलम्बित है—

प्रेम प्रेम सों होइ प्रेम सों पारहि जैये।
प्रेम बँध्यो संसार प्रेम परमारथ पैये।
ऐके निहचै प्रेम को जीवन मुक्त रसाल।
साँचो निहचै प्रेम को (हो) जो मिलिहैं नन्दलाल।

सूर का दृढ़ विश्वास है कि—

सूरपतित तरि जाइ छनक में जो प्रभु नेकु ढरै।

तुलसी की उपासना-पद्धति अथवा भक्ति-भावना

सूरदास की उपासना के आधार श्रीमद्भागवत के श्रीकृष्ण थे। तुलसीदास की भक्ति के आलम्बन श्रीराम की प्राप्ति वाल्मीकि रामायण से हुई। स्वामी रामानन्दजी ने राम-भक्ति का प्रचार किया। तुलसीदास पर उनकी राम-भक्ति का गहरा प्रभाव पड़ा। यद्यपि उन दिनों भक्ति की धारा दक्षिण भारत से चली आ रही थी। रामानुजाचार्य, विष्णु स्वामी, निम्बार्क, माधवाचार्य, वल्लभाचार्य आदिक अनेक आचार्यों ने इस धारा को प्रभावित किया था और उसके प्रवाह में योग-दान किया था, तथापि तुलसी के ऊपर रामानन्द की उदार भक्ति-भावना का गम्भीर प्रभाव पड़ा। अन्य आचार्य ब्रह्म के निर्गुण पक्ष पर बल देते थे, परन्तु तुलसी ने रामानन्दजी की सगुण-भक्ति को अपनाया। उनके विचार से यद्यपि निर्गुण और सगुण सापेक्ष हैं—

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु तम बिनु कहै प्रकास
निर्गुण कहै सगुण बिनु सो गुरु तुलसीदास।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथापि वह ब्रह्म के सगुण रूप को अधिक महत्त्व पूर्ण मानते थे—

पैज परे प्रहलादहुँ को प्रगटे प्रभुपाहन तें न हिए तें।"

रामानन्दजी की भाँति तुलसी ने राम-नाम की महिमा स्वीकार की—

निरगुन तें एहि भाँति बड़ नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड़ राम ते निज बिचार अनुसार।

तुलसी के राम पूर्ण परब्रह्म परमात्मा एवं विष्णु के अवतार हैं। वह भक्तजन एवं सज्जनों के कष्ट-निवारण के लिए अवतार धारण करते हैं—

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।

उनके ब्रह्म राम के अवतार का कारण अधर्म का निवारण करके धर्म स्थापना है—

असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहिं बिसद जस राम जन्म कर हेतु।

इत्यादि।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि भगवान का यह हेतु श्रीमद्भगवद्-गीता में वर्णित अवतारवाद द्वारा प्रभावित है—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।

सगुण ब्रह्म का ध्यान अत्यधिक कठिन है। उसका ध्यान करते ही मन में भाँति भाँति की शंकाएँ उठना स्वाभाविक है। उसकी नर लीलाओं को देखकर लौकिकता का भ्रम हो जाना सर्वथा स्वाभाविक है। शिव-पार्वती-संवाद में तुलसी ने वार-वार इस संदेह-शीलता की ओर संकेत किया है। उनका स्पष्ट मत है कि—

निर्गुण रूप सुलभ अति सगुण जानि नहिं कोय।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होय।

तुलसी की भक्ति भावना श्रद्धा समन्वित एवं पूज्य बुद्धि समन्वित भक्ति है। वह श्रुति सम्मत एवं विरति-विवेक-संयुक्त है। उनकी भक्ति-भावना लोक-मर्यादा को लेकर चलने वाली भक्ति है। उनकी भक्ति का फल भक्ति है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो धर्म भावना या सदाचरण-प्रेरणा की पर्याय है। तुलसी संत-स्वभाव की प्राप्ति भक्ति-भावना की सबसे बड़ी उपलब्धि मानते हैं—

कबहुँक हौं यह रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो।
× × ×
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि-भक्ति लहौंगो।

वह अखिल विश्व-स्थिति में ब्रह्म के सद्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति का सरस आभास पाते हैं। इसी कारण जीवमात्र को प्रणाम करते हैं और उसकी सेवा को राम-भक्ति का फल मानते हैं—

सो अनन्य गति जाकें मति न टरै हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।

इस भक्ति की प्राप्ति साधन-साध्य न होकर, प्रभु की कृपा पर अवलंबित है—"यह गुन साधन तें नहिं होई" कह कर वह भक्ति के फल का वर्णन इस प्रकार करते हैं—"सोई जानहि जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं-तुम्हहिं होइ जाई।" राम-भक्ति की साधना के लिए पूर्णतया कामना रहित हो जाना अनिवार्य है—

जाकहँ कछु न चाहिए तुम सन सहज सनेहु।
बसहु निरन्तर तासु उर सो राउर निज गेहु।

तुलसी ने बार-बार लिखा है कि भक्त जब सकल कामना रहित हो जाता है, तभी उसको भक्ति की मोक्ष की सुगति की, अथवा भगवत्कृपा की प्राप्ति होती है—

जन्म के समय पर ही वह राम के ब्रह्मत्व, उनके अलौकिकत्व की चर्चा करते हैं—जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम।" तथा—

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार।

गोस्वामी तुलसीदास श्रीराम के चरित्र का सविस्तार वर्णन करते हैं, परन्तु वे बार-बार यह स्मरण दिलाते चलते हैं कि 'दशरथ-अजिर विहारी राम' परब्रह्म के अवतार हैं जिन्हें उमासहित पुरारी जपते रहते हैं। इसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्टि से तुलसी ने राम के अलौकिक कृत्यों का वर्णन करते हुए उनके शील और शक्ति का मनोहारी निरूपण किया है।

राम के व्यक्तित्व में अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्ति एवं अनन्त शील की प्रतिष्ठा करके तुलसी ने पूर्ण पुरुषोत्तम के स्वरूप का उद्‌घाटन किया है, जिसके दर्शन से मनुष्यता को पहुँचा हुआ हृदय अवश्य ही द्रवीभूत हो उठता है—

सुनि सीतापति सील सुभाउ
मोद न मन तन पुलक नयन सो नर खेहर खाउ।

ऐसे राम की प्रतिष्ठा द्वारा उन्हें अपने उद्धार का पूरा विश्वास हो जाता है। सुनिए स्वयं रघुनाथ जी की सुधा-वाणी—

सन्मुख होइ जीव मोहिं जब हीं,
जन्म कोटि अघ नासहिं तब हीं।

अन्ततः निश्छल प्रेम की याचना द्वारा वह अपनी भक्ति-पद्धति के चरम फल की घोषणा कर देते हैं—

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंन्तर प्रिय लागहु मोहि राम।

इस प्रकार साध्य की दृष्टि से सूर और तुलसी की भक्ति-भावना में अन्तर नहीं दिखाई देता है। अन्तर यदि है तो केवल उपासना-पद्धति में है।

सूरदास और तुलसीदास की भक्ति-भावना की तुलनात्मक समीक्षा—

सूरदास और तुलसीदास दोनों के इष्टदेव परब्रह्म के विष्णु रूप के अवतार हैं। वे अनन्त रूपराशि एवं गुणखानि हैं। दोनों ही कवि पुंगवों ने उनकी भक्त-वत्सलता का वर्णन जी खोलकर किया है। सूर के विनय के पद तथा तुलसी के स्तुति-स्तोत्र (विनयपत्रिका) इस दृष्टि से विशेष दृष्टव्य हैं। दोनों ही सूर ने कृष्ण की रूप-माधुरी का तथा तुलसी ने शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन करते समय उनके नख शिख, अंग-प्रत्यंग का मनोहारी वर्णन किया है।

सूरदास और तुलसीदास दोनों ही प्रभु के विशुद्ध प्रेम की याचना करते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। यह बात दूसरी है कि तुलसी अपने इष्टदेव के शील-शक्ति के प्रति अपेक्षाकृत अधिक सजग रहते हैं और भक्ति की भूमिका 'विचारणा' का निर्वाह अधिक सावधानी के साथ करते चलते हैं।

सूरदास और तुलसीदास दोनों की भक्ति-पद्धति पर महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के 'पुष्टि मार्ग' का प्रभाव है। सूरदास तो पुष्टि मार्ग में दीक्षित ही हुए थे और पुष्टि मार्ग के जहाज कहलाते थे।

तुलसीदास बराबर निवेदन करते हैं, उनकी भक्ति दास्य भाव की है। सूरदास की भक्ति साख्य-भाव की है और वह सखा के रूप में बात करते हैं। इसके आधार पर कुछ विद्वान यह कह देते हैं कि तुलसीदास केवल उद्धार की प्रार्थना करते हैं, जबकि सूरदास को उद्धार का आश्वासन प्राप्त हो जाता है। इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन है कि ऐसी बात नहीं है। 'तुलसीदास' में दैन्य एवं विनम्रता के भाव निश्चित रूप से अधिक हैं, परन्तु उन्होंने 'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका' 'तथा हनुमान बाहुक' में यह सूचना दे दी है कि उनका उद्धार हो गया है, अथवा उन्हें उद्धार का आश्वासन प्राप्त हो गया है। 'रामचरितमानस' का समापन करते हुए वह कहते हैं कि—

जाकी कृपा लवलेस तें मतिमंद तुलसीदास हूँ।
पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।

'विनयपत्रिका' के 'उपसंहार' में तो यह आश्वासन और भी अधिक सशक्त शब्दों द्वारा अभिव्यक्त है—

बिहँसि राम कह्यो सत्य हैं, सुधि मैं हूं लही है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है।

तुलसीदास की भक्ति श्रुति-सम्मत एवं विरति-विवेक संयुक्त है जबकि सूरदास की भक्ति विशुद्ध प्रेम-लक्षणा है। दोनों भक्त कवियों की भक्ति अनन्य, निष्काम एवं प्रभु की कृपा पर अवलम्बित है। अन्तर केवल यह है कि सूर की भक्ति-पद्धति में तुलसी की पूज्य वुद्धि के स्थान पर साहचर्य जन्म प्रेम का प्राधान्य है।

निष्कर्ष—सूर और तुलसी दोनों ही सच्चे भक्त और संत हैं। दोनों ही अपने-अपने दृष्टिकोण से भगवद्भक्ति का अमर संदेश सुनाते हैं। सूरदास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माधुर्य लेकर चलते हैं, और तुलसीदास आदर्श लेकर चलते हैं। अपने-अपने क्षेत्र में दोनों का स्थान अक्षुण्ण है। "को बड़ छोट कहत मोहिं दोसू।"

प्रश्न २८—तुलसी की भक्ति-पद्धति में लोक-कल्याण और सामाजिक संगठन के तत्वों का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर—तुलसी अपने भगवान को बाहर जगत में देखते थे—

भारतीय भक्ति-पद्धति के अन्तर्गत अखिल विश्व स्थिति में ब्रह्म की व्यक्त प्रवृत्ति के दर्शन की सरस अनुभूति प्राप्त करने का विधान है। तुलसी ऐसे ही भक्त थे। वह सब जग को 'सियाराममय' देखते हैं। वह समस्त जग को 'सियाराममय' देखते ही नहीं थे, 'सियाराम' के रूप में उसके प्रति आदर भाव भी रखते थे—

सियाराम मैं सब जग जानी। करहुँ प्रणाम जोरिजुग पानी।

इस प्रसंग के अन्तर्गत आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि "भारतीय परम्परा का भक्त अपने उपास्य को बाहर लोक के बीच प्रतिष्ठित करके देखता है, अपने हृदय के कोने में नहीं। वह ध्यान भी करता है तो जगत के बीच अपनी प्रत्यक्ष कला का प्रकाश करते हुए व्यक्त ईश्वर का। तुलसी का वन के बीच राम का दर्शन करना प्रसिद्ध है, हृदय के भीतर नहीं।" रहस्यमयी बातें करना अथवा हृदय के किसी कोने में छिपे हुए भगवान की चर्चा करना उन्हें अरुचिकर था। भगवान को इस दृश्यमान जगत से पृथक करके देखना उनके विचार से सच्ची भक्ति भावना से भागना था—

गोरख जगायो जोग, भगति भगायो भोग,
निगम वियोग तें, सो केलि ही छरो सो है।

उनकी स्पष्ट धारण थी कि बाहर दिखाई देने वाला ही ईश्वर हमारे काम का हो सकता है—

अन्त जीपिहु तें बड़ बाधर जामी हैं राम जो नाम लिए तें।
पैज परे प्रहलादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिए तें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुलसी की भक्ति-पद्धति का आधार सेवा-भाव है—

तुलसी के मतानुसार भगवान को बाहर व्यक्त जगत में ही देखा जा सकता है। भगवान को व्यक्त जगत में देखने का अर्थ है व्यक्त जगत के प्रति आत्मीयता का भाव रखना। इसी कारण चित्रकूट के घाट पर चन्दन लगाने वाले प्रत्येक संत को तुलसी रघुवीर रूप में देखा करते थे। उनके लिए आत्म और अनात्म 'मैं और मैं नहीं' जैसी भेदपूर्ण स्थिति सर्वथा समाप्त हो चुकी थी। वह आत्म कल्याण और लोक-कल्याण को दो वस्तुएँ नहीं समझते थे। इसी कारण भारतीय भक्ति की परम्परानुसार तुलसी की भक्ति पद्धति में व्यक्ति-कल्याण और लोक कल्याण दोनों के ऊपर समान बल दिया गया है। तुलसी के द्वारा प्रतिष्ठित प्रत्येक राम-भक्त राम की अनन्त भक्ति की याचना करता है, भुक्ति अथवा मुक्ति की नहीं। तुलसी की राम भक्ति का मुख्य लक्षण है चराचर जगत के प्रति सेवा का भाव। यथा—

सो अनन्त गति जाके मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवंत।

सेवा-भाव द्वारा प्रेरित आचरण ही मनुष्य को मनुष्य बना सकता है यह बात गोस्वामीजी ने बार-बार तरह-तरह से कही है। भारतीय चिन्तन-पद्धति भगवान के चरणों से शूद्रों की उत्पत्ति मानती आई है। शूद्र समाज-सेवा के प्रतीक हैं। भगवान की चरण-रज धारण करके ही भक्त भगवान की ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार भगवान की चरण-रज सेवा-भाव-प्रतीक होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। तुलसीदास सेवा-भाव के प्रतिपादन की दृष्टि से राम के चरण-रज की महिमा का बार-बार बखान करते हैं। उनके चरण-रज का स्पर्श प्राप्त करके पाषाणी अहिल्या 'तपपुंज मयी' नारी बन जाती है। भरत उनकी चरणपादुका प्राप्त करके धन्य बनते हैं तथा विभीषण उनके चरणों के दर्शन करके कह उठता है—

उर कछुक प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही।

केवट को उनकी चरण रज का महत्त्व विदित था। वह उसके लिए पूरी शक्ति के साथ आग्रह करता है। अन्त में वह उसका अधिकारी भी बन जाता है। यथा— बिहँसि कृपाल बोले रघुराई। सोई करि जेहि तेरी नाव न जाई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वास्तविक बात यह है कि केवट के रूप में स्वयं तुलसी ही हमारे सामने आ जाते हैं। केवट के रूप में वह सेवा-भाव की प्रतीक चरण-रज के महत्त्व की घोषणा इन शब्दों के द्वारा कर देते हैं कि—

चरण कमल रज कहँ सब कहही। मानुष करन मूरि कछु अहही।

लोक रक्षा और लोक-रंजन तुलसी की भक्ति-पद्धति के अभिन्न अंग हैं

लोक-रक्षा और लोक रंजन की वृत्तियाँ तुलसी की सेवा-भाव पर आधारित भक्ति-पद्धति के काव्य के अंग हैं। तुलसी की स्पष्ट मान्यता है कि इन वृत्तियों के प्रति अन्यमनस्क होना मनुष्य होने का दावा पूरा करना है। "जिन वृत्तियों से लोक की रक्षा रंजन होता है उन सबका समाहार अपनी परमावस्था को पहुँचा हुआ जहाँ दिखाई पड़े, वहाँ सिर झुकाना मनुष्य होने का परिचय देना है, पूरी आदमियत का दावा करना है।" यथा—

सुनु सीतापति सील स्वभाउ।
मोद मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ।

गोस्वामीजी युग-द्रष्टा होने के साथ-साथ युग-स्रष्टा भक्त थे

गोस्वामीजी के आविर्भाव के समय विदेशी शासन के कारण हिन्दू समाज निराश एवं निष्क्रिय होगया था तथा विभिन्न सम्प्रदायों की खींचतान के कारण आर्य-धर्म का व्यापक स्वरूप आँखों से ओझल हो रहा था, एकांगदर्शिता बढ़ रही थी। गोस्वामी जी ने अपनी श्रुतिसम्मत एवं विरति-विवेक से युक्त हरि-भक्ति की प्रतिष्ठा करके भारतीय समाज को विश्रृंखलित होने से बचाया। जो लोग प्रचीन शास्त्र-सम्मत, लोक-वेद-विहित भक्ति-पद्धति का त्याग करके विभिन्न पंथों में भटक रहे थे, उन्हें सही रास्ता दिखाया। लोक-मर्यादा का उल्लंघन, समाज की व्यवस्था का तिरस्कार, भक्ति और साधुता की दंभपूर्ण चर्चा, अज्ञान छिपाने के लिए वेद शास्त्र की निंदा आदि ऐसी बातें थीं, जिनसे गोस्वामीजी की अंतरात्मा बहुत व्यथित हुई। उन्होंने इन सबसे उद्धार करने के लिए मर्य्यादा पुरुषोतम श्री रघुनाथजी के चरित्र का अवलम्ब ग्रहण किया और एक सशक्त रूप में राम-कथा का प्रणयन एवं राम-भक्ति का प्रचार किया। कहने की आवश्यकता नहीं है कि वह अपने प्रयास में बहुत कुछ सफल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी हुए। "भक्ति का यह विकृत रूप जिस समय उत्तर भारत में अपना स्थान जमा रहा था, उसी समय भक्तवर गोस्वामीजी का अवतार हुआ जिन्होंने वर्ण-धर्म, आश्रम-धर्म, कुलाचार, वेद विहित कर्म, शास्त्र-प्रतिपादित ज्ञान इत्यादि सबके साथ भक्ति का पुनः सामंजस्य स्थापित करके आर्य-धर्म को छिन्न-भिन्न होने से वचाया।"

व्यक्ति का सुधार और व्यक्तित्व का संश्लेषण तुलसी की भक्ति-पद्धति में समाहित लोक-कल्याण एवं सामाजिक संगठन के आधार हैं

गोस्वामीजी राम और रावण का ऐतिहासिक कथानक लेकर काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए। रावण एक प्रकार से हिन्दू समाज का शत्रु है और राम समाज-कल्याण में प्रयत्नशील वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। रावण समस्त साधन सम्पन्न महाशक्तिशाली राजा है और राम असहाय, निर्वासित व्यक्ति है। वह अपने वुद्धि-कौशल एवं पुरुषार्थ के वल पर वनवासी असभ्य व्यक्तियों एवं वन-चारी वानर-भालुओं को संघटित करके अपने शत्रु पर विजय करता है। रावण-विजय का रहस्य राम का आत्म-विश्वास एवं आत्म विजय इन दो शब्दों में निहित है। 'रामचरित-मानस' में वर्णित लोक-कल्याण एवं सामाजिक संगठन के ये ही दो मूल मन्त्र हैं।

निर्वासित राम के ऊपर वन में विविध प्रकार की विपत्तियाँ पड़ती हैं, परन्तु वह एक पल के लिए भी विचलित नहीं होते हैं। न वह धैर्य ही छोड़ते हैं और न सहायतार्थ अयोध्या को किसी प्रकार का संदेश ही भेजते हैं। यहाँ तक कि स्वर्ग जाते हुए गीधराज जटायु को इस सम्बन्ध में सावधान करते हुए यह कह देते हैं कि वह स्वर्गवासी दशरथजी को सीताहरण का समाचार न सुनाए, यदि मुझमें पुरुषार्थ होगा, तो मैं रावण को इसका दण्ड दूँगा और वह स्वयं रोता हुआ उनके पास पहुँचेगा कि पत्नी-हरण के अपराध में आपके पुत्र श्रीराम ने मेरे वंश का नाश कर दिया—

सीता-हरन पिता सन कहेउ तात जनि जाइ।
जौं मैं राम तो कुल सहित कहिय दसानन आइ।

भौतिक उन्नति के प्रति आसक्त समाज की दृष्टि सदैव स्थूल और प्रयोजन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर केन्द्रित रहती है। रावण उसका प्रतीक था, हमारा प्रस्तुत समाज उसका प्रतिरूप एवं ज्वलन्त उदाहरण है। भौतिकवादी चिन्तन-पद्धति व्यक्ति की उपेक्षा करती है अथवा व्यक्ति समाजीकरण करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने शारीरिक सुखों एवं भौतिक साधनों की उपलब्धि पर बल देता है। त्याग, तपस्या, सदाचार आदि की बातें पीछे पड़ जाती हैं। प्रत्येक व्यक्ति सोचने लगता है कि जब समस्त समाज सदाचारी बन जाएगा, तब वह भी सदाचारी बन जाएगा। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस प्रकार की चिन्तन-शैली भौतिकवादी संस्कृति द्वारा प्रभावित रहती है, जो केन्द्र की उपेक्षा करके परिधि पर बल देती है। भारतीय चिन्तन-पद्धति इसके ठीक विपरीत है। वह व्यक्ति के विकास पर बल देती है। वह केन्द्रोन्मुखी है। उसकी मान्यता यह है कि व्यक्ति रूपी इकाइयों के सुधार के द्वारा समाज का सुधार स्वतः हो जाएगा। गोस्वामीजी को यही चिन्तन-पद्धति मान्य थी और उन्होंने इसी का प्रतिपादन भी किया है। वह व्यक्ति के सुधार में समाज का सुधार देखते थे। भगवान श्री रामजी के द्वारा उन्होंने विभीषण के सम्मुख 'धर्मरथ' का निरूपण कराते हुए लोक-कल्याण के इसी रहस्य का उद्घाटन कराया है।

'रामचरित-मानस' में पाँच स्थलों पर श्री रामजी जीवन और जगत का विवेचन करते हुए दिखाई देते हैं। इन्हें पाँच 'राम-गीताएँ' कहा जाता है। राम-रावण के भयंकर युद्ध को देखकर विभीषण के मन में संदेह उत्पन्न होने लगता है कि विरथ राम रथी रावण पर किस प्रकार विजय प्राप्त कर सकेंगे। उसके संदेह का निवारण करते हुए श्रीराम धर्म-रथ का निरूपण करते हैं और प्रकारान्तर से बताते हैं कि जो धर्माचरण द्वारा अपने मन पर विजय प्राप्त करता है, वही वास्तव में सच्ची विजय का अधिकारी बनता है, संसार को जीतने के लिए मन को जीतना चाहिए। रथ के विभिन्न अवयवों का रूपकात्मक वर्णन करते हुए वह निष्कर्षतः कहते हैं कि—

सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहुँ न कतहुँ रिपु ताके।
महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्पष्ट है कि तुलसी के मतानुसार हमारी समस्या समाजगत न होकर वास्तव में व्यक्तिगत है। समाज के संगठन के लिए हमें व्यक्ति का संगठन करना चाहिए, समाज को विश्रृंखलित न होने देने के लिए हमें व्यक्तित्व के विश्रृंखलन के प्रति जागरूक रहना चाहिए।

गोस्वामीजी ने अपनी भक्ति-पद्धति के साथ केवल कर्म और धर्म का ही सामंजस्य प्रस्तुत नहीं किया, अपितु भिन्न-भिन्न उपास्य देवों के कारण जो भेद दिखाई पड़ते थे, उनका भी एक में पर्यवसान किया। समाज के संगठन के लिए वह जीवन में सामंजस्य की अनिवार्यता मानते थे। परमार्थिक दृष्टि से उन्होंने समस्त संसार को 'सीयाराम मय' माना परन्तु व्यवहार के क्षेत्र में धर्म के विरोधी 'रावण' को वह 'शठ' कहते हुए तनिक भी संकुचित नहीं हुए।

निष्कर्ष—तुलसी की भक्ति-पद्धति में लोक-संग्रह का भाव अविछिन्न रूप से व्याप्त है। उनकी राम-भक्ति राममय जगत का हित-साधन करने वाले धर्म का प्रतिपादन करती है—

परिहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।

परन्तु तुलसी के लोक-धर्म को भली प्रकार समझने के लिए उसके मूल में निहित चिन्तन-पद्धति से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है। तुलसी ने लोक-धर्म और व्यक्ति-धर्म दोनों का प्रतिपादन किया है। इन दोनों के मध्य समन्वय करते समय उनका दृष्टिकोण यह है कि "लक्ष्य यदि व्यापक और श्रेष्ठ है तो साधन का अनिवार्य अनौचित्य उतना नहीं खलता।" राम वृक्ष की ओर से वाण चलाकर वालि का वध करते हैं, परन्तु तुलसी फिर भी राम के कृत्य को उचित एवं धर्म संगत मानते हैं। उनके मतानुसार यदि किसी अत्याचारी का दमन सीधे न्यायसंगत उपायों से नहीं हो सकता है तो कुटिल नीति का अवलम्बन लोक-धर्म की दृष्टि से उचित है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि "जहाँ लोक-धर्म और व्यक्ति धर्म का विरोध हो, वहाँ कर्म-मार्गी गृहस्थों के लिए लोक-धर्म का अवलम्बन ही श्रेष्ठ है। × × व्यक्तिगत सफलता के लिए जिसे लोग 'नीति' कहते हैं, सामाजिक आदर्श की सफलता की साधक होकर वही 'धर्म' हो जाता है।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोस्वामीजी का दृष्टिकोण यही था। उन्होंने विरति-विवेक युक्त हरि भक्ति के साथ लोक-कल्याण का सम्मिश्रण करके जो रसायन तैय्यार किया, उसके सेवन से धर्म-मार्ग में कष्ट और भ्रांति का अनुभव नहीं होता है। इसी धर्म मार्ग को उन्होंने 'राजडगर' कहा है, जिस पर चल कर व्यक्ति का विकास और समाज का कल्याण दोनों एक साथ सम्भव हैं।

प्रश्न २९—"तुलसी ने ज्ञान और भक्ति का जो विवेचन किया है वह काव्य के आंतरिक पक्ष की दृष्टि से उनकी विकसित आध्यात्मिक शक्ति का अभिव्यंजक है।" उपयुक्त उदाहरण देते हुए इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ३०—"तुलसी का काव्य भक्ति-प्रधान काव्य है।" विभिन्न ग्रन्थों से उपयुक्त उदाहरण देकर उनकी भक्ति-पद्धति की आशु-फल दायिनी शक्ति और ज्ञान की उनके द्वारा प्रतिपादित दुरूहता पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—गोस्वामीजी की भक्ति-पद्धति युगानुरूप थी—अकबर सम्राट के कुशल प्रशासन ने भारतीय जनता को पूरी तरह कस लिया था और जनता उसके नीचे पिस रही थी "जवर्दस्त मारे और रोने न दे" वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी। जनता अपने मुगल शासकों के विरुद्ध किसी प्रकार की आवाज नहीं उठा सकती थी। ऐसे समय में गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव हुआ और उन्होंने जनता के मार्ग-दर्शन-हेतु अपनी आवाज उठाई। उस आवाज में कटुता का लेशमात्र भी नहीं था, साथ ही त्रस्त जनता के लिए अपने उद्धार के मार्ग का संकेत था। उन्होंने इतिहास प्रसिद्ध एवं विश्व-विश्रुत प्रजा-पालक रघुवंशी राजा रघुनाथजी का स्मरण किया और उनका चरित्र-वर्णन परब्रह्म परमात्मा के रूप में किया। उनके राम प्रजापालक राजा भी थे और भक्तजन के कष्टों के निवारणार्थ अवतार धारण करके लीला करने वाले परमात्मा भी थे। वह दशरथ-अजिर-विहारी राम भी थे और उमासहित पुरारि द्वारा उपास्य परब्रह्म राम भी थे। राम के समान हित करने वाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोस्वामीजी के लिए राम के समान अन्य कोई नहीं है। इस बात के संकेत गोस्वामीजी ने अपने प्रत्येक ग्रन्थ में दिए हैं। एक उदाहरण देखिए—

भूमिपाल, ब्यालपाल, नाकपाल, लोकपाल,
कारन-कृपालु, मैं सबंके जी की थाहली।
कादर को आदर काहू के नाहिं देखियत,
सबनि सोहात है सेवा-सुजानि टाहली।
तुलसी सुभाय कहै नाहीं कछु पच्छपात,
कौन ईस किए सीस भालु खास माहली।
राम ही के द्वारे पै बोलाइ सनमानियत,
मोसे दीन दूबरे कुपूत कूर काहली।

(कवितावली)

गोस्वामीजी को राम का पारमार्थिक रूप निर्गुण रूप मान्य था, परन्तु वह उसे केवल ध्यान का विषय मानते थे। वह दुष्टों से हमारी रक्षा नहीं कर सकता था। इसी कारण उन्होंने निर्गुण को सगुण सापेक्ष बताया और सगुण के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए वताया कि पैंज परे प्रहलादहुँ को प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिए तें।''

गोस्वामीजी का सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय ग्रन्थ 'रामचरितमानस' है। 'रामचरितमानस' की रचना का आधार शिव-पार्वती-संवाद है। उमा शिवजी से प्रश्न करती हैं, शिवजी प्रश्नों का उत्तर दे देते हैं और ग्रन्थ समाप्त हो जाता है। उमा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं सर्वप्रथम प्रश्न यह है—प्रथम सो कारन कहहु विचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन वपु धारी।'' शिवजी इस प्रश्न का अनेक प्रकार से उत्तर देते हैं। राम-जन्म के अनेक हेतुओं का वर्णन करते हैं और सारांश रूप बता देते हैं कि जहाँ प्रेम है वहाँ राम हैं, जो सिद्धान्त में 'ब्रह्म' है व्यवहार में वही राम है, जिसे हम चिन्तन के क्षेत्र में 'अद्वैत' कहते हैं, व्यवहार में वही प्रेम-भाव है। यथा—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज भगति-प्रेम बस कौसल्या के गोद।

द्वेष और ईर्ष्या रहित व्यवहार राम-दर्शन का सहज सा साधन है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामहि केवल प्रेम प्यारा । जानि लेहु जो जानन हारा ।

तुलसीदासजी ने पूरी शक्ति के साथ कहा कि लोग पारस्परिक द्वेष, संघर्ष का त्याग कर दें, प्रेममय होजाएँ, भगवान अवश्य अवतार लेकर तुम्हारे कष्टों का निवारण करेंगे—

सूधे मन सूधे बचन सूधी सब करतूत,
तुलसी सूधी सकल बिधि रघुबर प्रेम प्रसूत ।

'रामचरितमानस' में वह बार-बार याद दिलाते चलते हैं कि पतित-पावन एवं लोकोद्धारक राम परब्रह्म के अवतार हैं, जिससे लोगों को यह विश्वास हो जाए कि भगवान अवतार लेते हैं भक्त-जन का कष्ट-हरण करते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि नित्य प्रति अपनी आँखों के सामने देव-मन्दिरों को गिरते देखकर तथा नारियों के सतीत्व का अपहरण देखकर लोगों को यह विश्वास नहीं होता था कि गज की टेर सुनकर खरारि के दौड़ने की कथा अथवा द्रौपदी की पुकार सुनकर आने वाले मुरारि की घटना सच्ची थी। गोस्वामीजी ने अपनी राम-कथा का संगठन इस प्रकार किया कि उसको पढ़कर पाठक को यह विश्वास हो जाता था कि भगवान अवश्य ही और शीघ्र ही आकर हमारा उद्धार करेंगे।

उन्होंने कागभुशुण्डि को राम के विराट् रूप के दर्शन करा दिए और जनता में राम के अवतारवाद के प्रति आस्था उत्पन्न कर दी। 'श्रीमद्भगवद्-गीता' में श्रीकृष्ण अपना विराट रूप अर्जुन को दिखाते हैं और अर्जुन उनकी अमोघ शक्ति के प्रति आश्वस्त होकर, कह देते हैं—करिष्ये वचनं तव।' तुलसी के 'रामचरित मानस' में राम के लोक-व्यापी स्वरूप का दर्शन करके कागभुशुण्डिजी कह देते हैं—

या ते यह तन मोहि प्रिय भयउ राम पद नेहु ।
निज नयनन्ह प्रभु देखिहउँ गयउ सकल संदेह ।

तुलसी के काव्य का पाठ करने वाली भारतीय जनता की खिन्नता राम-भक्ति के प्रवाह में बह गई और समाज अपने भविष्य के प्रति आश्वस्त हो गया। उसने अपना सिर उठाकर वस्तु स्थिति का आकलन किया और अपना कर्त्तव्य निर्धारित किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुलसी का काव्य भक्ति-प्रधान है—

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने प्रत्येक काव्य-ग्रन्थ में जीवन का चरम फल राम-भक्ति की प्राप्ति बताया है। उनके लिए राम-भक्ति साधन और साध्य दोनों है। अतः जीव उससे क्षण भर भी विलग नहीं हो सकता है, यदि वह ऐसा करता है तो नाना प्रकार के कष्टों को भोगता है। उन्होंने 'राम-भक्ति' को मोक्ष से भी बढ़कर बताया है। इतना ही नहीं, राम से बढ़कर राम के नाम को और राम से अधिक राम के सेवक को बताया है। उनके राम धर्म के प्रतीक हैं। तुलसी के अनुसार सदाचार अथवा सत्संग जीवन के परम लक्ष्य हैं। वह कहीं भी भुक्ति या मुक्ति की कामना नहीं करते हैं। उनका एक मात्र 'मनोराज्य' है संत-स्वभाव की प्राप्ति—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु कृपा तें संत स्वभाव गहौंगो।

(विनयपत्रिका)

तुलसी के रामचरितमानस के जितने भी पात्र हैं—आदर्श और खल—वे सब राम-भक्ति का वरदान माँगते हैं अथवा राम के रूप में समा जाते हैं। इस प्रकार भक्ति को जीवन का चरम फल बताते हुए वह भक्ति के प्राधान्य का प्रतिपादन ही नहीं करते हैं अपितु उसकी प्रतिष्ठा भी कर देते हैं।

माया का निवारण ज्ञान की अपेक्षा भक्ति द्वारा अधिक सहज और सरल है

गोस्वामीजी ज्ञान के द्वारा 'माया' के निवारण का सिद्धांत करते हैं और उसकी चर्चा भी करते हैं, परन्तु साथ ही यह भी कह देते हैं कि ऐसा तभी सम्भव है जब भगवान की कृपा होती है। इस प्रकार वह अन्ततः भक्ति-भाव में ज्ञान का पर्यवसान कर देते हैं। यथा—

सोइ जानै जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहि होइ जाई।

प्रभु के अनुग्रह के द्वारा 'ज्ञान' की उपलब्धि गोस्वामीजी की अपनी सूझ है। उनका कथन है कि जीव अपने अज्ञान के कारण माया के बन्धन में पड़ता है। इससे छुटकारा पाने के लिए उसको चाहिए कि निरन्तर प्रयत्न-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शील रहे, परन्तु उद्धार तभी होगा, जब प्रभु की कृपा होगी—"जोइ बांधे सोइ छोरै," वाली बात है।

गोस्वामीजी की भक्ति 'विरति-विवेक' संयुक्त है। इस कारण 'ज्ञान' उसके विरोधी के रूप में नहीं, अपितु पूरक एवं साधक के रूप में आता है। बस बात इतनी सी है कि—

ज्ञान पंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होहि नहिं बारा।

क्योंकि—

कहत कठिन समुझत कठिन साधत कठिन बिवेक।
होहि घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक।

और फिर भक्ति के अपेक्षाकृत अधिक व्यावहारिक होने का मनोवैज्ञानिक कारण भी है—

माया भगति सुनहु तुम दोऊ। नारि-वर्ग जानैं सब कोऊ।
मोह न नारि नारि के रूपा, पन्नगारि ये रीति अनूपा।

'विनय पत्रिका' में भक्ति के तत्त्वों का विवेचन विशेष विस्तार-पूर्वक किया गया है। वह तो भक्तों का सर्वस्व ही है। उसमें आलम्बन के महत्त्व से प्रेरित दीनता, ग्यानि, विरक्ति, प्रतीति आदि मनोभावों का बड़ा ही स्पष्ट और बोधगम्य स्वरूप गोस्वामीजी ने प्रस्तुत किया है। अन्तःकरण की मलिनता और उसके प्रक्षालन के विधि-विधान को समझने के लिए 'विनय-पत्रिका' का अध्ययन परम आवश्यक है। कृपा से जनित संसार को जैसा विवेचन 'विनय पत्रिका' में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। यथा—

हे हरि ! कस न हरहु भ्रम भारी।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लागि नहीं कृपा तुम्हारी।
अर्थ अविद्यमान जनिय संसृति न: जाइ गोसाईं।
बिन बांधे निज हठ सठ परबस परयो कीर की नाईं।
सपने ब्याधि बिविध-बाधा जनु मृत्यु उपस्थित आई।

शिव और राम दोनों की भक्ति का प्रतिपादन करके भक्ति-पद्धति को सर्वांग बना दिया है—

तुलसी के समय में शिव और विष्णु उपास्य थे और इनके नाम पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्ति के क्षेत्र में शैव और वैष्णव दो महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय थे। इन दोनों सम्प्रदायों के अनुयायी परस्पर विरोधी थे। और आपस में लड़ा करते थे। यह विरोध इस सीमा तक बढ़ गया था कि ऐसा प्रतीत होता था कि शिव और विष्णु परस्पर विरोधी देवता थे उनको एक ही ब्रह्म के दो रूप समझना दूर की बात थी यहाँ तक कि दक्षिण भारत में तो इनके नाम पर कांची नगर का विभाजन होकर दो स्वतन्त्र नगर विष्णु कांची और शिव कांची ही बस गये थे।

गोस्वामी तुलसीदास ने शिव और राम की उपासना पर समान वल दिया और स्पष्ट घोषणा कर दी कि दोनों की समान रूप से आराधना किए विना जीव का कल्याण असम्भव है। गोस्वामीजी ने विष्णु रूप राम से शिवलिंग की स्थापना कराई और उन्हें शिव का उपासक वता दिया। दूसरी ओर उन्होंने शिव को ब्रह्म रूप राम का सवसे वड़ा भक्त वताया और उनसे स्पष्टतः कहला दिया कि—

शिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर सपनेहूं मोहि न भावा।
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नर अवसि पातकी थोही।

इतना ही नहीं मानस के कांडों के आरम्भ में वह राम और शिव की वन्दना एक क्रम विशेष के अनुसार करते हैं।

गुरु के महत्व का प्रतिपादन—निर्गुण सम्प्रदाय के कवीर, नानक, दादू आदि भक्त गुरु की महिमा पर विशेष वल देते थे। वे लोग गुरु को गोविंद से भी वढ़ कर वताते थे। तुलसीदास जी ने भी गुरु की महिमा को स्वीकार किया और कहा कि गुरु के विना भव-सागर पार करना असम्भव है—

बिनु गुरु होई कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग बिनु।
गावहिं वेद पुरान, भव कि तरइ हरि भगति बिनु।

अथवा—

विनु गुरु भव निधि तरइ न कोई। जो विरंच संकर सम होई।

सारांश यह है कि गोस्वामी जी ने भक्ति का एक ऐसा मार्ग प्रशस्त किया जिससे जनता का मानसिक, वौद्धिक एवं आध्यात्मिक कल्याण सुगमता पूर्वक सम्भव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राम की भक्ति का मूल कारण उनकी शरणागत वत्सलता—राम दीन-बन्धु एवं शरणागत वत्सल हैं। तुलसी ने राम की शरणागत वत्सलता का गुणगान जी खोलकर कर किया है। वाल्मीकि अजामिल, गीध, शवरी, विभीषण, गुह, सदन कसाई, अहिल्या आदि के उद्धार की ओर संकेत करके वह बार-बार राम की शरणागत-वत्सलता की दुहाई देते हैं और भक्त को याद दिलाते हैं कि—

ऐसो को उदार जग माहीं।
बिनु कारण जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं।

रामचरितमानस, दोहावली, गीतावली, कवितावली तथा विनय-पत्रिका में वह बार-बार इसकी चर्चा करके साधक को आश्वस्त करते हैं—

गये राम सरन सबको भलो।
धनी गरीब बड़ो, छोटो बुध, मूढ़ हीन बल अति बलो।
पंगु अंध निरगुनी-निसंबल, जी न लहै जाचे जलो।
सो निवहनों नीके, जो जननि जग राम राजमारग चलो। आदि

दार्शनिक दृष्टि से घट-घट में रमने वाले 'राम' 'विश्व चेतना' के प्रतीक हैं। 'विश्व चेतना' का संस्पर्श किसे जीवन मुक्त न कर देगा। शिव अथवा किसी अन्य देवता से उनका विरोध नहीं है। परन्तु राम के नाम में संश्लिष्ट चेतना का पूर्ण प्रतीक विधान देखकर ही तुलसी ने राम की उपासना का प्रतिपादन किया। अस्तु।

भक्ति की आशुफलदायिनी शक्ति—'विश्व-चेतना' रूप राम का साक्षात्कार ही राम-भक्ति की प्राप्ति है। 'विश्व-चेतना' में समस्त सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं। न देश-काल का अस्तित्व रह जाता है और न 'मैं' और न 'मैं नहीं' का भाव ही रह जाता है। इसी दृष्टि से तुलसी ने पग-पग पर कहा है कि भक्ति रूपी सुरसरि में अवगाहन करने का फल अविलम्ब प्राप्त होता है—

मज्जन फल पेखिय तत्काला। काक होंहि पिक, बकहु मराला।

इसी कारण वह बार-बार यह बात कहते हैं कि भक्ति का प्रादुर्भाव तत्काल समस्त इच्छाओं की पूर्ति कर देता है, अथवा यह कहिए कि जीव को सर्वथा इच्छा रहित बना देता है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्मुख होइ जीव मोंहि जबहीं । जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥

तथा—

भगति करत बिनु जतन प्रयासा । संसृति मूल अविद्या नासा ॥

यदि कोई यह प्रश्न करे कि 'भक्ति' के फलस्वरूप हमें क्या मिलेगा, तो उसका यही उत्तर है कि क्या नहीं मिलेगा ? भक्त जन के लिए तुलसी की राम-भक्ति सर्वस्व है, उसकी आशुफलदायिनी शक्ति अमोघ है—

राम भगति चिंतामनि सुन्दर । बसइ गरुड़ जाके उर अंतर ।
परम प्रकास रूप दिन राती । नहिं कुछ चहिय दिया घृत बाती ।
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा । लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ।
प्रबल अविद्या तम मिट जाई । हारहि सकल सलभ समुदाई ।
खल कामादि निकट नहिं जाहीं । बसइ भगति जाके उर माहीं ।
× × × ×
व्यापहिं मानस रोग न भारी । जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ।
राम भगति मनि उर बास जाकें । दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें ।

भक्ति की अमोघता का एक विशेष कारण है—यह समस्त साधनों और साधनाओं का चरम फल है । यह वह अनंत सागर है जिसमें समस्त साधना रूपी नदियाँ आकर गिरती हैं—

जहँ लगि साधन बेद बखानी । सब कर फल हरि भगति भवानी ।

'रामचरितमानस' के अन्तर्गत राम-कथा का श्रद्धा सहित श्रवण करने वाला प्रत्येक श्रोता माया-मुक्त एवं विगत विमोह हो जाता है । ऐसी हरि-भक्ति किसे ग्राह्य एवं रुचिकर न होगी ?

असि हरि भगति सुगम सुखदाई । को अस मूढ़ न जाहि सुहाई ।

प्रश्न ३१—गोस्वामी तुलसीदास की काव्य-रचना में रसिक-सम्प्रदाय के प्रभाव का विश्लेषण कीजिए ।

अथवा

प्रश्न ३२—"गोस्वामी तुलसीदास राम से अपने अनेक 'नातों' में माधुर्य-सम्बन्ध को भी स्थान देते थे ।"

'राम-भक्ति' पर रसिक सम्प्रदाय के प्रभाव का वर्णन करते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुए उक्त कथन के औचित्य पर विचार कीजिए। अपने कथन की पुष्टि में उद्धरण अवश्य प्रस्तुत कीजिए।

उत्तर—राम-कथा के तीन रूप—रामकथा के स्वरूप विकास की तीन अवस्थायें स्पष्टतया लक्षित होती हैं—ऐतिहासिक, साहित्यिक और साम्प्रदायिक। राम के ऐतिहासिक रूप के सर्वप्रथम दर्शन हमको वाल्मीकि रामायण (३०० ई० पू०) में होते हैं। वहाँ से लेकर पुराणों के निर्माण काल—चौथी शताब्दी तक हमको इस रूप के दर्शन होते हैं। साहित्यिक रूप की प्रमुखता रघुवंश के रचयिता कालिदास के समय (४०० ई०) से लेकर जानकीहरण के लेखक कुमारदास (८ वीं शताब्दी) तक रही। उसका साम्प्रदायिक रूप आलवार संत शठकोप (६ वीं शताब्दी) विरचित 'सहस्र-गीति' में प्रस्फुटित होता है और तब से लेकर अब तक वह शृंखलाबद्ध रूप में चला आता है। यह बात उल्लेखनीय है कि इन तीनों रूपों में हमें राम की अवतार-कल्पना के सूत्र मिलते हैं। हमारा विशेष प्रयोजन साम्प्रदायिक रूप से है। अवतारी विष्णु की पूजा वीर-पूजा के रूप में होती आ रही थी। अतः रामोपासना का सूत्रपात यदि वीरपूजा के रूप में हुआ हो, तो कोई आश्चर्य नहीं।

रामावतार की प्रतिष्ठा—राम तत्त्व के विकास का अनुशीलन करने से विदित होता है कि राम के उदात्त चरित्र से प्रभावित होकर लोक भावना ने उन्हें राजपुत्र से पुरुषोत्तम, पुरुषोत्तम से विष्णु तथा विष्णु से परम पद पर प्रतिष्ठित किया। यह बताना कठिन है कि विकास की यह प्रक्रिया कब प्रारम्भ हुई और इसमें कितना समय लगा। परन्तु इतना निर्विवाद है कि वाल्मीकि रामायण में यद्यपि राम को मनुष्य माना गया है, तथापि वह पुरुषोत्तम रूप में दिखाए गए हैं। यथा—

आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।
सोऽहं यश्च यतश्चाहं भगवांस्तद् ब्रवीतु मे। ।११७।११

भागवत धर्म के प्रचार के साथ-साथ ज्यों-ज्यों वासुदेव कृष्ण का महत्त्व बढ़ता गया, त्यों-त्यों राम की अलौकिक लीलाओं का भी प्रचार होता गया और उनकी अवतार कल्पना को बल मिला। बेस नगर के शिलालेख से यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्पष्ट हो जाता है कि दूसरी शताब्दी ई० पू० में परात्पर ब्रह्म के रूप में राम की पूजा होने लगी थी। वाल्मीकि रामायण, महाभारत, पौराणिक साहित्य तथा राम साहित्य के प्राचीन काव्यों में राम विष्णु तथा परब्रह्म के रूप में प्रतिष्ठित दिखाई देते हैं।

राम-कथा का साम्प्रदायिक रूप—कालक्रमानुसार ९ वीं शताब्दी में शठकोप आलवार के साथ श्रीवैष्णवों की गुरु परम्परा आरम्भ होती है। यहीं से राम-कथा के साम्प्रदायिक साहित्य के निर्माण का सूत्रपात माना जाता है। इस प्रकार राम-भक्ति धारा का प्रवाह ९ वीं शताब्दी से अब तक अविच्छिन्न रूप में चला आता है। इस कालावधि को अध्ययन की सुविधा के विचार से तीन युगों में विभक्त करते हैं—

(१) आलवार युग (सन् ८०० से ११०० ई० तक)
(२) आचार्य युग (सन् ११०० से १४०० ई० तक)
(३) रामावत युग (सन् १४०० ई० से अब तक)

प्रथम दो युगों में व्यष्टि प्रधान-साधना की प्रधानता रही। तृतीय युग में स्वामी रामानंद ने 'रामावत' सम्प्रदाय की स्थापना की।

रामावत सम्प्रदाय की स्थापना और उसकी विशेषताएँ

श्री सम्प्रदाय के आचार्य अपने आचार-व्यवहार में अपेक्षाकृत उदार थे। इसी कारण स्वामी राघवानंद को आचार्य पीठ से वहिष्कृत होना पड़ा। वह उत्तर भारत चले आए। उनके साथ रामोपासना भी उत्तर आगई। रामानंद के हाथों वह सर्वांग समृद्ध वनी।

स्वामी रामानंद ने श्री सम्प्रदाय के विशिष्टाद्वैत दर्शन और प्रपत्ति-सिद्धान्त का आधार लेकर रामावत सम्प्रदाय का संगठन किया। इसमें उन्होंने सामयिक परिस्थिति के अनुकूल कुछ नवीन विचारों का समावेश किया। उन्होंने श्रीवैष्णवों के नारायण मन्त्र के स्थान पर षडक्षर रामयन्त्र को साम्प्रदायिक दीक्षा का बीजमंत्र माना, वाह्य सदाचार की अपेक्षा साधना में आन्तरिक भाव की शुद्धि पर विशेष बल दिया, जाति-पाँति, छुआ-छूत, ऊँच-नीच का भाव मिटाकर वैष्णव मात्र में समता का समर्थन किया, नवधा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से परा और प्रेमा-भक्ति को श्रेयस्कर वताया और साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के प्रचार में संस्कृत की अपेक्षा हिन्दी अथवा जनभाषा को प्रधानता दी।

राम-भक्ति का प्रचार

उक्त रामानंदीय वैष्णव परम्परा में तुलसी का आविर्भाव हुआ। तुलसी नरहरिदास अथवा नरहर्यानंद के शिष्य एवं अनन्तानंदजी के प्रशिष्य थे। यदि रामावत सम्प्रदाय के प्रवर्तन का श्रेय स्वामी रामानंद को है तो जन-जन तक उसका संदेश पहुँचाने का लोकमानस में राम-भक्ति के प्रति श्रद्धा का भाव जागरित करना तुलसीदास का ही काम था।

राम-काव्य में माधुर्य-भाव की परम्परा—गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी कृतियों में रामचरित के जिस रूप की अभिव्यक्ति की है, वह ऐश्वर्य प्रधान है। तुलसी के राम लोकमर्यादा के रक्षक, लोक विरोधी तत्त्वों के उन्मूलक और लोक धर्म के संस्थापक हैं। इसके अतिरिक्त तुलसी के ग्रन्थों में यत्र-तत्र हमको राम का एक अन्य रूप भी मिलता है—वह है उनका 'मधुर-रूप'। राम का यह रूप तुलसी के समकालीन राम काव्य के अन्य अनेक ग्रन्थों में मिलता है। यह वस्तुतः रामावत सम्प्रदाय की माधुर्य भक्ति का प्रभाव है।

रामावत सम्प्रदाय में माधुर्य भक्ति की एक प्राचीन एवं विकसित परम्परा है। इस पद्धति के रामोपासक कवियों की संख्या इतनी अधिक है कि तुलसी एक अपवाद स्वरूप ही दिखाई देते हैं। इस सम्बन्ध में गम्भीर अनुसन्धान के फलस्वरूप डा० भगवतीप्रसादसिंह ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि "राम काव्यों में शृंगारी वर्णनों की परम्परा उतनी ही प्राचीन है जितनी स्वयं रामकथा।"

वाल्मीकि रामायण में हमको राम के शृंगारी और विलासप्रिय रूप के सर्वप्रथम दर्शन होते हैं और रसिक सम्प्रदाय के सन्त वाल्मीकि रामायण को आराध्य राम की शृंगारी लीलाओं का आदि स्रोत मानते हैं। रसिक प्रवर मधुराचार्य ने सुन्दर मणि संदर्भ में इस सम्बन्ध में वहुत कुछ लिखा है। इसके पश्चात् रघुवंश, उत्तर रामचरित, जानकीहरण, हनुमन्नाटक आदि कई नाटकों में हमें राम की रसिकता के वर्णन मिलते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामोपासना में रसिक भाव की स्थापना

'रसिक प्रकाश भक्तमाल' में शठकोप को राम का आदि पार्षद बताया गया है। राम-भक्ति में मधुर भाव का उद्रेक भी सर्वप्रथम इन्हीं की 'सहस्र-गीति' में पाया जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि आलवार संत शठकोप ने ही रसिक रामभक्ति का सूत्रपात किया। आलवार संतों से यह परम्परा वैष्णव आचार्यों द्वारा ग्रहण कर ली गई। वैष्णव आचार्यों द्वारा प्रतिपादित रसिक रामभक्ति के सिद्धान्त स्वामी रामानन्द की रिक्थ में मिले। रामानन्द जी ने इन सिद्धान्तों की रक्षा ही नहीं की, उन्हें अपनी साधना से सींच कर, विकसित भी किया। इन्होंने भक्ति की रसमयी धारा में मर्यादा तथा सदा-चार की प्रतिष्ठा के लिए 'स्वकीया' भाव को आदर्श ठहराया और इस प्रकार माधुर्य भाव की रामोपासना का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

तुलसी में रसिक भाव—कृष्ण भक्ति की श्रृंगारी प्रवृत्ति मुसलमानी शासन की छत्रछाया में समृद्ध हो रही थी। सूफी संत और कबीर पंथी भी प्रेम की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति कर रहे थे। अतः काव्य के क्षेत्र में भी श्रृंगारी साधना एक प्रकार से युग धर्म का रूप धारण कर चुकी थी। अभी तक राम-चरित में ऐश्वर्य की प्रधानता थी और माधुर्य-भावना इने-गिने एकान्त सेवी साधकों तक सीमित थी। परन्तु अब भक्तों के बीच उसका व्यापक प्रचार होने लगा। चतुर्दिक प्रवाहित रसिक धारा से तुलसी का बचा रहना प्रायः असम्भव ही था। गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में हमें कई स्थलों पर रसिक सम्प्रदाय का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। कतिपय आलोचकों का तो यहाँ तक कहना है कि 'ये.......किसी समय उसके साधक भी रहे हों तो आश्चर्य नहीं।" अस्तु।

गोस्वामीजी अपने नाम 'तुलसी' को विष्णु प्रिया 'वृन्दा' (तुलसी) के समकक्ष मानकर अपने नाम को सौभाग्य सूचक मानते हैं—

नाम तुलसी पैं भौंड़े भाग, सो कहायो दास,
किये अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को। (कवितावली)

तथा— भलो भले सो छल किये, जनम कनौड़ो होइ।
श्रीपति सिर तुलसी लसति, बलि बावन गति सोइ। (दोहावली)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राम विवाह के अवसर पर वह अपने आपको जनकपुर की सखियों के समान देखते हैं—

जनक को सिया को हमारो तेरो तुलसी को,
सबको भावतो ह्वै है मैं जो कह्यो कालि री।
कौसिला की कोखि पर तोषि मन वारिये री,
राम दसरत्थ की बलैया लीजै आलि री।
(कवितावली)

कृष्ण-भक्ति में राधावल्लभी सम्प्रदाय के अनुयायी अपने आपको 'गुलाम राधारानी' के कहते हैं। तुलसीदास भी प्रायः उसी प्रकार अपने आपको सीता का दास मानते हैं। 'कवितावली' के निम्नलिखित उद्धरण में हम 'सीतापरत्व' की झाँकी पाते हैं—

मेरी साहिबिनि सदा सीस पर बिलसति,
देवि क्यों न दास को देखाइयत पाय जू।
खीझहू में रीझिबे की बानि, राम रीझत हैं,
रीझे ह्वै हैं राम की दुहाई रघुराय जू।

'विनय-पत्रिका' के निम्नलिखित पद की व्याख्या करते हुए आचार्य पं० चन्द्रबली पाण्डे ने लिखा है कि यहाँ 'दासी' रूप में वह तुलसी हैं और दास रूप में तुलसीदास—

कबहुँक अब अवसर पाइ।
मेरियौ सुधि द्याइबी कछु करुण कथा चलाइ।
× × ×
नाम लै भरै उदर एक प्रभु दासी दास कहाइ।
बूझि हैं सो कौन है ? कहिबी नाम दसा जनाइ।
× × ×
जानकी जग जननि जन की किये वचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तब नाथ गुन गन गाइ।

गोस्वामीजी का सखी रूप 'गीतावली' में एक दम उभर कर सामने आ जाता है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे ललित लखन लाल लोने ।
तैसिये ललित उर मिला परसपर लखत सुलोचन कोने ।

× × ×

सोभा सील सनेह सोहावने समउ केलिगृह गौने ।
देखि तियन के नयन सफल भये तुलसीदास हू के होने ।

'केलिगृह' की झाँकी के प्रति तियनि की तरह तुलसी का औत्सुक्य प्रकट करना उनकी मधुर साधना की ओर संकेत करता है। 'अष्टयाम' के अन्तर्गत रसिक भाव के प्रवर्तक अग्रदास ने साधकों के लिए 'शयनागार' की झाँकी के चिंतन की व्यवस्था प्राय: इसी प्रकार की है।

राम सीता की वन यात्रा के अन्तर्गत जहाँ तुलसीदास 'रामचरित मानस' में एक तापस के रूप में आते हैं, ठीक उसी स्थान पर 'गीतावली' में वह एक स्त्री के रूप में उपस्थित होते हैं। यहाँ उन्होंने तापस के आत्म समर्पण के स्थान पर एक स्त्री की प्रेम विह्वलता का अंकन किया है। वह तापस अपने इष्टदेव के चरणों में गिर पड़ता है—

सजल नयन तन पुलकि निज इष्टदेव पहिचानि ।
परेउ दंड जिमि धरनि तल दसा न जाइ बखानि ।

और उसको श्रीराम अपने हृदय से लगा लेते हैं—

राम सप्रेम पुलकि उर लावा । परम रंक जनु पारस पावा ।

और वह सीता की चरण-रज सिर पर धारण करके उनके आशीर्वाद को प्राप्त करता है—

पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा । जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा ।

परन्तु 'गीतावली' में एक प्रेम विह्वल सखी न जाने कहाँ से आ जाती है और सीताजी उसको अपने हृदय से लगा लेती हैं—

तुलसी रही है ठाढ़ी पाहन गढ़ी सी काढ़ी ।
न जाने कहां ते आई कौन की कोही ।

तथा—

सनेह सिथिल सुनि बचन सकल सिय,
चितई अधिक हित सहित ओही ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुलसी मनहुँ प्रभु कृपा की मूरति फिरि,
हेरि कै हरषि हियें लियो है ओही।

इस प्रसंग से सम्बन्धित श्री पं० चन्द्रवली पांडे का कथन द्रष्टव्य है—"इस प्रसंग में सहसा सीताराम के समक्ष प्रस्तुत होने वाली तथा सीताजी द्वारा हृदय से लगाई जाने वाली इस स्त्री को यदि 'तापस' की भाँति तुलसी से अभिन्न मान लिया जाए, तो कहा जा सकता है कि 'मानस' में उनका आराध्य के प्रति आत्मनिवेदन दास्यभाव का था, किन्तु 'गीतावली' में उनका आत्म-समर्पण माधुर्यभाव से प्रेरित था। ×× कारण रसिक-सिद्धान्त के अनुसार सखियाँ सीता के पुरुष कारत्व से ही प्रभु सेवा की अधिकारिणी होती हैं। अज्ञात स्त्री का यह प्रसंग कदाचित् इसी तथ्य का समर्थन करता है।"

गीतावली के 'मोर जानकी जीवन जागे', आदिक पदों में तुलसीदासजी ने प्रिया के प्रेम रस में पगे हुए अपने इष्टदेव की रसिक मुद्रा का अंकन बड़े मनोयोगपूर्वक किया है। रसिकों की 'अष्टयाम' सेवा में इसे प्रातः उत्थापन समय की आरती का कृत्य कहा जाता है। 'गीतावली' के चित्रकूट प्रसंग में तुलसी ने 'सीताराम' के विलास का वर्णन किया है। यह शैली एकदम रसिकों के आराध्य युगल के 'माधुरी विलास-वर्णन' की शैली है। देखिए—

निज कर राजीव नयन पल्लव दल रचित सयन,
प्यास परसपर पियूष प्रेम पान की।
माधुरी विलास हास, गावत जस तुलसिदास,
बसति हृदय जोरी, प्रिय परम प्रान की।

'बरवै रामायण' के अन्तर्गत तुलसीदासजी ने राम और सीता के सौन्दर्य का जो वर्णन किया है वह बिल्कुल रसिक सम्प्रदाय के 'युगल सरकार' के 'रूप लावण्य' का वर्णन है। राम के माधुर्य-विग्रह पर सखियाँ मोहित होती हैं—

तुलसी बंक बिलोकनि, मृदु मुसकानि।
कस प्रभु नयन कमल अस कहौं बखानि।

साथ ही वे दंपति के साथ हास-परिहास भी करती हैं—

उठी सखी हँसि मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुबर के भये उनींदे नैन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'बरवै रामायण' में अयोध्याकांड में सीता के साथ राम के सुख-विलास का वर्णन है और सुन्दर काण्ड में हनुमान 'स्वामिनी' की विरहजन्य काम-भावना का चित्रण करते हुए दिखाई देते हैं—

सिय वियोग दुख केहि विधि कहउँ बखानि।
फूलबान ते मनसिज बेधत आनि।

'माधुर्य भक्ति' की ऐसी सफल अभिव्यक्ति के कारण ही अनन्य माधव ने गोस्वामीजी को 'तुलसी सखी' की उपाधि दे दी और उनको 'वृन्दा सखी' का अवतार मान लिया। अनन्यजी की यही कामना है कि वह 'तुलसी सखी' के रूप में समादृत हों—

सकल सखिपन में सिरोमनि दास तुलसी तुम रहौ।
करौ सेवन रुचिर रुचि सों सुजस की बानी कहौ।
तुलसी सु वृन्दा सखी को निज नामते वृन्दा सखी।
'दास' तुलसी नाम को यह रहसि मैं मन में लखी।

(व्रजनिधि ग्रन्थावली)

निष्कर्ष—अनन्य माधव जी गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। अतः इनके वक्तव्य का महत्त्व स्वयंसिद्ध है।

गोस्वामीजी की रसिक भावना के सम्बन्ध में हम डा० भगवतीप्रसाद सिंह का कथन उद्धृत करके इस प्रसंग को समाप्त करते हैं, "ये तथ्य यह सिद्ध करते हैं कि गोस्वामी तुलसीदास रसिक रामभक्ति के व्यावहारिक एवं साधनात्मक दोनों पक्षों से अभिज्ञ थे और सम्भवतः राम से अपने अनेक 'नातों' में माधुर्य सम्बन्ध को भी स्थान देते थे। 'मानस' में शैली के अनुरोध से वे अपनी अनुभूतियों को संयमित रखने के लिए बाध्य थे, किन्तु 'गीतावली', 'बरवै रामायण', 'जानकी मंगल' और 'पार्वती मंगल' में जहाँ कहीं कल्पना के मुक्त विलास का अवसर मिला है, उनके शृंगारी भावों की छटा देखते ही बनती है।" (रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१०)

गोस्वामी तुलसीदास की दार्शनिकता

प्रश्न ३३—गोस्वामी तुलसीदास के दार्शनिक विचारों पर एक निबन्ध लिखिए।

अथवा

प्रश्न ३४—तुलसी साहित्य में ब्रह्म, जीव और माया के स्वरूप एवं उनकी स्थिति का स्पष्ट विश्लेषण कीजिए।

अथवा

प्रश्न ३४—"तुलसी दार्शनिक नहीं हैं, पर उनकी भक्ति के आधार दार्शनिक हैं।" इस उक्ति का सम्यक् स्पष्टीकरण कीजिए।

उत्तर—गोस्वामी तुलसीदास भक्त थे, दार्शनिक नहीं—

गोस्वामी तुलसीदास भक्त थे और उन्होंने अपने ग्रन्थों में सर्वत्र भक्ति मार्ग का ही प्रतिपादन किया है। वह बार-बार विविध प्रकार से यही कहते हैं कि यद्यपि जप, तप, योग, कर्म, उपासन ज्ञान आदि अनेक साधनों का निरूपण किया गया है और वे सब सत्य हैं, उनमें कोई भी झूठ नहीं है, तथापि भक्ति का मार्ग अपेक्षाकृत सरल एवं व्यावहारिक होने से सर्वश्रेष्ठ है—"गुरु कह्यो राम भजन नीको, मोहि लागत राज डगरो सो।" सूरदास ने भी निर्गुण ब्रह्म की चर्चा को भक्ति-मार्ग का कण्टक कहा है—"सुनहु मधुप! निर्गुण कण्टक तें राजपंथ क्यों रूँधो।"

गोस्वामीजी ने निर्गुण और सगुण—ब्रह्म के दोनों रूपों को स्वीकार किया है, उनका निरूपण भी किया है। परन्तु उनके मतानुसार 'सगुण' ब्रह्म हमारे अधिक काम का है। उसकी सरस अनुभूति हमारे हृदय में धर्म-भावना का संचार करती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोस्वामीजी ने विशेषकर अपने दो ग्रन्थों—'रामचरित-मानस' और 'विनय-पत्रिका में भक्ति एवं ज्ञान का विवेचन—निरूपण किया है। दोनों ही ग्रन्थों में आपने भक्ति को साधन माना है। आपका स्पष्ट मत है कि भक्ति के मार्ग में विचलित होने की सम्भावना न्यूनतम रहती है। ज्ञान मार्ग कृपाण की धार के समान दुस्साध्य है। इतना ही नहीं आपने भक्ति की प्राप्ति को साधन-साध्य न मानकर प्रभु की कृपा पर अवलम्बित माना है। इस प्रकार ज्ञान की चर्चा करते हुए भी ज्ञान-मार्ग की साधना का वर्णन नहीं किया है। इसके विपरीत आपने ज्ञान मार्ग की कठिनाइयाँ बताकर इसके प्रति साधक को किसी सीमा तक विरत ही किया है। वह ज्ञानमार्गी दार्शनिक नहीं, प्रभु की कृपा का अवलम्ब ग्रहण करने वाले भक्त थे—

वारि मथें घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धांत अपेल॥

तुलसी की भक्ति-पद्धति का आधार दार्शनिक है

गोस्वामी तुलसीदास ने श्रुतिसम्मत एवं 'विरति विवेक' हरि-भक्ति पथ का निरूपण किया है। उनकी भक्ति-पद्धति 'विवेक' द्वारा समर्थित है, अन्ध-विश्वास प्रसूत नहीं। इसी कारण वह 'विवेक-वैराग्य' के मूल आधार 'दर्शन' को लेकर चलते हैं और भक्ति के प्रतिपादन के लिए 'दर्शन' के अवयवों का निरूपण करते हैं। अतः यह समझ लेना चाहिए कि गोस्वामी जी ने दार्शनिक तत्व का निरूपण एक दार्शनिक के रूप में नहीं, वल्कि एक सच्चे भक्त के रूप में किया है। उनके लिए 'दर्शन' भक्ति का सहायक होकर आया है। उनके काव्य में हमको 'दर्शन' का इतना ही अंश मिलता है, जितना 'भक्ति' को सुदृढ़ आधार देने के लिए अनिवार्य है।

दर्शन और भक्ति वस्तुतः दो भिन्न वस्तुएँ नहीं हैं। दोनों का गन्तव्य एक अखण्ड एवं अनिर्वचनीय स्थिति को प्राप्त करना है। दोनों ही विवेक के सहारे असत्य से सत्य की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाते हैं। यदि दोनों में अन्तर है, तो केवल साधना-पद्धति का। ज्ञान का मार्ग 'दमन' का मार्ग है। भक्ति का मार्ग उन्नयन का मार्ग है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुलसी को उन्नयन का मार्ग ग्राह्य है, क्योंकि वह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधिक स्वाभाविक और ग्राह्य है—

मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।
माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि वर्ग जानइ सब कोऊ।
× × ×
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुख खानी।।
यह रहस्य रघुनाथ करि बेगि न जानइ कोइ।
जो जानइ रघुपति कृपा सपनेहु मोह न होइ।।

गोस्वामी जी के दार्शनिक विचार

गोस्वामी जी ने भक्ति का निरूपण दार्शनिक पृष्ठभूमि पर किया है। संसार असत्य है, प्रभु-भक्ति सत्य है। संसार के प्रति आसक्त होना मोह है, प्रभु की ओर उन्मुख होना प्रेम या भक्ति है। इस चिन्तन-पद्धति का प्रतिपादन करते हुए गोस्वामी जी ने ईश्वर, जगत, संसार और जीव के स्वरूप एवं उनके पारस्परिक सम्बन्धों का विवेचन किया है। यह विवेचन दर्शन का विषय है। इसी कारण इस विवेचन के अन्तर्गत व्यक्त विचारों को हम दार्शनिक विचार कहते हैं। तुलसी के दार्शनिक विचार संक्षेप में निम्नलिखित प्रकार हैं—

परमात्मा अथवा परब्रह्म सम्बन्धी विचार

राम परम आत्मा एवं परब्रह्म हैं। उन्होंने ही लीलावतार धारण किया है—

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद परधामा।।
व्यापक विस्वरूप भगवाना। तेहिं धरि देह चरित कृत नाना।।
(रामचरितमानस)

नित्य निर्मोह निर्गुन निरंजन निजानंद निर्वाण निर्वाणदाता।
निर्भरानंद निःकंप निःसीम निर्मुक्त निरुपाधि निर्मम विधाता।।
(विनय-पत्रिका)

वह जिस प्रकार निर्गुण ब्रह्म हैं, उसी प्रकार सगुण ब्रह्म भी हैं—

अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुन सगुन ब्रह्म सुमिरामि नर भूप रूपं।
(विनय-पत्रिका)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक दारुगत देखिय एकू। पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू ॥
व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुण विगत विनोद।
सो अज भगत प्रेम बस कौसिल्या के गोद ॥

यह ब्रह्म ही समस्त चेतना का मूल स्रोत है—

विषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता ॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधिपति सोई ॥
जगत प्रकास्य प्रकाशक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू ॥

इसी प्रकार सीता 'मूल प्रकृति' होकर समस्त अनात्म सत्ता में व्याप्त हैं—

सीय राम मय सब जग जानी। करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥
आदि सक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया ॥

तथा— गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बँदउ सीता राम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥

वामनादि अवतार इन्हीं राम के हुए हैं—

वामनाव्यक्त पावन परावर विभो। (विनय-पत्रिका)

जगत की सृष्टि, उसका पालन एवं नाश करने वाले विष्णु उसी परब्रह्म राम के अवतार हैं—

विश्वधृत, विश्वहित अजित गोतीत शिव विश्वपालन हरण विश्वकर्त्ता।

यह परब्रह्म अपनी त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश को अपने इशारे पर नचाता है—

जग पेखन तुम देखन हारे। बिधि हरि संभु नचावन हारे। × इत्यादि
(रामचरितमानस)

उपर्युक्त अर्थ में परब्रह्म राम का निरूपण गोस्वामी जी ने अनेक स्थानों पर किया है तथा बार-बार यही बात कही है कि परब्रह्म का विष्णु रूप भक्तों के हितार्थ यथासमय अवतरित होकर अनेक प्रकार की लीलाएँ करता है।

राम जिस प्रकार जगत की चेतना के मूल स्रोत होने के कारण 'ज्ञान-स्वरूप' हैं, उसी प्रकार माया के स्वामी होने के नाते 'गुण धाम' सगुण ब्रह्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी हैं। परम धाम को जाते हुए जटायु राम को 'निर्गुण' कहते हुए 'सगुण' एवं गुण प्रेरक कहते हैं—

जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।

वस्तुतः निर्गुन और सगुण में कोई अन्तर नहीं है। वे सापेक्ष हैं। ठीक जल और हिम की तरह। यथा—

सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं पुनि पुरान बुध वेदा।
अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।
जो गुन रहित सगुन सोई कैसे। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसे।
(रामचरितमानस)

माया-सम्बन्धी विचार

ब्रह्म की आदि शक्ति को मूल प्रकृति अथवा माया कहा है। इसके दो रूप हैं—विद्या माया और अविद्या माया। विद्या माया जगत की सृष्टि करती है और अविद्या माया के कारण जीव मोह में ग्रस्त होता है—मैं और मेरा, तू और तेरा की भावना द्वारा 'संसार' की रचना करता है और उसके प्रति आसक्त होता है। यह 'माया' प्रभु प्रेरित है और समस्त ब्रह्मांड इसके वशवर्ती है—

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेउ भाई।
एक रचइ जग गुन बस जाकें। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें।
एक दारुण अतिसय दुःखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा।

निर्गुण राम (ब्रह्म) को उनकी लीला के कारण उनकी माया जब ढक लेती है तो उसकी संज्ञा 'मूल प्रकृति' होती है। राम (ब्रह्म) के क्षुभित होने पर इस 'मूल प्रकृति' से 'महत्तत्व' उत्पन्न होता है। फिर राम की ही प्रेरणा से 'महत्तत्व' से अहंकार प्रकट होता है। 'अहंकार' से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध नामक पाँच तन्मात्राएँ, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी नामक पंच स्थूल भूत, दस इन्द्रियाँ, उन दस इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता, बुद्धि, मन, प्राण आदि की सृष्टि होती है। तुलसी ने इस सिद्धान्त का निरूपण 'विनयपत्रिका' में स्पष्टतः किया है और वेदान्तियों के समान समस्त सृष्टि को त्वद्रूप (राम रूप या ब्रह्म रूप) कहा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकृति महत्तत्व सब्दादि गुन देवता व्योम मरुत अगिन अमलांबु उर्वी ।

× × ×

सर्व मेवात्र त्वद्रूप भूपालमनि व्यक्तमव्यक्त मतभेद विष्णो ।

(विनयपत्रिका, ५४)

वस्तुतः राम सृष्टि और स्रष्टा दोनों ही हैं । इस बात को गोस्वामीजी ने 'विनयपत्रिका' में कई पदों में कहा है—

सिद्धि साधक, साध्य वाच्य वाचक रूप मन्त्र जापक जाप्य सृष्टि स्रष्टा ।

(पद ५३)

जगत-सम्बन्धी विचार

हमारी इन्द्रियाँ और उन इन्द्रियों के विषय माया से उत्पन्न हैं । राम की प्रेरणा से माया पंच स्थूल भूतों को उत्पन्न करती है । इसी स्थूल भूत-समूह से सम्पूर्ण स्थावर-जंगम जगत् उत्पन्न होता है—

मम माया सम्भव परिवारा । जीव चराचर विविध प्रकारा ।
गो गोचर जहँ लगि मन जाई । सो सब माया जानहु भाई ।

× × ×

गगन समीर अनल जल धरनी । इन्ह कै नाथ सहज जड़ करनी ।
तव प्रेरित माया उपजाए । सृष्टि हेतु सब ग्रन्थन्हि गाए ।

(रामचरितमानस)

जगत् के सभी पदार्थ माया जनित होने के कारण मृषा हैं । केवल राम के सत्व से प्रतिभासित होकर वे सत्यवत् प्रतीत होते हैं—

जासु सत्यता तें जड़ माया । भास सत्य इव मोह सहाया ।

'विनयपत्रिका' में इस बात को अधिक कवियोचित भाषा द्वारा अभिव्यक्त किया गया है—

जग नभ वाटिका रही है फल फूलि रे ।
धुवाँ के से धौरहर देखि तू न भूलि रे । (विनय-पत्रिका ६६)

जो कुछ भी इन्द्रियों का विषय है, वह उसी प्रकार असत्य है जिस प्रकार नभ-वाटिका अथवा धुवाँ का धौरहर, वह उसी प्रकार मिथ्या है जिस प्रकार 'रात्रि का स्वप्न' अथवा मृगवारि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव-सम्बन्धी विचार

जीव ईश्वर का अंश है और अविनाशी है। वह सहज सुखराशि एवं चेतन है। वह माया के वशीभूत होकर बन्धन में पड़ जाता है, और संसार के विषयों में लिप्त हो जाता है—

ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।
सो माया बस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं।
जड़ चेतनहिं ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई।
तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी।

इसी कारण कहते हैं कि माया, ईश्वर तथा अपने यथार्थ रूप का जिसे ज्ञान नहीं रहता, वह 'जीव' है—

माया ईस न आपु कहुँ जान कहिअ सो जीव।

(रामचरितमानस)

जीव वस्तुतः नित्य है, वह पंच भौतिक शरीर से भिन्न है। बालि के शव को देखकर विलाप करती हुई तारा को समझाते हुए राम कहते हैं कि—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम सरीरा।
प्रगट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा।

ईश्वर और जीव में भेद केवल मायाजनित है, दोनों में अन्तर ज्ञान-अज्ञान का है। परमात्मा मायापति है और जीव माया द्वारा अभिभूत रहता है—

हौं जड़ जीव ईस रघुराया। तुम मायापति हौं बस माया।

(विनयपत्रिका)

यदि जीव को एक रस ज्ञान की प्राप्ति हो जाए, तब ईश्वर और जीव में भेद कैसा ?

ग्यान अखंड एक सीतावर। माया बस्य जीव सचराचर।
जौं सबके रह ग्यान एक रस। ईस्वर जीवहिं भेद कहहु कस।

(रामचरितमानस)

राम की माया के बन्धन में पड़कर जीव काल, कर्म और गुणों में लिप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो जाता है और भव-चक्र में पड़ जाता है, इन कर्मों के अनुरूप ही उसकी गतियाँ होती हैं। अस्तु।

जीव के उद्धार का उपाय राम-पद प्रेम अथवा अविचल हरि-भक्ति

आत्म रूप की प्राप्ति होने पर, जीव और ब्रह्म के अभेद का ज्ञान होने पर भ्रम और तज्जनित भव (संसृति) दोनों नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्म का ज्ञान होने पर जीव स्वतः ब्रह्म हो जाता है—

जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।

इस भ्रम का नाश संसार और उससे उत्पन्न संस्कारों का परित्याग किए बिना नहीं हो सकता है। यह सब कुछ भगवत्कृपा द्वारा ही सम्भव है—

हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी।
× × ....
बहु उपाय संसार तरन कहँ विमल गिरा श्रुति गावै।
तुलसिदास मैं मोर गए बिनु जिय सुख कबहुँ न पावै।

(विनयपत्रिका)

अथवा— सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।
तथा— यह गुन साधन तें नहिं होई।
तुम्हरिहि कृपा पाउ कोइ कोई। (रामचरितमानस)

'द्वैत बुद्धि' के कारण ही ये समस्त विकार हैं। इसका निराकरण राम-भक्ति द्वारा ही सम्भव है। राम भक्ति के समाश्रय द्वारा 'संशय' का अन्त हो जाता है। भक्ति स्वतः साध्य है। ज्ञान-विज्ञान उसके अधीन हैं। वह स्वतन्त्र एवं निरपेक्ष है—

सो सुतन्त्र अवलम्ब न आना। तेहि अधीन ग्यान बिग्याना।
× × ×
सब कर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा।
× × ×
जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।

(रामचरितमानस)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान, विज्ञान, मोक्ष का निरादर करके कागभुशुण्डि प्रभु से भक्ति की ही याचना करते हैं, क्योंकि—

भगत कल्पतरु प्रनतहित कृपा सिन्धु सुखधाम।
सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम।

क्योंकि—

राम भगति मन उर बस जाके। दुःख लवलेस न सपनेहुँ ताके।

(रामचरितमानस)

निष्कर्ष—गोस्वामी तुलसीदास के आध्यात्मिक विचार प्रायः 'अध्यात्म रामायण' पर आधारित हैं। गोस्वामीजी ने स्वयं भी कोई नवीन बात कहने का दावा नहीं किया है, जो कुछ कहा है वह श्रुतिसम्मत ही कहा है। उनकी मौलिकता उनके उपयुक्त विषय के संग्रह और अनुपयुक्त विषय के त्याग में है। नीर-क्षीर-विवेक द्वारा संग्रहीत इन विचारों को हम यदि 'तुलसी-मत' कह दें तो यह सर्वथा उचित ही होगा।

'अध्यात्म रामायण' में प्रतिपादित सिद्धान्तों और 'तुलसी-मत' के सिद्धान्तों में जो कहीं-कहीं अन्तर दिखाई देता है, उसके मूल में अथवा संग्रह-त्याग की वृत्ति के मूल में—कवि की उत्कट राम भक्ति है। तुलसी ने राम-भक्ति के प्रकाश में आध्यात्मिक विचारों को अभिव्यक्त किया है। इसी कारण उनका स्वरूप इतना मौलिक एवं पवित्र बन गया है।

प्रश्न ३६—कुछ आलोचकों के मतानुसार गोस्वामी तुलसीदास विशिष्टाद्वैतवादी हैं तथा अन्य आलोचकों के अनुसार वह अद्वैत मतावलम्बी हैं। दोनों वर्गों के विद्वानों के मतों की समीक्षा कीजिए और इस सम्बन्ध में अपना मत स्पष्टतः निर्धारित कीजिए।

अथवा

प्रश्न ३७—"परमार्थ दृष्टि से—शुद्ध ज्ञान की दृष्टि से—तो अद्वैत मत गोस्वामीजी को मान्य है, पर भक्ति के व्यावहारिक सिद्धान्त के अनुसार भेद करके चलना वे अच्छा समझते हैं।" आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन को पल्लवित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते हुए गोस्वामी तुलसीदास की दार्शनिकता पर प्रकाश डालिए।

अथवा

प्रश्न ३८—व्यावहारिक रूप से विविध दार्शनिक मतों का समन्वय तुलसी की विशेषता भले ही हो, पर सिद्धान्ततः वे शंकराचार्य के अद्वैतवाद के अनुयायी थे।" इसके पक्ष या विपक्ष में अपना मत लिखिये।

अथवा

प्रश्न ३९—तुलसीदास के किसी विशेष दार्शनिक सम्प्रदाय का अनुयायी ठहराने का प्रयत्न दुराग्रह मात्र है।

उत्तर—गोस्वामी तुलसीदास भक्त थे दार्शनिक नहीं—गोस्वामीजी ने कम से कम १४ काव्य ग्रन्थों की रचना की। प्रत्येक में उन्होंने 'रामचरित' का गुणगान किया। उनका सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय ग्रन्थ 'रामचरित-मानस' है। उसके अन्तर्गत उन्होंने "निर्गुण ब्रह्म सगुण वपु धारी" क्योंकर और क्यों होता है, इस प्रश्न का भरपूर समाधान किया है और समस्त ज्ञान, विराग, साधन, साधना का फल 'हरि-भक्ति' बताया है।

उनका अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ 'विनय-पत्रिका' है। उसके अन्तर्गत भी उन्होंने समस्त साधनों का साध्य राम-भक्ति या राम कृपा माना है। वह जप, तप, जोग, ज्ञान सबके महत्व को स्वीकार करते हैं, परन्तु जीवन का परम फल राम की भक्ति ही मानते हैं।

'रामचरित-मानस' में उन्होंने 'ज्ञान' को साधन की दृष्टि से दुरूह बताया है और 'ज्ञान पंथ को कृपाण की धार' कहते हुए कहा है कि इस मार्ग मेंपतन की आशंका प्रत्येक क्षण और पग-पग पर रहती है—"परत खगेस होत नहि वारा।" 'विनय-पत्रिका' में तो उन्होंने स्पष्ट ही कह दिया है कि दार्शनिक-विवेचन के परे होकर ही आत्म-दर्शन सम्भव होता है—

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ माने।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहचानै।

वस्तुस्थिति यह है कि तुलसी ने 'दर्शन' का अथवा दार्शनिक विचारों का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उतना ही उपयोग किया है जितना उनकी श्रुतिसम्मत और विरति-विवेक युक्त हरि-भक्ति के निरूपण के लिए आवश्यक था।

तुलसीदासजी के दार्शनिक चिन्तन के आधार ग्रन्थ

तुलसीदासजी के केवल दो ही ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन मिलता है। एक 'रामचरित-मानस' और दूसरा 'विनय-पत्रिका'। दोनों ही ग्रन्थों में स्तुति, आत्मबोध और आत्मनिवेदन सम्बन्धी पर्याप्त अंश हैं। अतः दोनों ही ग्रन्थों में दार्शनिक सिद्धान्तों का समावेश साधन रूप में—गौण रूप में ही—समाविष्ट है। ऐसा कहीं नहीं प्रतीत होता है कि तुलसीदासजी किसी विशेष पद्धति के दार्शनिक-चिन्तन अथवा दार्शनिक सिद्धान्त का प्रतिपादन कर रहे हैं। 'विनय-पत्रिका' के कुछ पदों में दार्शनिक दृष्टिकोण कुछ मुखर हो उठा है। कुछ विद्वान इन पदों में तुलसी के 'दर्शन-ज्ञान' को लक्ष्य करके 'तुलसी-दर्शन' के सूत्र स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। हमारे विचार से इस प्रकार दार्शनिक-चिन्तन स्वतन्त्र रूप में तुलसी को कदापि अभीष्ट नहीं था। इसे वैष्णव भक्ति की सातवीं भूमिका 'विचारणा' के अन्तर्गत समझना चाहिए।

तुलसीदास की दार्शनिक मान्यताओं के सम्बन्ध में मत-वैभिन्नय

गोस्वामी तुलसीदासजी के समय में चार दार्शनिक सिद्धान्त प्रचलित थे—अद्वैतवाद, विशिष्टताद्वैत, शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद तथा द्वैतवाद। गोस्वामीजी ने अपनी श्रुतिसम्मत एवं 'संजुत विरति-विवेक' हरि-भक्ति के निरूपण में इन चारों सिद्धान्तों का उपयोग किया है और उनके कथनों में हमें इन सभी सिद्धान्तों का प्रभाव परिलक्षित होता है। फलतः इनका दार्शनिक मत विद्वानों के मतभेद का विषय बन गया है। प्रत्येक मतावलम्बी इनके कथनों में अपने मत का समर्थन पाकर इन्हें अपनी ओर खींचता है। अस्तु।

कुछ विद्वान इन्हें अद्वैत मतावलम्बी मानते हैं

गोस्वामीजी ने कई स्थानों पर जगत को माया और मिथ्या बताया है। उनका कहना है कि जीव जब तक इस मायामय संसार से विरत नहीं होता है, तब तक उसे प्रभु की कृपा प्राप्त नहीं होती है। इस आधार पर कई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्वान इनके ऊपर शंकराचार्य के मायावाद का प्रभाव देखते हैं और निश्चयपूर्वक इन्हें अद्वैतमतावलम्वी कहते हैं। इस वर्ग के विद्वानों में महामहोपाध्याय पं० गिरिधर शर्मा, चतुर्वेदी, श्री नगेन्द्र वसु, पं० विजयानन्द त्रिपाठी प्रमुख हैं। ये विद्वान वल पूर्वक गोस्वामीजी को अद्वैतवादी घोषित करते हैं। यथा—"दावे के साथ कहा जा सकता है कि शांकर अद्वैत के विरुद्ध पड़ने वाले साम्प्रदायिक विचार रामायण में हैं ही नहीं।" (तृतीय खण्ड, तुलसी ग्रन्थावली, म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी)।

श्री नगेन्द्र वसु भी इसी उत्साह के साथ इन्हें अद्वैत मतावलम्वी घोषित करते हैं,—"रामायण में कई जगह शंकराचार्य का मत ग्रहण किया गया है, शंकराचार्य के व्रह्म को इन्होंने राम के नाम से प्रसिद्ध किया है।"

(भाग ९, विश्वकोष)

पं० विजयानन्द त्रिपाठी ने 'गोस्वामी तुलसीदास के दार्शनिक तत्व' का विवेचन करते हुए इन्हें विशुद्ध अद्वैतवादी माना है, "गोस्वामीजी का दार्शनिक विचार विशुद्ध अद्वैतवाद ही है।"

डा० श्यामसुन्दर और डा० पीताम्वरदत्त वड़थ्वाल ने इस सम्वन्ध में अपेक्षाकृत अधिक सावधानी वरती है। उनका कहना है कि, "गोस्वामीजी का दर्शन अद्वैत से मिलता है और उससे कई वातों में भेद भी रखता है।"

गोस्वामी तुलसीवास को अद्वैत मतावलम्वी सिद्ध करने के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण वक्तव्य महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का है। महामहोपाध्याय शर्माजी ने 'रामचरित-मानस' को आधार मानते हुए विवेचन किया है। उनका कहना है कि, "आरम्भ में मंगलाचरण में एक यह भी श्लोक है—

यन्मायावशवर्ति िश्वमखिल व्रह्मादि देवासुरा—
यत्सत्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाऽहेर्भ्रमिः।

इस श्लोक में स्पष्ट ही शंकराचार्य के न केवल अद्वैतवाद का ही किन्तु मायावाद भी उल्लिखित हुआ है। जगत् मायाजनित असत्य है, वह व्रह्म की सत्ता से सत्तावान प्रतीत होता है। यही श.कर सिद्धान्त है। वैष्णव आचार्यों ने जगत् को मायिक एवं असत्य स्वीकार नहीं किया। × × मंगलाचरण के प्रकरण में—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जड़ चेतन जग जीव जन, सकल राम मय जानि" आदि वाक्यों में × × राम के अतिरिक्त और कोई वस्तु ही न मानना अद्वैतवाद ही की पराकाष्ठा है।"

शर्माजी ने यह भी दिखाया कि गोस्वामीजी ने ब्रह्म को शुद्ध ज्ञान का विषय नहीं बताया है, वह सदा माया सहित ही उपलब्ध होता है। इस प्रसंग के निष्कर्ष रूप वह लिखते हैं कि 'अतः अंत में अनिर्वचनीयवाद सिद्ध हो जाता है।

गोस्वामीजी ने एक स्थान पर नाम और रूप को ईश्वर की दो उपाधियाँ कहा है—

"नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सु सामुझि साधी।"

इसको लक्ष्य करते हुए इस मत के समर्थक विद्वानों का कथन है कि वेदान्त दर्शन के समर्थन का इससे अधिक प्रमाण और क्या चाहिए? वेदान्त-दर्शन के अनुसार प्रत्येक वस्तु में पाँच भाव प्रतीत होते हैं—सत्ता, चेतना, आनन्द, नाम और रूप। इनमें सत्ता, चेतना और आनंद ब्रह्म के रूप हैं और नाम एवं रूप, ये दोनों मायिक हैं। संसार में जिसे हम वस्तुओं की उत्पत्ति और उनका विनाश कहते हैं। वह यथार्थ विचार से नाम और रूप की ही उत्पत्ति और विनाश है। इस प्रकार गोस्वामीजी शंकराचार्य के सारभूत सिद्धांत उपाधिवाद को भी स्वीकार करते हैं।

महामहोपाध्यायजी ने शांकर अद्वैत की अनेक बारीकियों का उल्लेख किया है और उन सबको तुलसी के 'मानस' में खोजने का प्रयास किया है। इनका निम्नलिखित कथन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, "शांकर सिद्धांत के अनुयायी वेदान्ती ब्रह्म के दो स्वरूप मानते हैं—शुद्ध और माया विशिष्ट। शुद्ध को ही निर्गुण निर्विकार निष्क्रिय कहते हैं, मायाविशिष्ट सर्वगुणाधार, सर्वशक्तिमान, कहा जाता है। × × गोस्वामीजी ने बड़ी मनोज्ञ रीति पर इसी तत्त्व का विस्तार किया है—

अगुन सगुन दोऊ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।
एक दारुगत देखिय एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू।

× × × ये सब विचार शांकर सिद्धान्त में ही उत्पन्न हो सकते हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्य मतों में इन विचारों की कोई उपपत्ति नहीं।" × × हम यहाँ इतना निवेदन कर देना आवश्यक समझते हैं कि 'विनय-पत्रिका' के अन्तर्गत अद्वैत-मत की छाप अधिक स्पष्ट है। इसमें संसार को धुएँ का वादर, आकाश की वाटिका, तैल में पड़ने वाले चन्द्र विम्ब आदि के समान कई पदों में वताया गया है।

कुछ विद्वान गोस्वामीजी को विशिष्टाद्वैत मतावलम्बी मानते हैं—

गोस्वामीजी को विशिष्टाद्वैतवादी मानने वालों में डा० रामकुमार वर्मा और भक्त जयरामदास जी मुख्य हैं। डा० रामकुमार वर्मा ने हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास में स्पष्ट लिखा है कि "तुलसीदास दार्शनिक सिद्धान्तों में विशिष्टाद्वैतवादी थे। इस मत की मान्यता का कारण गोस्वामी जी के इस प्रकार के कथन हैं—

सीय राम मय सब जग जानी। करहूँ प्रनाम जोरि जुगपानी।

तथा—

उद्भव स्थिति संहार कारिणीं क्लेश हारिणीम्।
सर्वं श्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥

डा० वर्मा ने 'विनय पत्रिका' के पद 'केशव कहि न जाइ का कहिए' को लक्ष्य करते हुए लिखा है कि तुलसी शंकर अद्वैत के प्रतिपादक होते हुए भी उसे भ्रम मानते थे।" हमारे विचार से डा० वर्मा का उक्त कथन शिथिल है। यह उक्ति विशिष्टाद्वैत पर भी चरितार्थ होनी चाहिए।

तुलसी के दार्शनिकवाद को विवाद का विषय वताते हुए डा० वर्मा ने लिखा है कि "तुलसी के दर्शन—सम्बन्धी अवतरणों को देखने से ज्ञात होता है कि उनके राम आदि ब्रह्म हैं। वे अपने ब्रह्म को अद्वैतवाद के शब्दों में तो व्यक्त करते हैं, पर उसे विशिष्टाद्वैत के गुण से युक्त कर देते हैं—

एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानन्द परधामा।
सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी।

अद्वैतवाद समर्पित तुलसी का ब्रह्म इस प्रकार है—

गिरा अरथ जल वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा— निज निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहम्।
चिदाकाश माकाश वासं भजेऽहम्।

डा० वर्मा यह तो स्वीकार करते हैं कि तुलसी के राम अद्वैतवादी ब्रह्म थे, परन्तु साथ-साथ वह यह भी कहते हैं कि इस ब्रह्म के जन्म का कारण बताते समय तुलसीदास अद्वैतवाद के भीतर विशिष्टाद्वैत की सृष्टि कर देते हैं। उनका कहना है कि महामहोपाध्याय गिरिधर शर्मा के विवेचन द्वारा यह कहीं प्रमाणित नहीं होता है कि तुलसी विशिष्टाद्वैतवादी नहीं थे। इसके आगे डा० वर्मा लिखते हैं कि "विशिष्टाद्वैत के अनुसार ईश्वर का स्वरूप पाँच प्रकार का होता है—पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चावतार तुलसीदास ने अपने ब्रह्म राम को इन्हीं पाँच रूपों में चित्रित किया है।" उक्त पाँचों स्वरूपों से सम्बन्धित उद्धरण प्रस्तुत करने के पश्चात् डा० वर्मा ने यह महत्त्वपूर्ण कथन किया है कि, "लोकाचार्य ने अपने 'तत्व-त्रय में भगवान की देह को रूप लिखा है, वही तुलसीदास ने राम के व्यक्तित्व में निरूपित किया है। अतः तुलसीदास दार्शनिक सिद्धान्तों में विशिष्टाद्वैतवादी थे।"

कुछ विद्वान इन्हें अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैत का समन्वयकारी मानते हैं—

गोस्वामीजी ने सीता को विद्यामाया अथवा मूल प्रकृति के रूप में वर्णित किया है और साथ ही राम को सीता का पति एवं विधिहर शंभु नचावन हारे भी कह दिया। उन्होंने जग को 'राममय' भी कहा और 'सीयराममय' भी कहा। इन कथनों में कुछ विद्वान तुलसी की समन्वयकारी प्रवृत्ति देखते हैं और यह मत निर्धारित करते हैं कि परमार्थ दृष्टि से, शुद्ध ज्ञान की दृष्टि से तो तुलसी को अद्वैत मत मान्य था परन्तु भक्ति के व्यावहारिक सिद्धान्त के अनुसार भेद करके चलना वह उपयुक्त समझते थे। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल और डा० बल्देव मिश्र ही ने इसी मान्यता को स्थापित किया है।

कुछ विद्वान तुलसी को द्वैतमतावलम्बी मानते हैं—

तुलसी को द्वैत मतावलम्बी मानने वाले विद्वानों में पं० केशवप्रसाद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिश्र मुख्य हैं। इनका कहना है कि "ये तो गोस्वामी जी की समन्वय बुद्धि सभी दार्शनिक मतों को × यथास्थान महत्व देती है, × पर उनके प्रस्थान के अनुरोध तथा ग्रन्थ के उपक्रम और उपसंहार के विचार से द्वैत सिद्धान्त और भक्ति पक्ष में ही इसका (दार्शनिक दृष्टिकोण का) पर्यवसान प्रतीत होता है।" द्वैतमत के पक्ष में एक बात पर्याप्त है। भक्ति-भावना के लिए भेद अनिवार्य है। सेवक-सेव्य भाव के अभाव में भक्ति हो ही नहीं सकती—सेवक सेव्य भाव विनु भव न तरिय उर-गारि। अतएव भक्ति के व्यवहार पक्ष में भेद-भावना आ ही जाती है। इसी कारण गोस्वामी जी परमार्थ दृष्टि से अद्वैतपक्ष का निरूपण करते हुए यह कह देते हैं कि भेद यद्यपि माया-कृत हैं—परमार्थतः सत्य नहीं हैं—पर इन्हें मिटाने के लिए ईश्वर को स्वामी मानकर भक्ति करनी पड़ेगी—

मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया।

कुछ विद्वान इन्हें शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद का अनुयायी मानते हैं—

गोस्वामी जी ने माया के दो भेद बताये हैं—विद्या माया और अविद्या माया। इसके बाद विद्या माया के द्वारा जगत की सृष्टि मानी है। इतना ही नहीं, उन्होंने जीवन और जगत के प्रति कर्तव्य-निर्वाह पर बल देते हुए सदाचार-सम्पादन को धर्म एवं हरि-भक्ति के समकक्ष ठहराया है। उनके इस प्रकार के कथनों को कुछ विद्वान महाप्रभु वल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैत ब्रह्मवाद द्वारा प्रभावित देखते हैं—ब्रह्म सत्यं, जगत् सत्यं, मिथ्या संसार केवलम्।" लंकाकांड में धर्मरथ का निरूपण करते हुए श्रीराम भक्त विभीषण से कहते हैं—महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो वीर। यह संसार क्या है? 'मैं और मोर' की भावना के अतिरिक्त और कुछ नहीं। यही महाप्रभु जी का मत है जिसके द्वारा उन्होंने शंकर के मायावाद से पीछा छुड़ाया था। इतना ही नहीं तुलसी भक्ति की प्राप्ति साधन-साध्य न मानकर प्रभु की कृपा, पर अवलम्बित मानते हैं।

'यह गुन साधन ते नहिं होई। तुम्हरिहि कृपा पाउ कोइ कोई।"

अथवा— सोइ जानइ जेहि देहु जनाई।"

ये कथन महाप्रभु जी द्वारा प्रवर्तित 'पुष्टिमार्ग' के सर्वथा अनुकूल हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मतवैभिन्नय की समीक्षा—तुलसीदास जी के दार्शनिक सिद्धान्त किस 'मतवाद' के अन्तर्गत यह विवाद का विषय है। विद्वानों ने अपनी मान्यता और विचार-सरणि के अनुरोध से उन्हें किसी न किसी विशेष दार्शनिक पद्धति का समर्थक ठहराने का प्रयत्न किया है। इतना सुनिश्चित है कि विवाद मुख्यतया अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैत के मध्य है। इन दोनों दर्शन पद्धतियों के अनेकानेक सिद्धान्त और साधन-सम्बन्धी बातें तुलसी की रचनाओं में मिलती हैं।

हमारे विचार से पारमार्थिक दृष्टि से प्रायः समस्त मत परब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करते हैं और घूम-फिर कर अद्वैत मत के समर्थक बन जाते हैं। शंकर के मायावाद अथवा विवर्तवाद से पीछा छुड़ाने के प्रयत्न में अनेक दार्शनिक सिद्धान्तों की सृष्टि हुई। अस्तु।

हमारे विचार से दार्शनिक दृष्टिकोण पर विचार करते समय पारमार्थिक सत्ता सम्बन्धी अथवा आध्यात्मिक विचारों पर ही दृष्टि रखनी चाहिये। व्यवहार-सम्बन्धी बातें 'दर्शन' के क्षेत्र में नहीं आती हैं। गोस्वामी जी द्वारा निरूपित आध्यात्मिक विचार संक्षेप में इस प्रकार हैं—

ईश्वर और जीव का भेद अज्ञान जनित है—जीव 'ईश्वर का अंश और अविनाशी' है। दोनों में अन्तर ज्ञान-अज्ञान का है—

ईस्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥
सो माया बस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं॥

तथा— **ज्ञान अखण्ड एक सीतावर। माया बस्य जीव सचराचर॥**
जौं सबकें रह ज्ञान एक रस। ईश्वर जीवहिं भेद कहहु कस॥

समस्त दुःख का कारण द्वैत बुद्धि है। इस संशय से छुटकारा राम की कृपा अथवा राम के प्रकाश द्वारा ही मिल सकता है।

'विनय-पत्रिका' में ये विचार और भी अधिक स्पष्टतः अभिव्यक्त हैं। गोस्वामी जी समस्त सृष्टि को त्वद्रूप (राम रूप) कहते हैं। (पद ५४)। और कहते हैं कि भगवान और भक्त का सम्बन्ध ब्रह्म और जीव का सम्बन्ध है। (पद ६) जब से जीव ब्रह्म से पृथक् हुआ, तभी से दुखी है और चक्कर लगा रहा है (पद ८७, ९१)। इस दुःख का मुख्य कारक है आत्म विस्मृति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद १८६)। संसार मृषा है (पद १२१) तथा संसृति अविद्यमान एवं भ्रम जन्य है (पद १२०)। (समस्त दुःख एवं शोक का कारण हमारी "द्वैतबुद्धि" है। इसका निवारण आन्तरिक ज्ञान के द्वारा ही सम्भव है—"बाहर कोटि उपाय करिय अभ्यंतर ग्रन्थि न छूटै।" (पद ११५)। इस अज्ञान-जन्य मलिनता को दूर करने का एक ही उपाय है—राम की भक्ति—रघुपति-भक्ति वारि-छालित चित बिनु प्रयास ही सूझै। (पद १२६)। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि गोस्वामी जी का साध्व भक्ति थी, ज्ञान-चर्चा अथवा दार्शनिक-विवेचना नहीं। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि वह पारमार्थिक दृष्टि से केवल राम की सत्ता स्वीकार करते थे, अद्वैत मत उन्हें मान्य था। जगत् को मृषा और प्रकृति को प्रभु प्रेरित नहिं निज वल ताके मानते थे।

गोस्वामी जी का निम्नलिखित प्रसिद्ध पद विद्वानों के विवाद का विषय है—

केशव कहि न जाइ का कहिए।

× × ×

कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥ (पद १११)

हमारे विचार से इस पद का मन्तव्य स्पष्ट है। जब तक आत्म भाव है तब तक विश्लेषण-विवेचन है। इस स्थिति से ऊपर उठकर ही, संश्लेषण परक चेतना की अनुभूति होने पर ही आत्म-साक्षात्कार सम्भव है। अतः गोस्वामीजी दार्शनिक विवेचन को भी द्वैतभाव सदृश भ्रम ही मानते थे। पद ११६ के साथ मिलाकर पढ़ने से इसमें निहित तुलसी का मन्तव्य एकदम स्पष्ट हो जाता है—

ग्यान भक्ति साधन अनेक, सब सत्य झूठ कछु नाहीं।
तुलसीदास हरिकृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन माहीं।

निष्कर्ष—गोस्वामी तुलसीदास भक्त थे। उनकी काशी में भक्ति के गूढ़ रहस्यों को ढूंढ़ना ही अधिक युक्तियुक्त है, ज्ञान-सम्बन्धी विवेचन विशेष लाभकारी नहीं हो सकता है। अपनी श्रुति सम्मत एवं विरति-विवेक संयुत हरि-भक्ति के प्रतिपादन के लिए उन्होंने आवश्यकतानुसार दार्शनिक सिद्धान्तों का सहारा अवश्य लिया है, परन्तु अपने आपको किसी मतवाद विशेष की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सीमाओं में आवद्ध नहीं किया । प्रस्थान भेदाद्दर्शन भेद के अनुसार गोस्वामीजी की दार्शनिक विचार-पद्धति स्वतन्त्र है। यदि नाम विशेष देना आवश्यक ही हो, तो उनका दर्शन 'भक्ति-दर्शन' है।

पारमार्थिक दृष्टि से गोस्वामी जी को अद्वैत सिद्धान्त मान्य था परन्तु जीव की सीमाओं के कारण उन्होंने भक्ति-मार्ग ही के अवलम्बन का प्रतिपादन किया। भक्ति की प्रतिष्ठा करते समय दार्शनिक विवेचन, का एक विशेष कारण है। वैष्णव भक्ति की ७ वीं भूमिका विचारणा का लक्षण ही यह है कि दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन करते हुए उनकी दुस्साध्यता दिखाकर मन को भक्ति की ओर प्रवृत्त किया जाए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(११)

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य का कला पक्ष

[भाषा, शैली, अलंकार विधान तथा छन्द-योजना]

प्रश्न ४०—भाषा पर जैसा अधिकार गोस्वामीजी का था, वैसा और किसी हिन्दी कवि का नहीं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के उक्त कथन के औचित्य पर प्रकाश डालिए।

अथवा

प्रश्न ४१—शब्द-सामर्थ्य की दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास के काव्य-सौष्ठव का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर—तुलसी के समय में काव्य-भाषा के दो प्रचलित रूप थे और दोनों ही अव्यवस्थित थे। तुलसी ने दोनों में साधिकार रचना की।

गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व प्रायः निर्गुण भक्ति मार्ग के सन्त कवि कविता करते आ रहे थे। इन कवियों की भाषा पर विचार करने से विदित होता है कि उनके काव्य की भाषा का स्वरूप व्यवस्थित नहीं हो पाया था। कबीर आदि सन्त कवियों के काव्य की भाषा पर विभिन्न प्रकार के प्रभाव थे—वह एक प्रकार से भाषाओं की खिचड़ी थी। उसके इस मिश्रित एवं अनिश्चित रूप के कारण ही उसका नाम सधुक्कड़ी भाषा पड़ गया था। दूसरी ओर सूफी कवि अवधी भाषा में रचना कर रहे थे। इनमें मलिक मोहम्मद की भाषा सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इनकी भाषा भी पूर्णतया परिष्कृत नहीं थी। उनकी भाषा लोक भाषा के अधिक निकट थी। उसमें ठेठ अवधी का मिठास अवश्य था, परन्तु परवर्ती काल में तुलसी की रचनाओं में उपलब्ध होने वाले अवधी के परिनिष्ठित रूप का उसमें अभाव था। तुलसी के कुछ समय पूर्व सूरदासजी ने सर्वप्रथम ब्रजभाषा में साहित्यिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचना प्रस्तुत की थी। सारांश यह है कि तुलसी के पूर्व किसी भी काव्य-भाषा के परिनिष्ठित रूप का निर्माण नहीं हो पाया था। इस अभाव की पूर्ति गोस्वामी तुलसीदासजी ने की। उन्होंने काव्य भाषा के उक्त दोनों रूपों में साधिकार रचनाएँ प्रस्तुत कीं। चलती हुई व्रजभाषा में उन्होंने 'कवितावली' की रचना की। साहित्यिक एवं संस्कृत निष्ठ परिनिष्ठित व्रजभाषा में उन्होंने विनयपत्रिका, गीतावली एवं 'श्रीकृष्ण गीतावली' की रचना की। 'रामचरित-मानस' की भाषा में पूर्वी अवधी और पश्चिमी अवधी का मेल है। पूर्वी अवधी में रचित उनकी रचनाएँ हैं—पार्वती मंगल, जानकी मंगल और रामलला नहछू।

विद्वानों ने तुलसी के इस भाषाधिकार को नतमस्तक होकर स्वीकार किया है। और इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। यथा—

"भाषा पर ऐसा विस्तृत अधिकार और किस कवि का था ? न सूर अवधी लिख सकते थे, न जायसी व्रज"। (आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल)। इसी प्रकार श्यामसुन्दरदास ने इनके भाषाधिकार को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, "इन दोनों भाषाओं को संस्कृत की परिपक्व चाशनी की पाग देकर उन्होंने उन्हें अद्भुत मिठास प्रदान की। इन दोनों भाषाओं पर उनकी रचनाओं में इतना अधिकार दिखाई देता है जितना स्वयं सूरदासजी का व्रजभाषा पर और जायसी का अवधी पर न था।"

शब्द भण्डार—तुलसी की भाषा के सम्बन्ध में यह उक्ति अत्यन्त प्रसिद्ध है—

तुलसी गंग दुवौ भये सुकविन के सरदार।
जिनके काव्यनु में मिलै भाषा विविध प्रकार।

स्पष्ट है कि तुलसी की भाषा में विविध भाषाओं के शब्द मिलते हैं। वस्तु स्थिति भी यही है। शब्दों के सम्बन्ध में तुलसीदासजी की नीति अत्यन्त उदार थी। वह अपनी रचना को जनता की वस्तु बनाना चाहते थे। उनकी कदाचित् यह मान्यता थी कि, "संस्कीरत जलकूप है भाषा बहता नीर।" उनका काव्यादर्श भी यही था—

सरल कबित कीरति बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयरु बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोस्वामीजी ने विभिन्न प्रान्तीय भाषाओं के तथा विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग बड़े ही कौशल के साथ किया है। संस्कृत के तत्सम एवं तद्‌भव शब्दों की नींव पर तो उसके साहित्यिक स्वरूप का निर्माण ही हुआ था।

'विनय पत्रिका' में भोजपुरी भाषा के पर्याप्त शब्द मिलते हैं। एक उदाहरण देखिए—

हमहिं दिहल करि कुटिल करमचंद मंद विनु डोलारे।

बुन्देली के क्रियापद तो प्रायः मिल जाते हैं—मानिवी, जानवी, द्याइवी, कारिबी—आदि—"ए दारिका परिचारिका करि पालिबी करुनामई"। इन शब्दों का प्रयोग तुलसी के प्रायः समस्त ग्रन्थों में पाया जाता है।

तुलसीदासजी ने अरवी और फारसी के शब्दों का प्रयोग खुलकर सभी ग्रन्थों में किया। इतना ही नहीं, उन्होंने आवश्यकतानुसार इनको अवधी अथवा व्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप भी वना लिया है। यथा—

गरीव (ग़रीव), नेवाज (नेवाज़), खलक आदि। जैसे—

(i) कियो कलिकाल कुलि *खलक* खलक ही।

(ii) *साहिव* सुजान जिन स्वान हू को पच्छ कियो
राम बोला नाम, हौं *गुलाम* राम *साहि* को।

(iii) सत्य कहहुँ लिखि *कागद* (कागज़) कोरे।

उच्चारण की सरलता के विचार से गोस्वामीजी ने संस्कृत के तत्सम शब्दों को सरल बनाकर तद्‌भव कर दिया है। जैसे—रिसी (ऋषि), ग्यान (ज्ञान)।

मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग—गोस्वीमीजी ने अपनी भाषा में यथास्थान मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया है। इनके कारण इनकी भाषा-शैली सजीव वन गई है और उसमें जो प्रवाह आ गया, वह देखते ही वनता है। ये प्रयोग पग-पग पर पाए जाते हैं। यथा—

(क) मुहावरों का प्रयोग—

(i) *वात चले वात को* नमानिबो बिलग, बलि।

(ii) *कोढ़ में की खाज* सो सनीचरी है मीन की।

(iii) भली भाँति, भले पैंत, भले *पाँसे परिगे*।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(iv) आँखिन में सखि राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनबास दियो है।
(v) बिपति बटावन बंधु बाहु बिन करौं भरोसो काको ?

(ख) लोकोक्तियों का प्रयोग—

(i) माँगि कै खैबौ मसीद को सोइबो, लेबै को एकु न देबै को दोऊ।
(ii) अंजन कहा आंख जिहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं।
(iii) छोटे बदन कहउँ बड़ बाता।
(iv) मीठो अरु कठवति भरो रौताई औ खेम।
(v) तुलसिदास सावन के अंधहि ज्यों सूझत रंग हरयो।

शब्द-सामर्थ्य—गोस्वामीजी द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक शब्द पूर्ण रूप से भाव-व्यंजक होकर आया है। उन्होंने भरती का एक भी शब्द प्रयुक्त नहीं किया है। शब्दों में सर्वत्र शैथिल्य का अभाव है। प्रत्येक शब्द अपने अस्तित्व की सप्रयोजनता को प्रकट करता है। उनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता है भाषा की सफाई और वाक्य रचना की निर्दोषता जो हिन्दी के कवियों में वैसी प्राप्त नहीं होती है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में "कहीं-कहीं तो ऐसा है कि पद भर में यहाँ से वहाँ तक एक ही काव्य चला गया है, पर क्या मजाल कि अंत तक सर्वनाम में भी त्रुटि आने पावे। सर्वत्र परिष्कृत और सुव्यवस्थित भाषा मिलेगी। लिंग-भेद में तो उन्होंने एक-एक मात्रा का ध्यान रखा है।" उनकी गठी हुई भाषा का एक उदाहरण देखिए—

परुष वचन अति दुसह स्रुवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान सम सीतल मन, परगुन नहिं दोष गहौंगो।

इन दो पंक्तियों में उन्होंने कई बातें एक साथ कह दी हैं। उन्होंने न तो शब्दों की तोड़-मरोड़ की है और न लिंग-प्रयोग के समय मनमानी की है।

इनके द्वारा प्रयुक्त शब्द वस्तुतः अपना मन्तव्य स्वयं ही प्रकट करते चलते हैं। एक एक शब्द का प्रयोग इन्होंने बड़ी ही सावधानी के साथ किया है। भगवान के लिए प्रसंगानुसार यह सुजान, कृपालु, दयालु आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करने पर प्रत्येक शब्द का निजी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महत्त्व एवं व्यक्तित्व स्पष्ट हो जाते हैं। तुलसी के मतानुसार दुष्ट तो सत्संगति से सुधर सकता है, परन्तु मूर्ख नहीं। इसी कारण इन्होंने 'सठ सुधरहिं सत्संगति पाई' तथा 'मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलहिं विरंचि सम' जैसे वाक्य लिखे हैं। सामान्य कोटि के कवि सठ के स्थान पर मूर्ख का प्रयोग कर बैठते ! परन्तु मानव-प्रकृति के पारखी ने दो भिन्न शब्दों के प्रयोग द्वारा दो मनोवैज्ञानिक सत्यों का उद्घाटन कर दिया।

तुलसीदासजी ने शृंगार परक वर्णनों में कोमल कांत पदावली का जो प्रयोग किया है वह दृष्टव्य है—कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि।" इसी प्रकार भयानक रस के निर्वाह के समय इनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों की ध्वन्यात्मकता सर्वथा स्पृहणीय है—

जग भय मगन गगन भई बानी। लखन बाहु बल तेज बखानी।[1]

केवट के प्रसंग के अन्तर्गत 'मानुष' शब्द का प्रयोग कितना अर्थ—गाम्भीर्य से युक्त है—

चरणकमल-रज कहँ सब कहई। *मानुष* करन मूर कछु अहई।

बात भी ठीक है। सेवा-भाव द्वारा ही मनुष्य मनुष्यता का दावा पूरा करता है। फरिश्ता होना आसान है, इन्सान बनना मुश्किल है। वह भगवत्-कृपा द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार इनके द्वारा प्रयुक्त एक-एक शब्द की उपयुक्तता एवं उसकी अर्थ-गम्भीरता पर विचार किया जा सकता है। कर्त्ताओं ने ऐसा किया है अस्तु।

गोस्वामीजी की भाषा की विशेषताएँ—

गोस्वामी तुलसीदास की भाषा के सम्बन्ध में निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टव्य हैं

(i) गोस्वामीजी ने ब्रजभाषा और अवधी दोनों भाषाओं के दोनों रूपों लोकप्रिय एवं परिनिष्ठित में साधिकार रचना की।

(ii) गोस्वामीजी ने ब्रज और अवधी दोनों ही भाषाओं को साहित्यिक रूप प्रदान किया। दोनों भाषाओं के व्याकरण के नियमों का पूर्ण रूप से निर्वाह किया।

(iii) उनकी भाषा में कहीं भी शिथिलता नहीं दिखाई देती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(iv) गोस्वामीजी की भाषा प्रांजल एवं वाक्य-रचना सर्वथा निर्दोष है।

(v) शब्द प्रयोग के सम्बन्ध में उनकी नीति अत्यन्त उदार थी। उनकी भाषा में हमको अनेक देशी-विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग मिलता है। विशेषता यह है कि एक भी शब्द अनुपयुक्त अथवा निष्प्रयोजन नहीं है।

(vi) लोक-प्रचलित मुहावरों एवं लोकोक्तियों के प्रयोग के कारण गोस्वामीजी की भाषा अत्यन्त सजीव, प्रवाहपूर्ण एवं प्रभावशाली बन गई है।

(vii) गोस्वामीजी ने प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग किया है। रस की अनुकूलता के अतिरिक्त उन्होंने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि किस स्थान पर परनिष्ठित भाषा का प्रयोग किया जाए और किस स्थान पर 'ठेठ बोली' का प्रयोग किया जाए।

(viii) गोस्वामीजी की भाषा सर्वत्र भावों और विचारों की सफल अभिव्यक्ति में सर्वत्र सफल एवं समर्थ दिखाई देती है।

(ix) गुण के सहारे रस की अभिव्यक्ति करने में गोस्वामीजी पूर्णतः सफल हैं। इनकी भाषा की वर्ण-मैत्री देखते ही बनती है।

(x) गोस्वामीजी ने शब्दों के प्रयोग में नाद-सौन्दर्य का पूरा ध्यान रखा है। एक उदाहरण देखिए—

चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत बिहंग नचत कल मोरा।

यहां कवि ने प्रथम चरण में चिड़ियों के नाम गिनाएँ हैं और द्वितीय चरण में उनके बोलने का चित्र खींच दिया है। 'नचत कल मोरा' में च त और अन्त में र अक्षरों के उच्चारण में जीभ मोर के साथ स्वयं भी नाचने लगती है।

निष्कर्ष—भाषा पर जैसा अधिकार गोस्वामीजी का है, वैसा और किसी हिंदी कवि का नहीं। आचार्य शुक्ल का यह कथन सर्वथा उचित ही है।

प्रश्न ४२—अलंकार पंडित के रूप में तुलसी का मूल्यांकन कीजिए।

अथवा

प्रश्न ४३—"कवित्त विवेक एक नहिं मोरे" की यथार्थता का मूल्यांकन कीजिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तर—काव्य में अलंकारों का उपयोग—

काव्य-शोभा को अतिशयता प्रदान करने वाले अथवा बढ़ाने वाले धर्म को अलंकार कहते हैं। यथा—

काव्य शोभायाः कर्त्तारो धर्मा गुणाः।
तदतिशय हेतु वस्त्वलंकाराः। (काव्यालंकार)

अलंकार वस्तुतः शोभा के कारण अथवा उत्पादक होते हैं जिस प्रकार आभूषण शरीर का अलंकरण करके उसकी शोभा में वृद्धि करते हैं, उसी प्रकार विविध उक्ति रूप अलंकार भी काव्य की शोभा में वृद्धि करते हैं।

"वस्तु या व्यापार की भावना चटकीली करने और भाव को अधिक उत्कर्ष पर पहुँचाने के लिए कभी किसी वस्तु का आकार या गुण बहुत बढ़ाकर दिखाना पड़ता है, कभी उसके रूप रंग या गुण की भावना के उसी प्रकार के और रूप रंग मिलाकर तीव्र करने के लिए समान रूप और धर्मवाली और-और वस्तुओं को सामने लाकर रखना पड़ता है। कभी-कभी बात को भी घुमा-फिराकर कहना पड़ता है। उस प्रकार के विभिन्न विधान और कथन के ढंग अलंकार कहलाते हैं।"[1] सारांश यह है कि अलंकार काव्य-साधना के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। इनका प्रयोग भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप गुण और क्रिया को अधिक तीव्रता प्रदान करने के लिए किया जाता है। इस प्रकार साहित्यदर्पणकार द्वारा प्रस्तुत 'अलंकार' की परिभाषा सर्वथा उपयुक्त ठहरती है—'शोभा को बढ़ाने वाले रस भाव आदि के उपकारक जो शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं, वे बाजूबंद आदि (गहनों) की तरह अलंकार कहलाते हैं।" कहने का तात्पर्य यह है कि सौन्दर्य की भावना में वृद्धि करना अलंकारों का मुख्य प्रयोजन रहता है।

अलंकारों के भेद एवं अलंकार-विधान के प्रकार

काव्य के दो पक्ष होते हैं—भाव पक्ष और कलापक्ष। अलंकार दोनों पक्षों के उत्कर्ष में सहायक होते हैं। भाव या अर्थ को उत्कर्ष प्रदान करने वाले अलंकार 'अर्थालंकार' कहलाते हैं और कलापक्ष को अथवा काव्य के

१. आचार्य पं० रामचंद्र शुक्ल—कविता क्या है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाह्य पक्ष के सौन्दर्य में वृद्धि करने वाले अलंकार शब्दालंकार कहलाते हैं। सामान्यतः अलंकारों के ये ही दो भेद माने जाते हैं। कहीं-कहीं शब्द और अर्थ दोनों में विशेषता आ जाती है। ऐसे स्थल पर एक तीसरा भेद "उभया-लंकार' माना जाता है। इस प्रकार अलंकारों के प्रायः दो वर्ग हो जाते हैं—

(i) अप्रस्तुत वस्तु योजना के रूप में प्रयुक्त अलंकार और (ii) वर्ण-विन्यास के रूप में प्रयुक्त अलंकार।

गोस्वामी तुलसीदास का अलंकार विधान—किसी कवि के अलंकार विधान पर विचार करते समय हमें यह देखना होता है कि कवि अलंकार विधान द्वारा उक्त उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुआ है। गोस्वामी तुलसीदास द्वारा की गई अलंकार योजना पर हम इसी दृष्टि से विचार करते हैं।

काव्य में सौन्दर्य की भावना में वृद्धि करने की दृष्टि से अलंकारों को चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—(i) भावों की उत्कर्ष व्यंजना में सहायक अलंकार (ii) रूप का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार, (iii) क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार और गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार।

गोस्वामीजी द्वारा की गई अलंकार-योजना पर हम इसी क्रम से विचार करते हैं।

(i) भावों की उत्कर्ष-व्यजना में सहायक अलंकार—इस वर्ग के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाले प्रमुख अलंकार ये हैं—रूपक, उपमा, विभावना, असंगति, पर्यायोक्ति, व्याज निंदा और निश्चयालंकार।

राम स्वर्ग जाते हुए जटायु से कहते हैं कि मेरे पिता से सीता-हरण का समाचार जाकर मत कहना। इसे सुनकर वह दुःखी होंगे।

इस छोटी-सी वात को कितना भावपूर्ण एवं प्रभावपूर्ण वना दिया है ?

सीता-हरन, तात जनि कहेउ पिता सन जाइ।
जो मैं राम तो कुल सहित कहहि दसानन आइ।

यहाँ पर्यायोक्ति अलंकार के माध्यम से राम की धीरता और सुशीलता की सुन्दर व्यंजना हुई है। राम सीता-हरण के समाचार द्वारा अपने पूज्य पिता को स्वर्ग में भी दुःखी नहीं करना चाहते। साथ ही वह अत्यन्त संकोच

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और शिष्टता के साथ अपनी धीरता और वीरता भी व्यक्त कर देते हैं। 'राम' एक बहुत ही सुन्दर अर्थांतर-संक्रमित पद है।

निम्नलिखित पंक्तियों में 'रूपक' अलंकार की सहायता से गोस्वामीजी दो भावों के द्वन्द्व का सुन्दर एवं सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं—

मन अगहुँड़ तनु पुलक सिथिल भयौ, नलिन-नयन भरि नीर।
गड़त गोड मनो सकुचि पंक महँ, कढ़त प्रेम-बल धीर।

संजीवन बूटी के पहुँचते ही लक्ष्मण की मूर्च्छा जाती रहती है और वह उठ बैठते हैं। राम की मानसिक व्यथा को व्यक्त करते हुए लक्ष्मण कहते हैं कि—

हृदय घाउ मेरे, पीर रघुबीरैं।
पाय संजीवन जागि कहत यौं प्रेम पुलकि बिसराय सरीरैं।

यहाँ 'असंगति' अलंकार के द्वारा राम के दुःख की अतिशयता एवं राम के प्रति लक्ष्मण का उत्कट अनुराग-दोनों की सुन्दर व्यंजना हुई है।

अंगद-रावण संवाद सम्बन्धी निम्नलिखित पंक्तियों में व्याजनिंदा अलंकार भाव की उत्कर्ष-व्यंजना में सहायक है—

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ-तहँ नाचहि परिहरि लाजा।
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करैं धरम निपनाई।

(ii) रूप का अनुभव तीव्र कराने में सहायक अलंकार—

रूप का अनुभव तीव्र कराने के लिए प्रायः सादृश्य मूलक अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। इस वर्ग के अन्तर्गत तुलसी द्वारा उपमा, उत्प्रेक्षा, भ्रम, उल्लेख रूपकातिशयोक्ति, निदर्शना, अतिशयोक्ति तथा परिकरांकुर अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

एक उदाहरण देखिए—

लता-भवन ते प्रकट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद-पटल बिलगाइ॥

यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है। मेघ-खण्ड के वीच से प्रकट होने वाले चन्द्रमा का मनोरम दृश्य प्रस्तुत दृश्य की मनोरमता के अनुभव को वढ़ाने वाला है। नेत्र शीतल करने का गुण भी राम-लक्ष्मण और चन्द्रमा दोनों में है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूपकातिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग करते समय कविजन प्रायः एक पहेली सी उपस्थित कर देते हैं। परन्तु गोस्वामीजी द्वारा प्रयुक्त रूपकातिशयोक्ति पहेली न बनकर रूप के उत्कर्ष-विधानों में सहायक होती है—

खंजन, सुक, कपोत, मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना।
कुंद कली दाड़िम दामिनी। सरद कमल ससि अहि भामिनी।
श्रीफल, कमल, कदलि, हरखाहीं। नेकु न संक सकुचि मन माहीं।

तुलसीदास के 'बरवै' रामायण में रूप के अनुभव की तीव्रता में सहायक होने वाले अलंकारों के उदाहरण भरे पड़े हैं—

सिय मुख सरद-कमल जिमि किमि कहि जाइ ?
निसि मलीन वह, निसदिन यह बिगसाइ। (व्यतिरेक)

(iii) क्रिया का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार

गोस्वामीजी की रचनाओं में सर्वाधिक प्रयोग इसी वर्ग के अलंकारों का मिलता है। इस वर्ग के अन्तर्गत प्रयुक्त अलंकार ये हैं—उत्प्रेक्षा, संदेह, रूपक, तुल्ययोगिता, ललित, रूपक, सांगरूपक और अप्रस्तुत प्रशंसा। क्रिया और गुण का अनुभव तीव्र कराने के लिए प्रस्तुत अप्रस्तुत वस्तु के बीच या तो अनुगामी कार्य होता है, या वस्तु प्रति वस्तु या उपचरित। निम्नलिखित उदाहरण देखिए—

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौ,
लंक लीलिबे कों काल रसना पसारी है।
कैधों व्योम-वीथिका भरे हैं भूरि धूम केतु,
बीर रस बीर तरवारि-सो उघारी है।
तुलसी सुरेश-चाप कैधों दामिनी-कलाप,
कैधों चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।

यहाँ उत्प्रेक्षा और संदेह अलंकारों का प्रयोग स्पष्ट है। यहाँ हनुमान की पूँछ की क्रिया का बोध कराया गया है। इसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत की स्थिति बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से व्यक्त करते है और धर्म भी वस्तु-प्रति वस्तु भावरूप है। इधर-उधर घूमती हुई जलती पूँछ तथा काल की जीभ और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तलवार में रूप सादृश्य (बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव) भी है तथा संहार करने और दाह करने में वस्तु-प्रति-वस्तु धर्म भी है।

नीचे की पंक्तियों में रूपक के प्रयोग में उपमान और उपमेय का एक ही धर्म बड़ी ही सुन्दर रीति से व्यक्त हुआ है—

नृपन केरि आस-निसि नासी। बचन नखत अवलीन प्रकासी।
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी-भूप-उलूक लुकाने।

इसी प्रकार निम्नलिखित उदाहरण में 'तुल्ययोगिता' के प्रयोग द्वारा क्रिया के अनुभव की तीव्रता का विधान भी देख लीजिए—

सब कर संसय और अग्यानू। मंद महीपन कर अभिमानू।
भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुर-मुनि बरन केरि कदराई।
सिय कर सोच जनक पछताना। रानिन कर दासन दुख दाना।
संभु चाप बड़ बोहित पाई। चढ़े जाइ सब संग बनाई।

(iv) गुण का प्रभाव तीव्र करने में सहायक अलंकार

इस श्रेणी के प्रमुख अलंकार हैं—व्यतिरेक, श्लेष, कूट, संदेह, भ्रान्ति, स्मरण, यमक, सांगरूपक और व्याघात।

संत-स्वभाव के वर्णन में व्यतिरेक अलंकार का यह प्रयोग देखते ही बनता है—

संत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन पै कहा न जाना।
निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवै संत सुपुनीता।

व्याघात अलंकार की सहायता से तुलसी ने संतों और असंतों के भेद को स्पष्ट कर दिया है—

बंदौं संत असज्जन चरना। दुख प्रद उभय बीच कछु बरना।
मिलत एक दारुन दुख देहीं। बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।

एक स्थान पर तुलसी की युक्ति-पटुता 'कूट' के प्रयोग द्वारा खिल उठी है—

वेद नाम कहि, अंगुरिन खंडि अकास।
पठयो सूपनखहि लखन के पास।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने गोस्वामीजी द्वारा प्रयुक्त अलंकारों की छः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रेणियाँ निर्धारित की हैं—(क) गुण तथा स्वाभाविक चित्रण में सहायक अलंकार, (ख) भाव-चित्रण में सहायक अलंकार, (ग) कार्य-व्यापार-चित्रण में सहायक अलंकार, (घ) घटना-चित्रण में सहायक अलंकार, (ङ) वस्तु-चित्रण में सहायक अलंकार, तथा (च) ऊँची कल्पना के चित्रण में सहायक अलंकार। हमारे विचार से इन छः वर्गों का समाहार हमारे द्वारा किए गए चार वर्गों के अन्तर्गत हो जाता है और दोनों विभाजनों में मूलतः कोई अन्तर नहीं रह जाता है। वर्ग (घ) और (ङ) प्रायः एक ही हैं। वर्ग (च) की चर्चा वर्ग (क) के अन्तर्गत हो चुकी है।

तुलसी के कथन 'कवित-विवेक एक नहिं मोरे' का यथार्थ मूल्यांकन

तुलसी के समय में कविता प्रायः राजाश्रय में होती थी और कविगण चमत्कार-प्रदर्शन के लिए ही अलंकारों का विधान किया करते थे। गोस्वामी जी ने 'स्वामिनः सुखाय' कविता के उस युग में 'स्वान्तः सुखाय' कविता की और कीन्हें प्राकृत जनगुन गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछिताना' की बात कही। फलतः उनका काव्य में 'चमत्कार' का दर्शन करने के इच्छुक मेरे काव्य का अध्ययन करने का कष्ट न करें क्योंकि मान्य अर्थ में मैं कवि नहीं हूँ—'कवित विवेक एक नहिं मोरे।' तुलसी अलंकारों के फेर में कहीं नहीं पड़े। अलंकार-विधान उनका लक्ष्य नहीं था। इसी कारण अलंकार के समावेश के लिए उन्होंने भाव की अवहेलना कहीं नहीं की। यही कारण है कि श्लेष, मुद्रा परिसंख्या जैसे श्रम साध्य अलंकारों का व्यवहार उनके काव्य में बहुत ही विरल है।

गोस्वामी तुलसीदास के अंलकार-विधान की विशेषताएँ

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर गोस्वामी जी द्वारा किए गए अलंकार-विधान की निम्नलिखित विशेषताएँ ठहरती हैं—

(१) गोस्वामी जी ने प्रायः सभी वर्गों के अलंकारों का प्रयोग किया है। विशेषता यह है कि सब अलंकारों का प्रस्फुटन स्वाभाविक है। अलंकार-विधान के लिए कहीं भी इन्हें किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पड़ा है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में,—"अलंकारों की योजना इन्होंने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसे मार्मिक ढंग से की है कि वे सर्वत्र भावों या तथ्यों की व्यंजना को प्रस्फुटित करते पाये जाते हैं, अपनी अलग चमक-दमक दिखाते हुए नहीं।"

(२) कला की सौन्दर्य-वृद्धि में कारीगरी के पूर्ण साहचर्य का उत्कृष्ट उदाहरण वरवा रामायण प्रस्तुत करती है। इसमें एकाएक अलंकारों की ओर ध्यान नहीं जाता है। किन्तु भाव की गहराई तक पहुँचने के लिए जब अलंकारों को खोजना पड़ता है, तब पद-पद पर उनकी बहुलता देखकर आश्चर्य चकित हो जाना पड़ता है।

हीन भेद रूपक का यह उदाहरण देखिए—

द्वै भुज कर हारे रघुवर सुन्दर वेष।
एक जीभ कर लछमन दूसर शेष॥

(३) गोस्वामी जी ने कहां-कहीं अलंकार-प्रियता अथवा कला-कारीगरी का भी परिचय दिया है। 'विनय-पत्रिका' में आपने अर्द्ध नारीश्वर शिव को वसंत बनाया है तथा 'गीतावली' में चित्रकूट की वनस्थली को होली का स्वाँग बनाया है। विचार करने पर उनकी यह कारीगरी खटकती नहीं है, क्योंकि वह भी प्रसंग के गाम्भीर्य की वृद्धि में सहायक होती है। 'रूपक-पुष्ट व्यतिरेक' के इस चमत्कार को देखते ही बनता है—

जो छवि-सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मंदर सृंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥
इहि बिधि उपजै लच्छि जब सुन्दरता सुख मूल।
तदपि संकोच समेत कवि कहहिं सीप सम तूल॥

कहने का तात्पर्य यह है कि परिश्रम-प्रभव अलंकार-विधान भी अवसरानुकूल भावना के उत्पादन में सहायक हुआ है। यह ठीक ही है कि, "गोस्वामी जी की रचना कहीं ऐसी नहीं है कि पहले अलंकार का पता लग जाये तब अर्थ खुले।"

प्रश्न ४४—तुलसी के काव्य के कला-पक्ष का सम्यक् निरूपण कीजिए और सिद्ध कीजिए कि तुलसीदास हिन्दी साहित्य के सबसे बड़े कलाकार हैं। **अथवा**

प्रश्न ४५—तुलसी के काव्य-पक्ष का सम्यक् निरूपण कीजिए और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्ध कीजिए कि तुलसी हिन्दी साहित्य के सबसे बड़े कलाकार हैं।

अथवा

प्रश्न ४६—"तुलसी के काव्य में भाव-पक्ष और कला-पक्ष का सुन्दर समन्वय है।" इस कथन के औचित्य का प्रतिपादन कीजिए।

अथवा

प्रश्न ४७—तुलसी के काव्य-सौन्दर्य की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ४८—तुलसी की काव्य-पद्धति पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिए।

अथवा

प्रश्न ४९—'तुलसी के काव्य में प्रचलित सभी शैलियों तथा ब्रज और अवधी दोनों भाषाओं का सफल समन्वय भावाभिव्यक्ति में सहायक है। उनके काव्य में उच्चकोटि के भाव एवं कला सौंदर्य का रूप मिलता है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ५०—"तुलसी की प्रतिभा सर्वतोन्मुखी है"—इस कथन के आधार पर उनकी काव्य-कला पर प्रकाश डालिए।

अथवा

प्रश्न ५१—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के इस कथन की सार्थकता प्रमाणित कीजिए—"कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला।

उत्तर—भावपक्ष यदि काव्य की आत्मा है तो कला-पक्ष उसका शरीर है—काव्य का चरम लक्ष्य 'रससिद्धि' है। इसके लिए कवि में भाव-प्रवणता एवं भावुकता अपेक्षित हैं। भावप्रवणता तभी सार्थक एवं सफल होती है जब उसकी सफल एवं प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति हो। काव्य का यह अभिव्यक्ति पक्ष ही 'कलापक्ष' कहलाता है। भाषा, छन्द, अलंकार काव्य के वाह्यपक्ष अथवा कला पक्ष के सहायक एवं उपकारक होते हैं। इसी कारण यह कहा जाता है कि रस रूपी श्रेष्ठ काव्यात्मा के लिए उच्च कोटि के कलापक्ष रूपी शरीर की आवश्यकता होती है। "यत्राकृतिः तत्र गुणा वसन्ति" वाली लोकोक्ति काव्य-जगत पर भी लागू होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य में भाव-पक्ष की प्रधानता है और वह एक पूरे भावुक कवि हैं—गोस्वामी तुलसीदास ने कम से कम १४ ग्रन्थों का प्रणयन किया। उनके ग्रन्थों में हमको समस्त रसों से सम्बन्धित मार्मिक वर्णन मिलते हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने कई ऐसे मनोभावों का भी वर्णन किया है, जिनकी ओर अन्य कवियों का ध्यान बहुत कम गया है और साहित्य-शास्त्र में जिनका नामकरण नहीं किया है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भाव सत्ता के ऊपर जैसा अधिकार गोस्वामी तुलसीदास का दिखाई देता है, वैसा किसी अन्य कवि का नहीं।

गोस्वामीजी ने राम-कथा को अपने काव्य का विषय बनाया। राम-कथा के भीतर आने वाले जितने भी मार्मिक स्थल हैं, उन सब की पहचान गोस्वामी जी को खूब है। एक भी मार्मिक स्थल उनकी सूक्ष्म दृष्टि एवं रसग्राही भावुकता से बच नहीं सका है।

'रामचरित' के अन्तर्गत गोस्वामीजी को जीवन की अनेकानेक परिस्थितियों के सन्निवेश का पूरा-पूरा अवसर प्राप्त हुआ और उन्होंने इन अनेक मानव-दशाओं का सफल चित्रण किया। इन वर्णनों में हमें उनके हृदय की विशालता, भाव प्रसार की शक्ति और मर्मस्पर्शिनी स्वरूपों की उद्भावना के दर्शन होते हैं। जीवन की विविध परिस्थितियों के साथ तादात्म्य स्थापन तथा सूक्ष्म मनोभावों को ग्रहण करने की शक्ति उनकी भावुकता अथवा भाव सामर्थ्य की परिचायिका है। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि, "मानव प्रकृति के जितने अधिक रूपों के साथ गोस्वामीजी के हृदय का रागात्मक सामंजस्य हम देखते हैं, इतना अधिक हिन्दी भाषा के और किसी कवि के हृदय का नहीं।"

गोस्वामीजी काव्य में भावाभिव्यक्ति के समान ही कला-पक्ष को भी महत्व देते थे—गोस्वामी जी काव्य-कला को जीवन के लिए उपयोगी बनाने के पक्षपाती थे। उनका काव्यादर्श यह था—

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहं हित होई।

इसी आदर्श को सामने रखते हुए वह अपने युग के अन्य कवियों के काव्यादर्श से सहमत नहीं थे, क्योंकि वे कवि राजाश्रय में रह कर अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वामिन सुखाय: चमत्कारवादी काव्य-रचना में संलग्न है। इसी कारण उन्होंने इस प्रकार का कथन किया—

कवि न होउ नहिं चतुर प्रवीनू सकल कला सब विद्या हीनू।
कवित विवेक एक नहिं मोरे। सत्य कहौं लिखि कागद कोरे।

इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि गोस्वामीजी को 'काव्य शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान नहीं था अथवा वह काव्य-रचना में कलापक्ष को महत्त्व नहीं देते थे। उन्होंने स्पष्ट कहा कि—

विधु बदनी सब भाँति सँवारी सोह न जथा बसनु बर नारी।

तथा—

जुगुति बेधि पुनि पोइहहिं रामचरित बर ताग।

एवं —

जे प्रबंध नहिं बुध आदरहीं। सो श्रम वृथा बालकवि करहीं।

गोस्वामी जी के काव्य में भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष का पूर्ण समन्वय है—गोस्वामीजी एक समन्वयवादी एवं समन्वयकारी कवि थे। उन्होंने जिस प्रकार धर्म, भक्ति, दर्शन और साम्प्रदायिक मान्यताओं के क्षेत्र में समन्वय स्थापित किया, उसी प्रकार उन्होंने काव्य में भावपक्ष एवं कलापक्ष के सुन्दर समन्वय द्वारा काव्य-रचना का श्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने परम्परा-गत शास्त्रीय और लौकिक दोनों ही प्रणालियों को समन्वित करके अपनी शैली का निर्माण किया।

गोस्वामीजी का ब्रज और अवधी भाषा पर समान रूप से अधिकार था—गोस्वामीजी के समय में काव्य-भाषा के दो रूप प्रचलित थे—ब्रजभाषा और अवधी। इनके अतिरिक्त संत कवि की सधुक्कड़ी खिचड़ी भाषा में भी काव्य-रचना करते आ रहे थे। ब्रजभाषा में साहित्यिक रचना का सूत्रपात सूरदास ने किया था और अवधी के प्रमुख कवि जायसी की काव्य-भाषा का रूप ग्रामीण अथवा ठेठ अवधी था। सारांश यह है कि गोस्वामीजी के समय तक काव्य भाषा के परिनिष्ठित स्वरूप की प्रतिष्ठा नहीं हो पाई थी। तुलसीदास ने इस प्रभाव की पूर्ति की। उन्होंने दोनों भाषाओं को परिनिष्ठित एवं लोक-प्रचलित-रूपों में उच्चकोटि की रचनाएँ प्रस्तुत कीं। विनयपत्रिका,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गीतावली और श्रीकृष्ण गीतावली उनकी संस्कृतनिष्ठ 'ब्रजभाषा की रचनाएँ हैं। 'कवितावली' चलती हुई ब्रजभाषा की रचना का सुन्दर उदाहरण है। 'रामचरितमानस' में हमें अवधी भाषा के सुसंस्कृत पश्चिमी रूप के दर्शन होते हैं। पूर्वी एवं लोक-व्यवहार की अवधी में उन्होंने पार्वती मंगल, जानकी मंगल और रामलला नहछू की रचना की। इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसी के काव्य में संस्कृतमयी शब्दावली भी है और ठेठ ग्रामीण अथवा लोक प्रचलित शब्दावली भी। इनके भाषाधिकार को हिंदी के समर्थ समालोचकों ने मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है। यथा—

"भाषा पर ऐसा विस्तृत अधिकार और किस कवि का था? न सूर अवधी लिख सकते थे, न जायसी ब्रज"। (आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल)

× × × ×

"इन दोनों भाषाओं को संस्कृत की परिपक्व चाशनी की पाग देकर उन्होंने उन्हें अद्भुत मिठास प्रदान की। इन दोनों भाषाओं पर उनकी रचनाओं से इतना अधिकार दिखाई देता है कि जितना स्वयं सूरदासजी का ब्रजभाषा पर और जायसी का अवधी पर न था।" (डा० श्यामसुन्दरदास)

शब्दों के प्रयोग के सम्बन्ध में गोस्वामीजी की नीति बहुत ही उदार थी। उन्होंने अपनी भावाभिव्यक्ति को प्रत्येक प्रकार से सरल बनाने का प्रयत्न किया। इसी कारण उनकी कविता इतनी लोकप्रियता एवं स्थायित्व को प्राप्त हो सकी—

सरल कबित कीरत बिमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज बयस बिसराइ रिपु, जो सुनि करहिं बखान।

गोस्वामीजी का अलंकार-विधान स्वाभाविक है। अलंकार भावाभिव्यक्ति में सहायक बन आए हैं—गोस्वामीजी के काव्य में हमको प्रायः सभी वर्ग शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का स्वाभाविक प्रस्फुटन दिखाई देता है। अलंकार-विधान के लिए इन्हें कहीं भी प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। अलंकार स्वयं ही भावाभिव्यक्ति में सहायक होकर आते हुए दिखाई देते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, "अलंकारों की योजना उन्होंने ऐसे मार्मिक ढंग से की है कि वे सर्वत्र भावों या तथ्यों की व्यंजना को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्फुटित करते हुए पाए जाते हैं। "तुलसी का अलंकार-विधान भाव गाम्भीर्य की वृद्धि में जो अनायास सहायक होता हुआ दिखाई देता है उसका एक विशेष कारण है। तुलसी ने दैनिक जीवन के देखे सुने पदार्थों और व्यापारों से अपने उपमानों, रूपकों एवं प्रतीकों का चयन किया है। उन्होंने अप्रस्तुत विधान के लिए लोक को ही माध्यम बनाया। इस कारण उनके अलंकार-विधान में भावाभिव्यक्ति की तीव्रता सहज ही निरख उठती है। उदाहरणार्थ—

नगर व्यापि गई बात सुतीछी। छुवत चढ़ी जनु सब तन बीछी।
अस मन गुनत राउ नहिं बोला। पीपर पात सरिस मन डोला।
× × × ×
सो मोपै कहि जात न कैसे। साक बनिक मनिगन गुन जैसे।

गोस्वामीजी ने भावों की उत्कर्ष-व्यंजना करने वाले तथा रूप, क्रिया एवं गुण का अनुभव तीव्र करने में सहायक अलंकार का प्रयोग किया। कृत्रिमता लाने वाले—यमक, श्लेष, मुद्रा, परिसंख्या—अलंकारों का इनकी रचनाओं में प्रायः अभाव ही है।

गोस्वामीजी के काव्य में समस्त काव्य-शैलियों का प्रतिनिधित्व उपलब्ध होता है—गोस्वामीजी के समय में काव्य-क्षेत्र में कई काव्य-रचना शलियाँ प्रचलित थीं। अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा द्वारा उन्होंने समस्त प्रचलित काव्य-पद्धतियों पर समान अधिकार के साथ रचनाएँ लिखीं। यथा—

(क) वीरगाथा-काल की छप्पय-पद्धति—इस शैली पर इनकी रचना थोड़ी है, परन्तु है उच्च कोटि की। 'रामचरितमानस' के अनेक 'छन्द' इसके उदाहरण हैं।

(ख) विद्यापति और सूरदास की पद-शैली—इस शैली अथवा गीति-पद्धति पर इन्होंने बहुत विस्तृत और सुन्दर रचना की। विनयपत्रिका, गीतावली और कृष्णगीतावली इस शैली पर की गई रचनाएँ हैं। इनकी कोमलकान्त पदावली हमें जयदेव के 'गीतगोविन्दम्' का स्मरण करा देती है। 'विनयपत्रिका' का संस्कृत पदविन्यास 'गीतगोविन्दम्' के संस्कृत पदविन्यास की अपेक्षा किसी प्रकार कम श्रेष्ठ नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(ग) **गंग आदि भाट कवियों की कवित्त-सवैया शैली**—इस शैली पर इनकी रचना 'कवितावली' है। इसमें नाना रसों का सन्निवेश अत्यन्त विशद रूप में तथा अत्यन्त सुष्ठु एवं स्वच्छ व्रजभाषा में उपलब्ध होता है।

(घ) **नीति के उपदेश की सूक्ति-शैली**—यह शैली अपभ्रंश काल से चली आती थी और कबीर आदि कवियों की नीति-सम्बन्धी वानी में इसका विशेष प्रयोग होता था। इस शैली पर गोस्वामीजी ने अनेक दोहे लिखे जो 'रामचरितमानस' एवं दोहावली में उपलब्ध होते हैं। इन दोनों में धर्म, भक्ति, प्रेम तथा लोक-व्यवहार-सम्बन्धी श्रेष्ठ कथन किये गये हैं।

(ङ) **जायसी आदि की दोहा-चौपाई वाली प्रबन्ध-शैली**—इस शैली पर इन्होंने अपने अमर काव्य 'रामचरितमानस' की रचना की।

(च) **रहीम की बरवा शैली**— इस शैली पर गोस्वामीजी ने 'बरवै रामायण' की रचना की।

सारांश यह है कि इन्होंने सब प्रकार की रचना शैलियों में समानाधिकार के साथ रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

गोस्वामीजी की वर्णन शैली अत्यन्त सजीव एवं प्रभावशाली है—गोस्वामीजी जिस 'दृश्य', चरित्र, भाव एवं स्थिति का वर्णन करते हैं उसका सजीव रूप हमारी कल्पना के सामने उपस्थित हो जाता है। उनकी वर्णन शैली कुछ इस प्रकार की है कि वह वर्ण्य विषय को चित्रात्मकता प्रदान करके गतिमान कर देती है और दृश्य सजीव रूप में अपनी नाटकीय विशेषता अथवा अपने व्यापारों की गतिशीलता के साथ हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाता है—

जटा मुकुट कर सर धनु संग मरीच।
चितवनि बसति कनखियन अखियन बीच।

(बरवै रामायण)

तथा—

तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे।

(कवितावली)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुलसी की वर्णन शैली बड़ी ही मनोवैज्ञानिक है, इसी कारण वह पाठक की भावसत्ता पर पूर्ण अधिकार जमा लेते हैं। इनकी मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ प्रायः अप्रतिम है। वह पाठक को अवसरानुसार हँसाते-रुलाते चलते हैं। उदाहरण के लिए हम 'बालकाण्ड' में पुष्पवाटिका का प्रसंग लेते हैं। वहाँ तुलसी ने शृंगार वर्णन के बाद ही वीर, रौद्र, हास्य आदि रसों का ऐसा क्रमिक निर्वाह किया है कि पाठक भावसत्ता पर तुलसी के अधिकार को देखकर चमत्कृत हुए बिना रह ही नहीं सकता है।

गोस्वामीजी को अपने आराध्य राम की विग्रह-माधुरी का वर्णन करने में विशेष आनन्द आता है। इनके वर्णन में उन्होंने अपने वर्णन-कौशल का पूर्ण परिचय दिया है। इसके लिए उन्होंने नखशिख परिपाटी का अवलम्बन ग्रहण किया है। यह प्रवृत्ति रामचरितमानस, गीतावली, विनयपत्रिका, कवितावली तथा कृष्ण गीतावली में पाई जाती है। इनके नखशिख वर्णन के सम्बन्ध में डा० माताप्रसाद गुप्त का यह कथन द्रष्टव्य है—"नखशिख मध्यकालीन कविता का एक प्रिय विषय रहा है। हमारे कवि ने हमें जो नखशिख दिये हैं उनकी तुलना इस क्षेत्र में मध्य-युग के सर्वश्रेष्ठ उदाहरणों के की जा सकती है, इसमें सन्देह नहीं।" तुलसी का उक्ति वैचित्र्य भावाभिव्यक्ति को उत्कर्ष प्रदान करने वाला है—कथन की ओर श्रोता या पाठक को आकर्षित करने वाले तथा विषय को मार्मिक एवं प्रभावशाली बनाने वाले कथन 'उक्ति-वैचित्र्य' के अन्तर्गत आते हैं। ऐसे स्थलों पर कविजन लक्षण-व्यंजना शब्द-शक्तियों तथा काकु, पर्यायोक्ति अलंकारों का आश्रय लेते हैं। गोस्वामीजी ने इस प्रकार के अनेक सफल प्रयोग किए हैं। उदाहरणार्थ पर्यायोक्ति का यह उदाहरण देखिए—

सीता-हरन, तात जनि, कहेउ पिता सन जाइ।
जो मैं राम तो कुल-सहित कहहि दसानन आइ॥

प्रश्नोत्तर और विरोधाभास के रूप में नारी की कुटिलता का यह स्वरूप द्रष्टव्य है—

काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने तुलसी के 'उक्ति वैचित्र्य' का विवेचन करते हुए निम्नलिखित पंक्ति की ओर संकेत किया है—

बेग-बल, साहस सराहत कृपानिधान, भरत की कुसल अचल लाए चलिकै।

यहाँ तुलसी के एक ही क्रिया लाए चलिकै के दो ऐसे कर्म-भरत की कुसल और पर्वत—लाए हैं जो परस्पर अत्यन्त विजातीय होने के कारण बहुत ही अनूठे लगते हैं।

'रामचरितमानस' की भूमिका में कवि ने राम-कथा और 'रामचरित' की महत्ता का गान किया है। इसमें यह विशेषता द्रष्टव्य है कि राम-कथा सम्बन्धी उक्तियाँ स्त्रीलिंग की हैं और रामचरित सम्बन्धिनी उक्तियाँ पुल्लिंग की हैं। यथा—

बुध बिश्राम सकल जन-रंजनि। राम-कथा कलि कलुष बिभंजनि।

तथा— **राम चरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिय सुभग सिंगारू।**

डा० माता प्रसाद गुप्त ने गोस्वामीजी के उक्ति-वैचित्र्य के बारे में निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि कवि उक्ति-वैचित्र्य का आश्रय चाहे अपने विश्वास की दृढ़ता, तीव्र सहानुभूति अथवा तीव्र विद्वेष के कारण लेता है, चाहे अपने पाठकों की सौन्दर्य-बुद्धि को प्रभावित करने के लिए दोनों ही दशाओं में उसकी विचार एवं व्यंजन विशदता अपने चरम उत्कर्ष को जा पहुँचती है॥"

तुलसी की छंद योजना भाव एवं विषय के अनुरूप है—गोस्वामी जी ने जिस प्रकार अपने समय में प्रचलित समस्त काव्य-शैलियों का प्रयोग किया उसी प्रकार उन्होंने अपने काव्य-ग्रन्थों के उपयुक्त छन्दों का प्रयोग किया। जैसे—ब्रजभाषा के ग्रन्थों में कवित्त, सवैया और दोहा छन्द का प्रयोग किया, तथा गेय रचना के लिए पद अपनाए। अवधी की कविता में दोहा-चौपाई और बरवा छन्दों का प्रयोग किया। भाव की क्रमबद्ध अभिव्यक्ति के अवसरों पर आपने छप्पय, हरिगीतिका जैसे लम्बे छन्दों का प्रयोग किया। गोस्वामीजी ने 'मानस' की प्रबन्धरूपता के निर्वाह के लिए अवधी भाषा के प्रचलित छन्द—चौपाई का प्रयोग किया। दोहा-चौपाई के लिए अवधी से बढ़ कर दली भाषा और प्रबन्ध-कथा प्रवाहित करने के लिए दोहा-चौपाई से बढ़ कर दूसरा छन्द न होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'रामचरितमानस' के छन्द-विधान के सम्बन्ध में डा० राजपति दीक्षित का यह कथन बहुत ही उपयुक्त है—"उन्होंने प्रबन्ध-सौष्ठव के लिए दोहा-चौपाई के अतिरिक्त कुछ चुने हुए अन्य प्रकार के छन्दों का उचित प्रयोग भी किया है। उनके ऐसे प्रयोगों का परिणाम ऐसा नहीं कि 'मानस' भी केशव की रामचन्द्रिका की भाँति छन्दों का अजायब घर हो, प्रत्युत उससे उनके प्रबन्ध की एकरूपता सुषमता और आदर्श छन्द प्रयोग की प्रतिष्ठा होती है, गोस्वामीजी की प्रबन्ध धारा मानो संस्कृत वर्णिकों के शुभ हिम-शिला खण्ड से प्रसूत होकर चौपाइयों की समभूमि में सहज स्वाभाविक गति से चलती है, मार्ग में दोहा—सोरठों के मोड़ पर विश्राम करती हुई, समय-समय पर प्रसंग एवं भावावेश रूप वायु के झकोरों से विलोड़ित होकर अपनी मनमोहक लहरों में सजीव चित्र दिखाने के लिए हरिगीतिका, चौपय्या, त्रिभंगी, प्रमाणिका, तोटक, तोमर आदि के क्षेत्र में अपनी इठलाहट दिखाती, कलकल नाद करती हुई उत्तरोत्तर रामसागर में लीन हो जाती है।"

छन्द-योजना के संदर्भ में यह बता देना आवश्यक प्रतीत होता है कि दोहों में कहीं मात्राएँ कम होगई हैं और सवैयों में कहीं-कहीं वर्ण घटे-बढ़े हैं।

गोस्वामी जी के काव्य पर उनके बहु विषयक ज्ञान की छाप स्पष्ट है—गोस्वामी जी ने 'रामचरितमानस' की भूमिका में लिखा है कि—

नाना पुराण निगमागम सम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिन्यतोऽपि।

उनके काव्य का अनुशीलन करते समय गोस्वामीजी का उक्त कथन अक्षरशः चरितार्थ होता हुआ दिखाई देता है। हमें उसमें वेद, शास्त्र, पुराण, साहित्यिक ग्रन्थ, नाटक, लोकभाषा के ग्रन्थ आदि के संदर्भ स्थान-स्थान पर प्राप्त होते हैं। उनके काव्य का अनुशीलन करने के पश्चात् यह सहज एवं निसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि गोस्वामीजी ने समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया था और उसके मंथन के फलस्वरूप प्राप्त नवनीत को अत्यन्त निपुणता के साथ उन्होंने अपने पाठकों के लाभार्थ प्रस्तुत किया।

तुलसीदास के ग्रन्थों में हमको वेद, पुराण, शास्त्र आदि के अतिरिक्त वनस्पति विज्ञान, गणित, ज्योतिष, संगीत, धर्म, दर्शन आदि से सम्बन्धित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनेक बातें पढ़ने को मिलती हैं। यही नहीं कि उनका यह विविध विषयक ज्ञान केवल चलता हुआ ही हो, वह ठोस एवं गम्भीर अध्ययन—अनुशीलन का परिचायक है। दर्शन समन्वित ज्योतिष के ज्ञान से प्रसूत यह दोहा देखिए—

करम खरी कर, मोह, थल, अंक चराचर जाल।
हनत गुनत, गनि गूनि हनत, जगत ज्योतिषि काल।

इन दो पंक्तियों में गोस्वामी जी ने हमारे भाग्य निर्माण का स्वरूप एक दम स्पष्ट कर दिया है। प्रारब्ध, इच्छा (पुरुषार्थ) तथा विकास-शील शक्तियों के सामूहिक प्रभाव द्वारा हमारे कर्म का लेखा तैयार होता रहता है।

गोस्वामी जी के गीति-ग्रन्थों को देखने पर उनके संगीत-शास्त्र का ज्ञान हमारे सामने आ जाता है। उन्होंने शास्त्रीय राग-रागिनियों के अतिरिक्त स्त्री समाज में गाये जाने वाले गीतों की तर्जों का भी अच्छा-खासा अध्ययन किया था। जानकी मंगल, पार्वती मंगल और रामललानहछू की रचना स्त्री-गीतों में ही हुई है। डा० श्यामसुन्दर दास के कथा के साथ हम इस प्रसंग को समाप्त करते हैं—"इस दृष्टि से देखने पर गोसाईं जी की अपनी रामायण को छओं शास्त्र सव ग्रन्थन की रस कहने की यथार्थता प्रकट हो जाती है।"

निष्कर्ष—(i) गोस्वामी जी के कला पक्ष के सौष्ठव के सम्बन्ध में निष्कर्ष रूप निम्नलिखित कथन द्रष्टव्य हैं—"तुलसी ने परम्परागत शास्त्रीय और लौकिक दोनों प्रणालियों को समन्वित करके अपनी शैली का निर्माण किया है।

(ii) तुलसी ने लोक के हृदय को आकर्षित करने वाले वर्ण्य विषय को अपनी सहज अनुभूति में रंगकर सरल-सहज भाषा में अभिव्यक्त किया है। जीवन से प्राप्त अनुभवों और शास्त्रीय विचारों को वोधगम्य वनाकर जन-मानस तक पहुँचा देना उनकी कला की सबसे बड़ी विशेषता है।

(iii) हम चाहे जिस दृष्टि से देखें, गोसाईं जी में हम सव दशाओं में कला का अन्यतम उत्कर्ष प्राप्त करते हैं। उनकी कृतियों में कला को वह उत्कर्ष प्राप्त हुआ है जिसे देखकर हरिऔध की वाणी में अपना स्वर मिलाते हुए हमें भी यह कहना पड़ता है कि "कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१२)

गीति-काव्यकार गोस्वामी तुलसीदास

प्रश्न ५२—हिंदी गीति परम्परा पर प्रकाश डालते हुए उसमें गोस्वामी तुलसीदास का स्थान निर्धारित कीजिए।

अथवा

प्रश्न ५३—विनय पत्रिका और 'गीतावली' को ध्यान में रखते हुए गीति-काव्य के रूप में तुलसीदास जी का महत्व-निर्णय कीजिए।

उत्तर—गेय रचना को गीतिकाव्य कहते हैं—गाये जाने वाली रचना को गीतिकाव्य कहते हैं। अनुभूति जब गहरी हो जाती है, तो अभिव्यक्ति गेय बन जाती है। इस प्रकार लोक गीतों के रूप में हमको गीति-काव्य का सरल-स्वाभाविक एवं मौलिक रूप उपलब्ध होता है। अतः हम कह सकते हैं कि जब मनोभावों का प्रकटीकरण सरस एवं सुकुमार रूप में होता है, तब गीति-काव्य की सृष्टि होती है। भाषा के साहित्यिक रूप के विकास के साथ-साथ गीतों के रूप में भी परिवर्तन हो जाता है और होता आया है।

गीतिकाव्य की विशेषताएँ—डा० रामकुमार वर्मा ने गीति काव्य का विवेचन करते हुए लिखा है कि "गीतिकाव्य की रचना आत्मादि व्यक्ति के दृष्टिकोण से होती है। उसमें विचारों की एक-रूपता रहती है। आराध्य से आत्म निवेदन के उपन्यास में रचना गेय हो जाती है। अतः सफल गीति-काव्य में चार बातें होनी आवश्यक हैं—(i) आत्माभिव्यक्ति, (ii) विचारों की एकरूपता, (iii) संगीतात्मकता, तथा (iv) संक्षिप्तता।

डा० माता प्रसाद गुप्त ने गीतिकाव्य के लक्षण भी प्रायः इसी प्रकार बताए हैं—(i) आन्तरिक प्रेरणा, (ii) आवेग, (iii) प्रसाधन की उपेक्षा, और (iv) आत्माभिव्यंजना की प्रमुखता। हमारे विचार से उक्त दोनों विद्वानों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मतों के मध्य कोई मौलिक अन्तर नहीं है। गीतिकाव्य के सामान्य लक्षण इस प्रकार ठहरते हैं—

(१) वह गाने योग्य होना चाहिए।

(२) उसमें वैयक्तिक भाव-धारा हो, अर्थात् उसमें स्वानुभूति का प्रकाशन होना चाहिए।

(३) इसमें सुकुमार भावों की घनीभूत तीव्र अभिव्यक्ति होनी चाहिए।

(४) इसमें संक्षिप्तता होनी चाहिए।

(५) इसकी अभिव्यक्ति सहज स्वाभाविक और कलापक्ष के विधान प्रपन-शीलता नहीं होनी चाहिए।

गीतिकाव्य काव्य की परम्परा—गीति-काव्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है—उतनी ही प्राचीन जितनी मानव की साहित्यिक अभिव्यक्ति। काव्य के प्रथम दर्शन हमको वेदों में होते हैं। ऋग्वेद की ऋचाएँ गेयता के गुण से युक्त हैं। सामवेद तो गान-विद्या का वेद है ही—उसके स्तोत्रों में हमको गीति-काव्य के सुनिश्चित रूप से दर्शन होते हैं और सामवेद के गेय स्तोत्रों के साथ ही गीति-काव्य की परम्परा आरम्भ होती है।

वैदिक काल के पश्चात् संस्कृत और प्राकृत दोनों ही में यह परम्परा दिखाई देती है। संस्कृत में वाल्मीकि रामायण में यह परम्परा मिलती है। 'प्राकृत में वौद्ध साहित्य में गेय गाथाओं में यह परम्परा मिलती हैं। इनमें वैराग्य के प्रति हार्दिकता और उत्साह है तथा ये गीत लोक-जीवन के काफी निकट हैं। इनमें वस्तुतः हमको लोक-गीतों की परम्परा का उद्भव दिखाई देता है।

इसके वाद संस्कृत के नाटकों में हमको गीति-काव्य के दर्शन होते हैं। कालिदास आदि श्रेष्ठ कवियों के काव्य एवं नाटक गीति तत्व से युक्त मिलते हैं। एक विद्वान के शब्दों में संस्कृत भाषा का अधिकांश साहित्य गीत-काव्य के अन्तर्गत समाविष्ट किया जा सकता है। उसमें जिस माधुर्य एवं ओज की अपेक्षा होती है, उसके दर्शन हमें मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तलम् एवं विक्रमोर्वशीय आदि नाटकों में होते हैं। १२ वीं शताब्दी में हमको जयदेव के गीतगोविन्दम् में हमको गीति-काव्य का उन्नत एवं परिष्कृत रूप उपलब्ध होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। इसके गीत विभिन्न राग-रागिनियों में बने हुए हैं और इनकी भाषा कोमलकान्त पदावली युक्त है। इनके गीत वहुत ही मधुर एवं सरस हैं।

हिंदी-काव्य-की परम्परा—हिंदी का गीति-काव्य अपनी परम्परा के लिए संस्कृत साहित्य का ऋणी है। वीरगाथा-काल के अन्तिम चरण में जयदेव के गीत गोविन्दम् द्वारा प्रभावित होकर मैथिल कोकिल विद्यापति ने अनेक ललित एवं मधुर गेय छंदों की रचना की। इनमें जयदेव के गीत-गोविन्दम् के समान राधा-कृष्ण के विलास पूर्ण शृंगार का मनोरम वर्णन है। विद्यापति के शृंगारी पदों में पदलालित्य, संगीतात्मकता उक्ति-वैचित्र्य, आदि गुणों के दर्शन होते हैं। ये पद बड़ ही सरस हैं, परन्तु इतना समझ लेना चाहिए कि इनमें ऐन्द्रियता की गंध है। इसके पश्चात् भक्तिकाल के आरम्भ में हमको निर्गुण भक्ति-सम्प्रदाय के अन्तर्गत कबीर आदि संत कवियों के पद-साहित्य के दर्शन होते हैं। इन पदों में वैराग्य भावना है और मार्मिक विरह निवेदन की अभिव्यक्ति है। इनकी भाषा खरी और तीखी है।

काव्य में गीति-तत्व का पूर्ण विकास आगे चलकर सगुण भक्ति शाखा के अन्तर्गत व्रजभाषा के कवियों में दिखाई पड़ता है। सूरदास आदिक अष्ट छाप के कृष्ण भक्त कवि तथा कृष्ण प्रेम की दीवानी मीराबाई इस काव्य के सबसे अधिक मधुर एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण गीतिकाव्यकार हैं। अष्ठ छाप के कवियों के पदों में गीति-काव्य का चरम विकास हुआ। मीरा के गीत आन्तरिक अनुभूति और पूर्ण तन्मयता से ओत-प्रोत हैं। वह गिरिधर गोपाल के प्रेम में दिन रात दीवानी बनी हुई गाती रहती थीं। इसी युग में राम भक्ति शाखा के अन्तर्गत राम कथा के प्रमुख गायक राम भक्त गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव हुआ। उन्हों राम-कथा के आधार पर राम भक्ति परक अनेक पदों की रचना की। इन पदों की तन्मयता, और कलाचातुरी अप्रतिम है। रीतिकाल में आकर यह परम्परा प्रायः अवरुद्ध हो गई है। कुछ विद्वान रीतिकाल के सेनापति, देव, पद्माकर, प्रभृति कवियों के कवित्त-सवैयों में गीति-काव्य की प्रवृत्ति के दर्शन करते हैं। हमारे विचार से यह अनावश्यक खींचतान होगी, क्योंकि ऐसी स्थिति में तो प्रत्येक छन्दोवद्ध रचना गीतिकाव्य के अन्तर्गत आ जाएगी। हमारी यह निश्चित धारणा है कि रीति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काव्य के कवि अपने युग की मान्य अन्य प्रवृत्तियों की ओर प्रवृत्त रहे और गेय पदों की रचना के प्रति उत्साहित नहीं हूए। हां, इतना अवश्य है कि रीतिकाल के अन्तिम चरण में घनानंद ने अवश्य कुछ गेय पदों की रचना की और वह उस युग के स्वच्छन्द अथवा रीति युक्त कवि कहलाए। घनानंद के पद विरह की ओर उन्मुख हैं और उनमें अन्तर्वृत्तियों का मार्मिक निरूपण पाया जाता है।

आधुनिक काल में आकर गीति-काव्य पुनः पल्लवित हो उठा। इस युग के आरम्भ काल में ही भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने गीति-काव्य रचना का पुनः सूत्रपात किया। उन्होंने कृष्ण-प्रेम एवं देश-प्रेम सम्बन्धी गीति-काव्य की सृष्टि की। इनके अतिरिक्त सत्य नारायण कविरत्न प्रतापनरायण मिश्र तथा वियोगी हरि ने गीति-काव्य के अन्तर्गत आने वाली अनेक सुन्दर और मार्मिक रचनाएँ प्रस्तुत कीं। कालान्तर में छायावाद युग में आकर इस काव्य-विधा का पूर्ण विकास हुआ। इस युग में जयशंकरप्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, डा० रामकुमार वर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी, वालकृष्ण शर्मा 'नवीन', वच्चन, मैथिलीशरण गुप्त तथा सुभद्राकुमारी चौहान ने उच्च कोटि के गीति काव्य की रचना की।

भारतेन्दु युग और छायावाद का संधिकाल द्विवेदी युग है। मैथिलीशरण गुप्त के प्रवन्ध-काव्यों में विखरे हुए गीतों को हम इस युग के गीतिकाव्य की विधि मान सकते हैं। पं० श्रीधर पाठक और ठा० गोपालशरणसिंह प्रभृति कवियों के फुटकल गीत इसी युग के अन्तर्गत आते हैं।

छायावाद के युग के पश्चात् 'प्रगतिवाद' के युग में अनेक मिश्र आदि प्रगतिवादी गीत लिखे गए। नरेन्द्र, पंत, वच्चन, अंचल, भवानीप्रसाद इस युग के प्रमुख गीतिकाव्यकार हैं। इसके वाद आजकल अनेक नवयुवक छोटे-छोटे गीतों की रचना करते हैं। इन गीतों में आन्तरिक अनुभूति की अपेक्षा समाज के प्रति तीखे व्यंग्य की प्रधानता रहती है। इनमें अंचल, चंचल, नीरज, नरेन्द्र, सुमन, गिरिजाकुमार मायुर, नेपाली, भारती आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। आज कल लोकगीतों के प्रति कवियों का झुकाव है और अनेक कवि यथावसर लोक-गीतों की रचना करते हुए देखे जा सकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुलसी का गीति-काव्य—अब प्रश्न यह उठता है कि वीर-गाथा काल से आज तक अटूट रूप में चली आने वाली इस गीति-परम्परा में गोस्वामी तुलसीदास का क्या स्थान है ?

गोस्वामीजी की तीन रचनाएँ गीति-काव्य के अन्तर्गत आती हैं—कृष्ण गीतावली, और गीतावली, विनय-पत्रिका। तीनों रचनाएँ व्रजभाषा में हैं।

'कृष्ण गीतावली' श्रीकृष्ण के चरित से सम्बद्ध है। इसमें उद्धव-गोपी संवाद—भ्रमरगीत की कथा है। इसमें ६१ पद हैं। इसमें घटना-विशेष पर राग-रागिनियों में पदों की रचना हुई है।

यह ग्रन्थ गोस्वामीजी की एक सरल एवं सरस रचना है, इसके पद बड़े ही मनोवैज्ञानिक हैं। इसमें कवि की प्रतिभा पूर्ण रूप में मुखर है।

'गीतावली' में गोस्वामीजी ने राम-कथा को पदों में लिखा है। इसमें राम-कथा के कुछ चुने हुए स्थलों को लेकर अधिक पद लिखे हैं। अन्य प्रसंगों को चलता कर दिया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि 'रामचरित-मानस' की भाँति इसमें राम-कथा का नाटकीय विकास लिए हुए वर्णन नहीं है। यह ग्रन्थ एक प्रवन्धात्मक मुक्तक ही कहा जाएगा।

'गीताव ी' के ऊपर 'सूरसागर' की छाप स्पष्ट है। कुछ लोगों के मतानुसार इसकी रचना 'सूरसागर' के अनुकरण पर हुई थी। इसके कुछ पद सूरसागर के पदों से वहुत मिलते-जुलते हैं—यहाँ तक कि पूरा पद का पद ही ज्यों का त्यों मिल जाता है, केवल श्याम और राम का अन्तर दिखाई देता है। तुलसी के कुछ भक्त यहाँ तक कह देते हैं कि 'गीतावली' के अनुकरण पर ही 'सूर-सागर' की रचना हुई थी। अस्तु।

'सूरसागर' के बाल-वर्णन के समान 'गीतावली' में गोस्वामीजी ने राम का बाल वर्णन बहुत ही विस्तार के साथ एवं सांगोपांग रूप में किया है। इसमें गोस्वामीजी ने कोमल भावनाओं को प्रश्रय प्रदान किया है और गीतावली के पदों के चित्रों को वहुत ही कोमल और हृदय-ग्राही वना दिया है। रस-परिपाक की दृष्टि से गीतावली का सुन्दर काण्ड वहुत श्रेष्ठ वन पड़ा है। उसमें वीर रस, विप्रलम्भ, श्रृंगार रस, रौद्र रस एवं शान्त रस की सफल अभिव्यक्ति हुई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'विनय-पत्रिका' गोस्वामीजी की एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण रचना है। वह वस्तुतः भक्तों का सर्वस्व है। उसमें आत्म निवेदन की चरम अभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं।

'विनय-पत्रिका' में छः प्रकार के पद हैं—

(१) प्रार्थना या स्तुति के पद। ये पद तीन प्रकार के हैं—(क) गुण-वर्णन सम्बन्धी पद (कथाओं द्वारा तथा रूपकों द्वारा), (ख) रूप-वर्णन-सम्बन्धी पद, तथा (ग) राम-भक्ति-याचना करने वाले पद।

(२) स्थानों (चित्रकूट और काशी) का वर्णन करने वाले पद।

(३) मन के प्रति उपदेश देने वाले पद।

(४) संसार की असारता व्यक्त करने वाले पद।

(५) ज्ञान-वैराग्य-सम्बन्धी पद।

(६) आत्म-चरित सम्बन्धी संकेत प्रदान करने वाले पद।

'विनय-पत्रिका' की भावनाएँ बहुत ही स्वतन्त्र हैं और उसके पदों में आत्माभिव्यंजना का पूर्ण प्रकर्ष परिलक्षित होता है। इसकी रचना संगीत के नियमों के आधार पर हुई है। डा० रामकुमार ने इस दिशा में शोध करके यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि 'भावना विशेष के लिए विशेष रागिनी में रचना की गई है।'×× इस प्रकार इक्कीस रागों में 'विनय-पत्रिका' का आत्म निवेदन है।

'विनय-पत्रिका' में शान्तरस की बड़ी मार्मिक विवेचना है। ये पद अनुभूति में सूर के पदों के समकक्ष ठहरते हैं। तुलसी की उपासना दास्य भाव की होने के कारण 'विनय-पत्रिका' के पदों में स्थायी भाव की प्रौढ़ता सूर के पदों की अपेक्षा उत्कर्ष को प्राप्त दिखाई देती है।

'विनय-पत्रिका' में हमें संस्कृत और ब्रजभाषा का मणि कांचन संयोग दिखाई देता है। उसके पदों में हमें संस्कृत की कोमल कान्त पदावली और ब्रजभाषा दोनों के माधुर्य का स्वाद प्राप्त होता है। आरम्भ के स्तोत्रों का पद-विन्यास तो एकदम 'गीत गोविन्दम्' की भाँति सरस, मधुर और सजीव है—

कम्बु कुन्देन्दु कर्पूर-विग्रह रुचिर, तरुन-रवि-कोटि तनु-तेज भ्राजै।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भस्म सर्वांग अर्धांग सैलात्मजा व्याल-नृकपाल-माला बिराजै।
(पद १०)

'विनय-पत्रिका' में विज्ञसमाजोचित क्लिष्ट तथा जनसाधारण के समझने योग्य सरल दोनों ही प्रकार की भाषा-शैली के दर्शन होते हैं। 'विनय-पत्रिका' की शैली बहुत ही सुसंगठित एवं सुव्यवस्थित है। गोस्वामीजी ने वेदान्त जैसे गहन-गम्भीर विषय को 'विनय-पत्रिका' में सहज हृदयंगम करने योग्य बना दिया है। ग्रन्थ की प्रभावोत्पादकता एवं आत्माभिव्यंजन की सजीवता का इससे अधिक क्या प्रमाण चाहिए ?

हिंदी के गीति-काव्य में गोस्वामीजी का स्थान—गोस्वामी तुलसीदास के पूर्ववर्ती गीति-काव्यकार कवियों में दो कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं—विद्यापति और संत कबीरदास। विद्यापति के काव्य में शृंगार रस की वासना का शासन था और कबीर की वाणी में आत्म-समर्पण की भावना स्थिर नहीं हो सकी।

तुलसी के समकालीन कवियों में कृष्ण भक्त कवियों के नाम आते हैं। इनमें सूरदास और मीराबाई के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। सूर की भक्ति सरल भाव की थी और मीराबाई मधुर भाव की उपासिका थीं। दोनों में भक्ति-भावना थी, परन्तु एक अनन्य भक्त की आत्म-समर्पण की भावना का उनमें अभाव दिखाई देता है। सूर कृष्ण-चरित्र के अवगाहन में लगे रहे और मीरा विरह-व्यथा की अभिव्यक्ति में तल्लीन बनी रहीं। इस प्रकार पूर्ण आत्म-निवेदन का मौलिक आदर्श लेकर हिंदी साहित्य में 'विनय-पत्रिका' का अवतरण हुआ।

तुलसी के परिवर्ती कवियों में अपेक्षित तन्मयता और भाव प्रवणता का अभाव है। अधिकांश कवियों में आत्म समर्पण न होकर आवेग की प्रधानता दिखाई देती है। गीति-काव्य के क्षेत्र में छायावादी कवियों की चर्चा बड़े आदर के साथ की जाती है। परन्तु हम देखते हैं कि उनमें प्रधान आकर्षण नारी के प्रति है और उनमें स्थायी भाव का अपेक्षित प्रगाढ़ता का अभाव है। वर्तमान नवयुवक गीतिकारों में प्रायः वासना का नग्न रूप झाँकता हुआ दिखाई देता है और उनमें कला का स्तर बहुत कुछ सामान्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तु स्थिति यह है कि इस क्षेत्र में तुलसी के एक मात्र प्रतिद्वन्द्वी सूर हैं। सूर में तल्लीनता अधिक है, परन्तु उनमें तुलसी की बहुमुखी प्रतिभा का अभाव दिखाई देता है। दोनों कवि पुंगव अपने-अपने क्षेत्र के स्वामी हैं। परन्तु इतना अवश्य है कि भाव और संगीत का अद्भुत सामंजस्य हमको तुलसी के गीति-काव्य में ही दिखाई पड़ता है। किसी अन्य कवि ने स्वानुभूति की व्यंजना के लिए पद-शैली में ऐसा सुखद सामंजस्य उपस्थित नहीं किया।

प्रश्न ५४—गोस्वामी तुलसीदास के शील-निरूपण और चरित्र-चित्रण का विचार करते हुए सिद्ध कीजिए कि मध्यकाल के ही नहीं अपितु हिन्दी साहित्य के महान् एवं लोकप्रिय कवि हैं।

अथवा

प्रश्न ५५—"तुलसी के पात्र कोरे आदर्श नहीं हैं, उनमें जीवन के यथार्थ पक्ष भी प्रकट हुए हैं।" प्रमुख पात्रों के आधार पर इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ५६—शक्ति, शील और सौन्दर्य के रूप में तुलसी के राम की चरित्रगत विशेषताओं का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर—उच्च आदर्शों की प्रतिष्ठा एवं श्रेष्ठ मूल्यों का निर्माण तुलसी के काव्य की विशेषता है—गोस्वामी तुलसीदास काव्य-निर्माण में नानापुराणादिगआगम समस्त दृष्टि को लेकर चले थे। उन्होंने भारतीय-वाङ्मय के साररूप अमृतरस के समान भव्यतम आदर्शों और मूल्यों की प्रतिष्ठा की। उनके समकालीन समाज में इसकी विशेष आवश्यकता थी, क्योंकि उस समाज में 'मत्स्य-न्याय' का बोलबाला था। भारतीय जनता अन्याय एवं अत्याचार के शासन भार से कराह उठी थी। तुलसी का काव्य वस्तुतः अपने आदर्शों के लिए ही पढ़ा जाता है।

शील-निरूपण और चरित्र-चित्रण की विशेषता है—तुलसी का काव्य वस्तुतः अपने आदर्शों एवं श्रेष्ठ जीवन-मूल्यों के लिए ही पढ़ा जाता है। उसके आधार पर पाठक अपनी समस्याओं के समाधान प्राप्त करते हैं। उसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विधि-निषेधों को पाठक सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के कथनानुसार, "रस-संचार से आगे बढ़ कर हम काव्य की उस उच्च भूमि में पहुँचते हैं जहाँ मनोविकार अपने क्षणिक रूप में ही न दिखाई देकर जीवन-व्यापी रूप में दिखाई पड़ते हैं। इसी स्थायित्व की प्रतिष्ठा द्वारा शील-निरूपण और पात्रों का चरित्र-चित्रण होता है।" कहने की आवश्यकता नहीं है कि तुलसीने यही किया और इस प्रकार वह हिन्दी काव्य-क्षेत्र में एक नवीन आदर्श को लेकर अवतरित हुए क्योंकि गोस्वामीजी के पहले हिन्दी का कोई भी प्राचीन कवि इस क्षेत्र में नहीं दिखाई पड़ता।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि मुक्तक-काव्यकार तो इस क्षेत्र में बहुत पीछे रह जाते हैं। हमारी विचार-परिधि में केवल प्रबन्धकार-कवि ही आते हैं। वीरगाथा काल में चन्द प्रभृति कवियों ने प्रबन्ध-रचना अवश्य की, परन्तु उनके काव्य में वीरोल्लास की ही प्रधानता रही, शील-निरूपण एवं चरित्र-चित्रण के रूप मनोविकारों को जीवन व्यापी स्थायी स्वरूप प्रदान न किया जा सका। इनके अतिरिक्त मलिक मुहम्मद जायसी आदि प्रेम-गाथाकारों ने भी प्रबन्ध-रचना की। परन्तु वे केवल प्रेम-पथ का निदर्शन कर सके। उनके आख्यानों में मनोविकारों के इतने भिन्न-भिन्न प्रकृतिस्थ स्वरूप नहीं दिखाई पड़ते जिन्हें हम किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय-विशेष का चरित्र अथवा शील कह सकें। गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित-मानस' के भीतर मनोविकारों की कई-कई अवसरों पर व्यंजना अभिव्यक्त करके इस एकरूपता को प्रत्यक्ष किया है। राम, भरत, लक्ष्मण, दशरथ और रावण, विभीषण, हनुमान, अहिरावण आदि कई पात्र ऐसे हैं जिनके स्वभाव की विशेषता कई अवसरों पर प्रदर्शित करके आचरण एवं भावों की एकरूपता द्वारा शील-निरूपण और चरित्र-चित्रण का सफल निर्वाह किया है।

तुलसी के पात्र तीन प्रकार के हैं—ये पात्र तीन श्रेणियों में विभक्त किए जा सकते हैं—सात्विक, राजस और तामस। सात्विक पात्रों को हम आदर्श पात्र कह सकते हैं। इस वर्ग के पात्र प्रायः निर्दोष एवं अनुकरणीय हैं। इन पात्रों के चरित्र हमारे लिए प्रत्येक परिस्थिति में अनुकरणीय हैं। 'राजस' पात्रों के अन्तर्गत सामान्य पात्र आते हैं—जैसे दशरथ, विभीषण, लक्ष्मण,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुग्रीव, कौशिल्या, कैकेयी आदि। तामस पात्र वे पात्र हैं जो एकदम खल पात्र हैं। ये सात्विक पात्रों के एकदम विपरीत हैं। इस दृष्टि से रावण प्रभृति राक्षस तामस पात्र कहे जाएँगे। जिस प्रकार सात्विक पात्र आदर्श चित्रण के भीतर आते हैं, उसी प्रकार ठेठ तामस पात्र भी आदर्श-चित्रण के अन्तर्गत आते हैं।

प्रकृति के अनुसार चरित्र-विभाग करने से गोस्वामीजी में हम दो प्रकार का चरित्र-चित्रण पाते हैं। राम, भरत, सीता, हनुमान और रावण आदर्श चित्रण के भीतर आते हैं तथा दशरथ, लक्ष्मण, सुग्रीव आदि सामान्य चित्रण के भीतर।

तुलसी का चरित्र-चित्रण और शील-निरूपण—गोस्वामीजी ने यह कार्य बहुत ही सावधानी के साथ एवं मनोयोग पूर्वक किया है। तीनों वर्गों के पात्रों को उन्होंने मानवोचित आदर्शों के अनुरूप चित्रित किया है। किसी स्थल पर एक भी पात्र यथार्थ की भूमि को छोड़कर आसमान का रास्ता बताता हुआ नहीं दिखाई देता है।

सात्विक पात्र—इस वर्ग के अन्तर्गत गुणों के भण्डार एवं निर्दोष पात्र आते हैं। इन्हीं के माध्यम से गोस्वामीजी ने अपने जीवनादर्शों एवं जीवन के मूल्यों को प्रस्तुत किया है। राम, भरत, सीता और हनुमान इस वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इन पात्रों के चरित्र पर विचार करके हम देखते हैं कि तुलसी अपने इस कार्य का सफल निर्वाह किस सीमा तक कर सके हैं।

राम—तुलसी के प्रबन्ध के प्रधान पात्र राम हैं। अतएव सर्वाधिक परिस्थितियों में होकर वे ही गुजरते हैं, सम्पूर्ण कथानक वस्तुतः इन्हीं के व्यक्तित्व के चारों ओर बुना हुआ दिखाई देता है। भिन्न-भिन्न मनोविकारों को उभारने वाले जितने अधिक अवसर राम के चरित्र में आते हैं उतने अन्य किसी पात्र के चरित्र में नहीं।

अनंत सौंदर्य एवं शक्ति के साथ धीरता, गंभीरता, कोमलता आदिक उदात्त गुणों का समावेश राम के व्यक्तित्व में किया गया है। यही उनका 'रामत्व' है। अपनी अनन्त शक्ति की स्वानुभूति ही उस उत्साह का मूल है जिससे वह बड़े-बड़े दुःसाध्य एवं दुष्कर कर्म करने में समर्थ होते हैं। राम के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यक्तित्व के उद्घाटन द्वारा गोस्वामी जी ने वस्तुतः हिन्दू समाज को इसी स्वानुभूति की प्रेरणा प्रदान की।

राम की सुन्दरता अनन्त, अपार एवं वर्णनातीत है। गो, गोचर और मन के द्वारा सौन्दर्य की जो कल्पना की जा सकती है, वह भी उनकी सुन्दरता के सम्मुख निंद्य है—

नील सरोरुह नीलमणि, नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि, कोटि-कोटि सतकाम।

उनकी वीरता का तो कहना ही क्या है? वह त्रैलोक्य विजयी रावण का वध करके विजय-श्री वरण करते हैं। तभी वह स्वर्ग जाते हुए जटायु को पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ रावण-वध की अग्रिम सूचना देते हुए कह देते हैं कि—

सीता हरण तात जनि, कहेउ पिता सन जाइ।
जो मैं राम तो कुल सहित, कहहि दसानन आइ॥

राम और लक्ष्मण दोनों ही अद्वितीय वीर हैं। वीरता की दृष्टि से दोनों में भेद करना कठिन है। परन्तु स्वभाव अथवा शील की दृष्टि से उनका पार्थक्य स्पष्ट है। धनुष-भंग के अवसर पर परशुराम-संवाद के प्रसंग में हमारे सामने लक्ष्मण का उग्र स्वभाव और राम का धीर एवं प्रशांत स्वभाव सामने आ जाते हैं। आगे आने वाले प्रसंगों में यह विभेद हमको बराबर दिखाई देता चलता है। तभी तो हम यह कह पाते हैं कि राम का स्वभाव धीर और गम्भीर था तथा लक्ष्मण का उग्र और चपल।

राम के धीरता एवं गम्भीरता युक्त सुशील अन्तःकरण की दो विशेषताओं की ओर ही संकेत कर देना पर्याप्त है। वह किसी भी व्यक्ति पर बुरे भाव का आरोप नहीं करते हैं तथा उनको कर्त्तव्याभिमान छूकर भी नहीं गया है। समस्त अवध-वासियों को लेकर भरत को चित्रकूट की ओर आते देख कर लक्ष्मण कह उठते हैं—

कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी। जानि राम बनवास एकाकी।
करि कुमंत्र मन, साजि समाजू। आए करइ अकंटक राजू।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और इस अनुमान पर तुरन्त ही उनकी त्यौरी चढ़ जाती है और वह यहाँ तक कह देते हैं—"सानुज निदरि निपातउँ खेता।"

परन्तु सुशीलता की मूर्ति राम के लिए इस प्रकार का आरोप लगाना तो दूर रहा, वह भरत की सुशीलता के प्रति पूर्णतः आश्वस्त रहते हैं। वह लक्ष्मण को समझाते हुए कहते हैं—

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा।
भरतहि होइ न राज-मद, विधि-हरि-हर-पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी-सीकरनि छीर-सिंधु बिनसाइ।

विभीषण के शरण में आते ही राम उसे लंकेश कहते हैं और तिलक करके लंका का राज्य दे देते हैं, परन्तु फिर भी उनके मन में संकोच होता है कि वनवासी होने के कारण साधन-सम्पत्ति विहीन मैं इसको कुछ भी नहीं दे सका—

जो सम्पदा सिव रावनहिं, दिए दीन्ह दस माथ।
सो सम्पदा विभीषनहिं सकुचि दीन्हि रघुनाथ।

राम किसी का अहित करना तो एक ओर रहा, किसी का अहित सोच तक नहीं सकते हैं। रावण के पास दूत-काज से जाते हुए अंगद को वह समझाते हुए कहते हैं कि—

रिपु सन करेहु बतकही सोई। काजु हमार तासु हित होई।

भक्तों को सबसे अधिक वश में करने वाला राम का गुण है शरणागत की रक्षा। शरणागति भारतीय संस्कृति और धर्म-भावना का बहुत बड़ा गुण माना जाता है इसके कारण भारत की प्रसिद्धि समस्त संसार में रही है। इसी के बल-भरोसे भक्त-जन अपने उद्धार की कामना करते आये हैं। शरणागत की रक्षा यहाँ प्राण देकर भी की जाती है। विभीषण को अपनी शरण में आया देखकर राम कहते हैं कि भले ही निसाचर है, शत्रु का भाई है, परन्तु मेरी शरण का अधिकारी है, क्योंकि—

सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पाप-मय, तिनहिं बिलोकत हानि।

शरणागत की चिंता रामचन्द्र के हृदय में उस समय भी बनी रहती है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जब वह दारुण शोक के समुद्र में डूबे हुए हैं। शक्ति-आहत मरणासन्न लक्ष्मण को देखकर वह कहते हैं कि—

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपति-बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको।
× × ×
गिरि-कानन जैहैं साखा-मृग, हौं पुनि अनुज-संघाती।
ह्वै है कहा बिभीषन की गति, रही सोच भरि छाती।

किम्बहुना, राम का चरित्र सर्वथा निर्मल एवं अनुकरणीय है। परन्तु साथ ही वह यथार्थ की भूमि पर भी आधारित है। यदि ऐसा न हो, तो राम किसी अन्य लोक के प्राणी प्रतीत होने लगें, उनका चरित्र मानव द्वारा करणीय एवं अनुसरणीय न रह जाए। सुमंत जब राम-लक्षण को वन में पहुचा कर अयोध्या के लिए लौटने लगते हैं, तब रामचन्द्रजी अपने पिता दशरथ के लिए अत्यन्त प्रेम और आदर भरा सन्देश भेजते हैं। लक्ष्मण को यह उचित नहीं लगता है। जिस निष्ठुर पिता ने स्त्री के कहने से सर्वथा निर्दोष एवं पूर्णतः शालीन पुत्र को वनवास दे दिया, उसके प्रति यह संदेश क्योंकर? वह पिता के प्रति कुछ कठोर वचन कह उठते हैं। इस पर राम उन्हें रोक देते हैं और सारथी से विनती करते हैं कि वह पिता से लक्ष्मण की ये बातें न कहें—

पुनि कछु लषन कही कटु बानी। प्रभु बरजेउ बड़ अनुचित जानी।
सकुचि राम निज सपथ दिवाई। लषन-सँदेसु कहिय जनि जाई॥

यहाँ 'सकुचि' शब्द बड़ा ही भावगर्भित एवं कवि की व्यावहारिक सूक्ष्म दृष्टि का सूचक है। मनुष्य समाजबद्ध प्राणी है। इस कारण उसको अपने ही आचरण पर लज्जा या संकोच का अनुभव नहीं होता है, अपने निकटस्थ-जनों के अनुचित आचरण पर भी होता है। तुलसी ने राम के मनमें लक्ष्मण की सम्बन्ध भावना से उत्पन्न संकोच की ओर संकेत किया है।

राम बालि को छिप कर मारते हैं। लोग इसे राम के उज्ज्वल चरित्र पर धब्बा बताते हैं। वाल्मीकि और गोस्वामीजी दोनों ने ही इस धब्बे पर सफेदी पोतने का प्रयत्न किया है। हमारे विचार से इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी। इस प्रकार के एक-दो धब्बे ही आदर्श चरित्र राम को कल्पना-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोक का प्राणी होने से बचाते हैं। उस समय यथार्थ का तकाजा ही यह था कि सीता को ले जाते हुए रावण को देखने वाले सुग्रीव को किसी प्रकार अपने पक्ष में किया जाए। राम के इस व्यवहार की समीक्षा करते हुए आचार्य शुक्ल ने बिल्कुल ठीक लिखा है कि—"वे ईश्वरता दिखाने नहीं आए थे, मनुष्यता दिखाने आए थे। भूल-चूक या त्रुटि से सर्वथा रहित मनुष्यता कहाँ होती हैं ? इसी एक धव्वे के कारण हम उन्हें मानव जीवन से तटस्थ नहीं समझते—तटस्थ क्या कुछ भी हटे हुए नहीं समझते। इसी प्रकार लक्ष्मण शक्ति के अवसर पर विलाप करते हुए राम एक ऐसी बात कह देते हैं जिससे उनके पुरुषोत्तमत्व के प्रति संदेह उत्पन्न होने लगता है—

जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू।

हमारे विचार से यह कथन राम के पुरुषोत्तमत्व को प्रमाणित ही करता है। जीवन का यथार्थ रूप ही यह है कि करुणा एवं शोक के प्रवाह में वड़े-वड़े ज्ञानियों का विवेक बह जाता है। शकुन्तला की विदा के अवसर पर यदि कण्व ऋषि साधारण जन की भाँति विलखते हुए न दिखाए जाते, तो वह मनुष्य कहे जाने के अधिकारी क्यों कर रह जाते ?

इसी प्रकार उक्त विलाप के अन्तर्गत राम लोक-व्यवहार-सम्वन्धी एक बड़े ही मार्के की वात कह देते हैं—

जैहउँ अवध कौन मुहु लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई।
बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं। नारि हरनि बिसेष छति नाहीं।।

रावण को मारने के पहले राम विभीषण की ओर देखते हैं—

मरइ न रिपु श्रम भयउ बिसेषा। राम बिभीषन तन तब देखा।।

आखिरकार क्यों ? उन्हें देखना है कि इस समय विभीषण के क्या मनोभाव हैं। आखिर तो भाई है। रावण की मृत्यु इसको दुःखकारक एवं अवांच्छनीय तो नहीं लग रही है। कहीं ऐसा तो नहीं कि विभीषण पीछे से छुरी-भोंकने की ताक में हो। इस ओर पाठक राम की व्यावहारिकता के प्रति आश्वस्त बना रहे, इसी कारण गोस्वामीजी अगली पंक्ति में ही बात साफ कर देते हैं—

उमा काल मर जाकी ईछा। सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राम के द्वारा सीता थी अग्नि परीक्षा भी यही द्योतित करती है कि तुलसी के राम समाज के कठोर यथार्थ के प्रति सदैव सजग बने रहते हैं।

भरत—राम और लक्ष्मण के चरित्र की अपेक्षा भरत का चरित्र आख्यान के भीतर बहुत कम व्याप्त है। उसको विकसित करने के अवसर अपेक्षाकृत बहुत कम आए हैं। परन्तु जितना भी है वह सर्वथा निर्दोष, निर्मल एवं उज्ज्वल है। उसमें राम से भी अधिक जो उत्कर्ष दिखाई देता है, उसका कारण बहुत कुछ उनके चरित्र की अपूर्णता है। परन्तु यह समझ लेना चाहिए कि भरत के चरित्र से बढ़ कर शील की कसौटी हो ही नहीं सकती।

राम-वन-गमन के बाद ही वह हमारे सामने आते हैं और राम-वन-गमन के प्रसंग के साथ अपनी माता के सम्बन्ध से अपना सम्बन्ध जुड़ा देखकर वह स्तम्भित रह जाते हैं। यहीं से उनके उज्ज्वल अन्तःकरण का उद्घाटन होता है। चित्रकूट में लोकादर्श राम के सम्मुख वह अपना अन्तःकरण खोलकर रख देते हैं। उस आदर्श के भीतर अपने हृदय की निर्मलता देखकर शान्त हो जाते हैं और धर्म-मर्यादा की रक्षा करने की दृढ़ता प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु वह योंही नहीं लौटते हैं। राम न सही, तो राम की खड़ाऊँ लेकर लौटते हैं। राम की पादुकाओं को सिंहासन पर प्रतिष्ठित करके राज-काज करने लगते हैं। प्रश्न उठता है कि वह ऐसा क्यों करते हैं? गद्दी पर बैठ जाते और राम के आने पर वह सिंहासन खाली कर देते। ऐकान्तिक साधना की दृष्टि से यह बात ठीक हो सकती है, परन्तु लोक-पक्ष की दृष्टि से वही ठीक है, जो भरत ने किया। राम के लौटने पर भरत राम को राज्य अवश्य लौटा देते, परन्तु वनवास के १४ वर्षों तक प्रजाजन के मन में भरत के प्रति क्या सन्देह न बना रहता? और फिर राज्य लक्ष्मी तो राज्य लक्ष्मी है। चौदह वर्षों तक राजा रहकर यदि भरत कदाचित् उसके प्रति एक प्रतिशत भी आसक्त हो जाते, तो फिर तुलसी के भरत कहाँ से आते? लोक के यथार्थ पर दृष्टि रखकर ही तो तुलसी ने आदर्श का निर्माण किया है। इसी कारण 'रामचरितमानस' के पात्रों के शील निरूपण और चरित्र-चित्रण में हमको आत्म पक्ष और लोक पक्ष दोनों का समन्वय दिखाई देता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजस पात्र—इस वर्ग के अन्तर्गत दशरथ, लक्ष्मण, विभीषण सुग्रीव और कैकेयी आते हैं। इन पात्रों में हम देखते हैं कि तुलसी ने आदर्श और यथार्थ का निर्वाह किया है। ये पात्र मानवोचित दुर्बलताओं से युक्त होने के कारण हमारे अधिक निकट दिखाई देते हैं। इस वर्ग के पात्रों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण पात्र दशरथ हैं। वह राम को वनवास देकर सत्य की रक्षा और प्रतिज्ञा का पालन हृदय पर पत्थर रखकर करते हैं। इसके उपरान्त वह स्नेह के निर्वाह में तत्पर दिखाई देते हैं और प्रिय पुत्र के वियोग में प्राण त्याग कर देते हैं। राम भरत को समझाते हुए इस विषय को स्पष्ट करके कहते हैं—

राखेउ राउ सत्य मोहिं त्यागी। तनु परिहरेउ प्रेम-पनु लागी।

बुद्धि-विवेक हमें आदर्श के आसमान की ओर प्रेरित करती है। हमारी भावना हमें यथार्थ की जमीन की ओर खींचती है। इसी का समन्वय दशरथ के चरित्र एवं शील की विशेषता है। नियम और शील, आत्मपक्ष और लोकपक्ष के समन्वय द्वारा धर्म की सर्वतोमुख रक्षा 'रामचरितमानस' का गूढ़ रहस्य है।

दशरथ के चरित्र के भीतर गोस्वामीजी ने बड़े ही चातुर्य के द्वारा यह बात स्पष्ट की है कि छोटी सी दुर्बलता कितने बड़े अहित का कारण बन सकती है, उसके कारण मनुष्य को कितने लाञ्छन एवं पश्चाताप सहने पड़ सकते हैं? दशरथ कामी पुरुष थे, कैकेयी में स्वार्थ था, दोनों को किन काँटों के मार्ग से होकर निकलना पड़ता है। लक्ष्मण में क्रोध है। उन्हें क्रोध करके बार-बार पछिताना पड़ता है। चित्रकूट में ससैन्य भरत-आगमन का समाचार पाकर वह आपे के बाहर हो जाते हैं। तुरन्त ही उनका अन्तःकरण उन्हें धिक्कार उठता है—

सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं।

सुग्रीव विलासी है। इस कारण लक्ष्मण का कोप-भाजन बनता है। विभीषण भक्त है परन्तु उसमें दृढ़ता का अभाव है। इस कारण उसका शील औसत दर्जे का है। वह राम द्वारा दिए गए भाई के राज्य को स्वीकार कर लेता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तामस पात्र—सच्चे अर्थ में तामस पात्र केवल रावण है। वह आदर्श तामस पात्र है। वह अहंकारी, कामी, मदोन्मत और लोकपीड़क है। वह एक ऐसा खल था जिसकी ललकार पर भगवान को पृथ्वी पर आना पड़ा। यदि राम-राम थे, तो रावण-रावण था। उसके प्रताप और ऐश्वर्य का आधार भी धर्म था। उसको इतना महान बनाने वाला धर्म का अंग था—कष्टसहिष्णुता। इसी को हम तपस्या कहते हैं। उसका धर्म केवल अपने दल के लिए शक्ति अर्जित करने वाला धर्म था, समाज में उस शक्ति का सदुपयोग करने वाला धर्म नहीं था। वह धीर, वीर, पण्डित, तपस्वी, राजनीतिज्ञ था। परन्तु उसने अपने समस्त गुणों का दुरुपयोग किया। उसके मरने पर उसका तेज राम के मुँह में समा गया—

तासु तेज समान प्रभु आनन। हरषे देखि सम्भु चतुरानन।

मरते समय उसके मुख से 'राम ही निकला—कहाँ रामु रन हतौं पचारी।'' सत् से निकलने वाली जो शक्ति असत् रूप हो गई थी, वह फिर सत् में विलीन हो गई। यही यथार्थ का आदर्श में उनका है, और आत्म-धर्म एवं लोक धर्म का समन्वय है।

लक्ष्मण और परशुराम के संवाद के अन्तर्गत भी हमको गोस्वामीजी का यथाथ के प्रति लगाव दिखाई दे जाता है। लक्ष्मण ने परशुराम से दुर्वाद कहे, क्योंकि वह ब्राह्मणोचित वेश में नहीं थे। वह यदि मुनियों की भाँति शान्त और क्षमाशील रूप में आते, को लक्ष्मण को बाल-वृत्ति दिखाने का मौका क्योंकर मिलता? रामचन्द्रजी स्थिति को स्पष्ट कर देते हैं—

जौं तुम अवतेहु मुनि की नाईं। पद-रज सिर सिसु धरत गोसाईं।
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिय बिप्र उर कृपा घनेरी॥

तुलसी के चरित्र-चित्रण एवं शील-निरूपण की मौलिकता—

समस्त पात्र राम-भक्ति अथवा राम की प्राप्ति करते हैं। राम की प्राप्ति सात्त्विक, राजस और तामस पद्धतियों द्वारा दिखाई गई है। समस्त पात्रों में आदर्श-भावना झाँकती हुई दिखाई देती है। उदाहरण के लिए वनवास के अवसर पर वाल्मीकि के लक्ष्मण पिता दशरथ के प्रति कटु शब्दों का प्रयोग करते हैं तथा यहाँ तक कह देते हैं कि मैं विवेकहीन × × पिता को अवश्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मार डालूंगा। इसी प्रकार 'अरण्य-काण्ड' में सीता लक्ष्मण के चरित्र पर सन्देह करती हुई दिखाई देती हैं, परन्तु तुलसी की केवल इतना कहते हैं—

मरम वचन तब सीता बोला। हरि प्रेरित लछमन मन डोला।

आखिरकार सीता के अप्रिय वचनों को पाठकों के सामने रखने में लाभ ही क्या था?

युद्ध की समाप्ति पर वाल्मीकि के राम सीता से कहते हैं कि "हे जानकी! अब तुमसे कुछ मतलब नहीं। दशों दिशाएँ पड़ी हैं, चाहे जहाँ जाओ—लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न सुग्रीव व विभीषण, जिस पर तुम्हारा मन हो, उसी को अपना लो।" परन्तु इस स्थिति को तुलसी साफ बचा जाते हैं। वह शालीनता के आदर्श राम के मुख से दुर्वाद कहलाते भी, तो क्यों कर? वह केवल इतना लिखकर बात समाप्त कर देते हैं—

तेहि कारन करुनानिधि, कहे कछुक दुर्वाद।
सुनत जातुधानी सबै, लागीं करन विषाद।।

जातुधानियों के मध्य सीता इतने दिन तक रही थीं। वे जानती थीं कि सीता कैसी है। इसी कारण वानर-भालुओं के विषाद की चर्चा न करके तुलसी ने जातुधानियों के विषाद का उल्लेख किया है। असली बात यह है कि तुलसी नहीं चाहते हैं कि विकारों को उत्पन्न करने वाली कोई बात पाठकों के सम्मुख रखी जाए। आदर्शोन्मुख यह पद्धति गोस्वामीजी आद्योपान्त अपनाते हैं।

निष्कर्ष—हम देखते हैं कि पात्र और उनके चरित्र के प्रस्तुतीकरण में आदर्श-निर्वाह का, शिष्टाचार, शालीनता और मर्यादा का जितना ध्यान तुलसी ने रखा है, उतना ध्यान कदाचित् ही किसी अन्य कवि ने रखा हो। यह ठीक है कि उनके पात्रों में 'यथार्थ' की झलक अपेक्षाकृत कम हो, परन्तु हमें यह समझ लेना चाहिए कि काव्य के अनुधावन द्वारा हम जीवन की गन्दगी से निकलकर खुली हवा में आना चाहते हैं। तुलसी ने हमें ऐसे ही पात्र प्रदान किये हैं, जो हमें आदर्श जीवन के मापदण्ड देने में समर्थ हैं। यही तुलसी की श्रेष्ठता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुलसी ने समाज को यह आश्वासन दिया कि रावणों का नाश निश्चित है। जब लोक में रावण सदृश अत्याचारी और अन्यायी राजा दिखाई दें, तब समझ लेना चाहिए कि 'राम' का आविर्भाव होने ही वाला है। परन्तु रावण का नाश करने के लिए पुरुषार्थ करना होगा, राम की भाँति संगठन और हनुमान की भाँति निस्स्वार्थ भाव से कर्तव्य पालन करना होगा, लक्ष्मण की भाँति जूझना होगा, कठोर व्रत पालन करना होगा, विलासिता का परित्याग करना होगा।

चरित्र-चित्रण एवं शील निरूपण द्वारा लोक मंगल की ऐसी साधना अन्यत्र दुर्लभ है। तुलसी की लोकप्रियता का यही रहस्य है। उन्होंने आत्म-पक्ष और लोकपक्ष का जो समन्वय प्रस्तुत किया है, वह अप्रतिम है। यह कथन अक्षरशः सत्य है कि "तुलसी के पात्र कोरे आदर्श नहीं हैं। उनमें जीवन के यथार्थ पक्ष भी प्रकट हुए हैं।"

प्रश्न ५७—तुलसी के काव्य में लोक पक्ष और संस्कृति का विचार करते हुए सिद्ध कीजिए कि ऐसी सर्वांग पूर्ण रचना किसी कवि ने नहीं की।

उत्तर—तुलसी के काव्य के अन्तर्गत हमको भारतीय संस्कृति के समग्र रूप के दर्शन होते हैं—गोस्वामी तुलसीदास का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'रामचरितमानस' है। उसमें मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीरामचन्द्र के सम्पूर्ण जीवन का 'सांगोपांग' चित्रण किया गया है। इस कारण इस प्रवन्ध के अन्तर्गत उनको जीवन की अनेकानेक प्रायः समस्त स्थितियों-परिस्थितियों के समावेश के अवसर प्राप्त हुए और उन्होंने उन अवसरों का वर्णन करते समय कवि-कर्म का सफल निर्वाह किया। उन्होंने अपने 'रामचरितमानस' के अन्तर्गत कला के काव्य, उच्च एवं उदात्त स्वरूप को प्रकट किया, उनकी कला कहीं ही निम्न कोटि की वृत्तियों को नहीं उभारती है। उनकी कला की पृष्ठभूमि में भारतीय दर्शन स्थित है। उनके कला-सौष्ठव के पीछे हमको भारतीय दर्शन का नयनोन्मीलन दृष्टिगत होता है। तुलसी के काव्य में वेदों का ज्ञान, उनके प्रतिपादित आचार धर्म आदि पुंजीभूत हैं। उनके समय तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दुओं के जो कुछ भी श्रेष्ठ और स्पृहणीय था, उस सबका समन्वय हमें उनके काव्य में मिलता है।

गोस्वामी जी ने पौराणिक संस्कृति परम्परा को सबल समर्थन प्रदान किया—हम देखते हैं कि तुलसी के काव्य में कला और दर्शन सम्बन्धी जितनी सामग्री किसी अन्य कवि के काव्य में प्राप्त नहीं होती है। साहित्य, धर्म, दर्शन, अर्थ शास्त्र, राजनीति, इतिहास आदि विषयों के विद्यार्थी के लिए उसमें भरपूर सामग्री विद्यमान है। इतना सब होने पर भी उनके काव्य में प्रधान स्वर हमको भारतवर्ष की पौराणिक संस्कृति का सुनाई देता है। वह हिन्दू-धर्म के वर्णाश्रम धर्म के प्रबल समर्थक के रूप में दिखाई देते हैं। वह वर्णाश्रम धर्म द्वारा प्रतिपादित प्रायः प्रत्येक बात का समर्थन करते हुए दिखाई देते हैं। वह यहाँ तक कह देते हैं कि "पूजिय विप्र वेद गुन-हीना।"

तुलसी का लोक-धर्म आत्म-सुधार परक है—कुछ व्यक्तियों को उक्त प्रकार के कथनों में तुलसी का 'ब्राह्मणवाद' अथवा अनुदार दृष्टिकोण दिखाई देता है। कुछ आलोचक वर्णाश्रम धर्म को अभिशाप मानकर यह कहते देखे जाते हैं कि तुलसी हिन्दू धर्म की प्रत्येक बेवकूफी का समर्थन करते हैं। इस सम्बन्ध में हमारा यह निवेदन है कि तुलसी के कथनों पर उनके समय की परिस्थितियों के सन्दर्भ में विचार करना चाहिए। वह यह नहीं कहते थे कि गुह निषाद और शबरी पढ़े नहीं। उनका परामर्श यह था कि वे पढ़कर अपने पढ़ाने वालों के प्रति विनम्र बने रहें। यदि छोटे मुँह बड़ी बात कहने की छूट दे दी जाएगी, तो समाज में अशांति हो जाएगी। कागभुशुण्डिजी को यदि काव्य-योनि में ही मोक्षपद प्राप्त हो गया, तो क्या आवश्यकता है कि वह अपना नाम हंसराज बदल दें और काक होने पर गर्व न करें? इसी मनोवृत्ति को लक्ष्य करके इन्होंने लिखा था कि—

बादहिं शूद्र द्विजन सन हम तुमसे कछु घाट।
जानहिं ब्रह्म सो विप्र वर आँख दिखावहिं डाँट॥

आज के जनतन्त्र के गणराज्य में यद्यपि प्रत्येक घटक को समान अधिकार और समान अवसर प्राप्त हैं, तथापि यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको प्रधान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्त्री समझ बैठे, तो लोक-व्यवहार की मर्यादा किस प्रकार निर्धारित होगी, यह एक गम्भीरतापूर्वक विचारणीय प्रश्न है। तुलसी यदि अनुदार होते, तो उनके राम गुह-निषाद, वानरों, राक्षसों आदि प्रत्येक वर्ग के प्राणी को अपने गले न लगाते, गिद्ध जटायु को पितृवत् सम्मानित न करते अथवा शवरी के जूठे वेर न खाते। तुलसी के श्रेष्ठ ब्राह्मण वशिष्ठ जी भी गुह-निषाद को अपने हृदय से लगाते हुए दिखाई देते हैं।

वात यह है कि तुलसी विकासवादी हैं, क्रान्तिकारी नहीं। वह व्यक्ति के सुधार पर वल देते हैं, और प्रचलित व्यवस्था में सुधार करने के पक्षपाती हैं, वह नहीं चाहते कि नई व्यवस्था की सुनिश्चित रूपरेखा के अभाव में प्रचलित व्यवस्था को भंग कर दिया जाय।

कुछ व्यक्तियों का कहना है कि तुलसी हिन्दूवादी थे। उन्होंने कवीर, नानक और दादू की भाँति हिन्दू-मुसलमान एकता पर वल नहीं दिया और न अछूतोद्धार पर ही वल दिया। इस सम्वन्ध में निवेदन है कि ब्राह्मणवाद और हिन्दूवाद जितने अहितकारी हो सकते हैं, उतने ही अहित का कारण इनका अकारण विरोध भी हो सकता है। कुछ नारों के आधार पर यदि शास्त्र सम्मत प्रत्येक वात को प्रतिक्रियावादी ही कहकर झुठलाना है, तव तो कुछ कहना ही नहीं है, अन्यथा हमको देखना यह चाहिए कि उस समय की मांग क्या थी और किस सीमा तक उस मांग को पूरा कर सके। उन दिनों आज की तरह हिन्दू समाज मुसलिम संस्कृति को भारतीय संस्कृति और अपने आप को मुसलमानों का भाई नहीं मान सका था। यद्यपि कवीर सदृश कवि हिन्दू-मुसलमान एकता का प्रतिपादन कर चुके थे, तथापि उनका प्रभाव बहुत ही सीमित क्षेत्र में था। जव आज नित्य साम्प्रदायिक दंगे होते रहते हैं, तव उन दिनों का कहना ही क्या था ? तुलसी यथार्थ द्रष्टा थे। वह वस्तुस्थिति के अनुसार व्यक्ति को सुधार के मार्ग पर लाने के पक्षपाती थे। वह जानते थे कि 'एकता' पर व्याख्यान दिए बिना यदि 'एकता' लाने वाले गुणों की चर्चा को जायगी, तो एकता अधिक सरलता से स्थापित हो सकेगी। इसी दृष्टि से उन्होंने अपने काव्य में प्रत्येक क्षेत्र में समन्वय का प्रतिपादन किया और पारस्परिक सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया। वह विश्व-वन्धुत्व की शिक्षा देने के पहले भाई-भाई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को भाई की भाँति व्यवहार करते देखना चाहते थे। हम यदि तुलसी के लोक-धर्म पर इस दृष्टिकोण से विचार करेंगे, तो हमें निराश नहीं होना पड़ेगा। वह वस्तुतः आत्म-विकास के द्वारा लोक-कल्याण का स्वप्न देखते थे। लंका कांड में विभीषण के प्रति धर्मरथ का निरूपण करते समय उनके राम स्पष्ट कह देते है कि रावण तुम्हारे दूषित मन की छाया है, मन का कल्याण ही हमें लोक में शुद्ध रूप दृष्टिगोचर होता है—

सखा धर्म मय अस रथ जाकें। जीतन कहं न कतहुँ रिपु ताकें॥

जिस व्यक्ति की आत्म-चेतना इतनी विकसित होगी, वह किसी को क्यों कर शत्रु मानेगा ? तुलसी न मुसलमानों को दुश्मन समझते थे और न शूद्रों को त्याज्य। वह चाहते यह हैं कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी स्थिति से संतुष्ट रहकर अपने-अपने कर्तव्य का पालन करें। यही उनका रामराज्य था—

सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।

× × ×

नहिं दरिद्र नहिं दुःखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।
सब गुनाग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी।

इतने पर भी जो आलोचक यह कहते हैं कि अच्छा और प्रिय व्यवहार करो, निषाद के साथ राम ने जैसा किया, परन्तु निषाद पढ़ने के लिए कहे तो ? तो तुलसी एक दम मना कर देंगे उनकी समझ की दवा ही क्या है ? अशिक्षित निषाद को तुलसी गुनाग्य, पंडित तथा ज्ञानी कह रहे हैं ? उनका लोक-धर्म वस्तुतः शील, सदाचार और कृतज्ञता की त्रिवेणी में होकर बहता था और इसी त्रिवेणी को भारत के घर-घर में प्रवाहित करके वह जन-मन का रंजन करना चाहते थे—

मज्जन फल पेखिय तत्काला। काक होहिं पिक बकउ मराला।

परन्तु उनकी यह सुनिश्चित मान्यता थी कि व्यक्ति साधना पर बल दे, सिद्धि पर नहीं। इसी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर उन्होंने विद्या बेचने वाले ब्राह्मण की कठोरतम शब्दों में निन्दा की और बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को काग भुशुण्डि के दरवाजे पर माथा टेकने को विवश किया। परन्तु गुरु का अपमान उनकी धर्म-भावना सहन न कर सकी "नीति बिरोध सोहाई न मोही।" जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नीति धर्म और लोक मर्यादा का पालन न करें, वह मनुष्य कहे जाने योग्य नहीं—

पर द्रोही पर दार रत, पर धन पर अपवाद।
ते नर पाँवर पापमय, देह धरें मनुजाद।

तुलसी का काव्य जीवन की प्रत्येक स्थिति में अवलंब प्रदान करने वाला है—

तुलसीकृत 'रामचरितमानस' उत्तर भारत की जनता का कण्ठहार है। कथा और उसके अखण्ड पाठ हमारे लोक-जीवन के अभिन्न अंग बन गए हैं। जहाँ कहीं हमको जन-समुदाय सिर हिलाकर झूमता हुआ और आनन्द मग्न होकर नयनाम्बु प्रवाहित करता दिखाई पड़े, हमको समझ लेना चाहिए कि वहाँ रामचरितमानस का पाठ हो रहा है। 'रामचरित मानस' की इस लोक-प्रियता का रहस्य यह है कि उसका रचयिता सच्चा भावुक है, वह मानव मन में उठने वाले सूक्ष्मतम मनोभाव से परिचित है और उसके द्वारा प्रगति काव्य का जन-मानस के ऊपर सर्वग्राही अधिकार है। उसमें व्यक्ति को जीवन की प्रत्येक स्थिति से सम्बद्ध कथन उपलब्ध होते हैं, उसमें उसको जीवन की प्रत्येक समस्या का समाधान प्राप्त होता है।

पारिवारिक कलह को बचाने के लिए हमें राम-भरत, लक्ष्मण, जानकी के चरित्र से सम्बन्धित न मालूम कितनी चौपाइयाँ स्मरण हो आती हैं राम-वन-गमन के अवसर पर यदि लक्ष्मण घर पर रुक जाते तो क्या और कितना अनर्थ न हो सकता था? उस अवसर पर सुमित्रा की एक ही उक्ति समस्त भावी अनिष्ट की आशंका को समाप्त कर देती है—

तुम्हरहिं हेतु राम वन जाहीं। आन हेतु कछू दूसर नाहीं।

हम जब 'समाज में नारी का स्थान' विषय पर वाद-विवाद करने लगते हैं तो कौशिल्या की एक ही पंक्ति हमारी समस्या का समाधान कर देती है—

जो केवल पितु आयसु ताता। तो जनि जाहु जानि बड़ माता।

कुशासन को देखकर हम गांधीवादी शैली में तुरन्त ही राजा का अहित चिन्तन किए बिना ही उसके राज्य के प्रति विरोध प्रकट कर देते हैं—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवशि नरक अधिकारी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मित्र का कर्त्तव्य निर्धारित करते समय हमें ये पंक्तियाँ याद आ जाती हैं—

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी।

हम जब आवेश में आकर कोई काम करना चाहते हैं, उस समय हमारे हृदय में विराजमान देवता आकाशवाणी स्वरूप हमारी विचारधारा को यह कह कर बदल जाता है—

सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं वेद बुध ते बुध नाहीं।

धर्म की परिभाषा हमारे विवाद का विषय प्रायः मन जाती है, क्योंकि आधुनिक प्रबुद्ध व्यक्ति धर्म को सम्प्रदाय के अथवा लोकाचार के समकक्ष मान बैठता है। तुलसी द्वारा प्रस्तुत पंक्तियाँ धर्म के स्वरूप को एकदम स्पष्ट कर देती हैं—

परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।

किम्बहुना 'रामचरित-मानस' में हमें प्रत्येक स्थिति का समाधान उपलब्ध हो जाता है। जब अवश्यम्भावी के सम्मुख हम विवश हो जाते हैं, तो तुलसी की इस उक्ति को दोहराकर अपने मन को समझा लेते हैं—'कर्म प्रधान विस्व कर राखा' अथवा (होइहैहि वही जो राम रचि राखा।) अस्तु।

तुलसी की लोक-संस्कृति वस्तुतः मानव-संस्कृति है

गोस्वामीजी के आविर्भाव के समय अनेक सम्प्रदायों की आपसी खींचतान के कारण आर्य धर्म का व्यापक स्वरूप आंखों से ओझल हो रहा था और व्यक्तिवादित्व के कारण धर्म का सामान्य स्वरूप तिरोहित हो चला था। उस समय गोस्वामीजी ने लोक संस्कृति के सब पक्षों का ऐसा समन्वय प्रस्तुत किया जिससे समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों के व्यक्ति अपनी-अपनी प्रकृति और विद्या-बुद्धि के अनुसार संस्कृति का स्वरूप ग्रहण कर सकें और मानव समाज के लिए लोक-संस्कृति का सामान्य स्वरूप प्रतिष्ठित हो जाए। तुलसी की विशेषता यही है कि उन्होंने संसार जैसा है, वैसा मानकर, उसके एक-एक कोने को स्पर्श करने वाली मानव-संस्कृति और उसको कार्य रूप में परिणत करने वाले लोक-धर्म के स्वरूप की प्रतिष्ठा की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानव-संस्कृति के प्रति आस्था रखने वाला कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो लोक मर्य्यादा का उल्लंघन समाज की व्यवस्था का तिरस्कार, अनधिकार चर्चा, साधुता का मिथ्या दंभ, मूर्खता छिपाने के लिए ज्ञानियों की निंदा, छोटे मुँह बड़ी बात कहना—इन सब बातों को देखकर गोस्वामीजी की भांति दुःखी न होंगे ?

गोस्वामीजी के लोक-धर्म और उनकी लोक-संस्कृति के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन द्रष्टव्य है—साधुमत का अनुसरण व्यक्तिगत साधन है, लोकमत लोक शासन के लिए है। इन दोनों का सामंजस्य गोस्वामीजी की धर्म भावना के भीतर है। चित्रकूट की सभा में भरत की ओर से जो प्रस्ताव वशिष्ठजी करते हैं, उसके संदर्भ में राम का कथन लोक-धर्म के इस समन्वित स्वरूप को सजीव कर देता है—

भरत-विनय सादर सुनिय करिय विचार बहोरि।
करब साधुमत, लोकमत, नृपनय निगम निचोरि।

तुलसी के लोकवाद में व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता है। वह व्यक्ति के आचरण पर इतना ही प्रतिबंध चाहते हैं जितने से दूसरों के जीवन में बाधा न पड़े और हृदय की उदात्त वृत्तियों के साथ लौकिक सम्बन्धों का सामंजस्य बना रहे। सामान्य नारी के लिए उनका उपदेश वही है जो ऋषि बधू अनुसूया ने 'सरल बानी' से सीताजी को दिया था। परन्तु मीरा सदृश नारी को वह गृह-त्याग का उपदेश देते है—

जाके प्रिय न राम वैदेही,
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।
× × ×
जासों होय सनेह राम-पद एतो मतो हमारो।
(विनय-पत्रिका)

निष्कर्ष—पारमार्थिक दृष्टि से तो सारा जगत राममय है पर व्यावहारिक दृष्टि से उसके राम और रावण दो पक्ष हैं। राम के स्वरूप के प्रति उन्मुख होना तुलसी के लोक धर्म का लक्षण है। रावण के बलवान हो जाने पर राम के आविर्भाव के प्रति आश्वस्त बना रहना उनकी लोक-संस्कृति की संजीवनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शक्ति है। जिस सुसंस्कृत हृदय में धर्म रूप भगवान की करुणा पूर्ण विश्वास हो, नैराश्य का दुःख उसके पास फटक नहीं सकता—

दीजै दादि देखि ना तो बलि मही मोद-मंगल रितई है।

इस विश्वास के बल पर ही वह मान लेते हैं कि 'राम राज्य' हो गया और लोक में मंगल-वर्षा हो गई—

भरे भाग अनुराग लोक कहै राम अवध चितवनि चितई है।

प्रश्न ५८—भारतवर्ष का लोक नायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके। बुद्धदेव समन्वय कारी थे, गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसी समन्वयकारी थे। गोस्वामी तुलसी दास की इस समन्वयवादी की विवेचना कीजिए।

अथवा

प्रश्न ५९—तुलसीदास एक महान समन्वयवादी कवि और सुधारक थे। इस कथन की सोदाहरण सत्यता प्रमाणित कीजिए।

अथवा

प्रश्न ६०—"गोस्वामी तुलसीदास युगद्रष्टा और लोकनायक थे।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ६१—"अपने समय की विषम परिस्थितियों में समन्वय की विराट चेष्टा को लेकर ही गोस्वामी तुलसीदास लोक नायक हो सके।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ६२—"बुद्धदेव के पश्चात् भारतवर्ष में सबसे बड़े लोकनायक गोस्वामी तुलसीदास थे।" आचार्य ग्रियर्सन के इस कथन पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

उत्तर—गोस्वामी तुलसीदास अपने समय के सबसे बड़े समन्वय कारी थे—

गोस्वामीजी के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी समन्वय-भावना। उनके काव्य के अन्तर्गत हमको जीवन और काव्य-कला के प्रत्येक पक्ष का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समन्वय प्राप्त होता है। उनकी रचनाओं में मानव-जीवन की अनेकानेक दशाओं का सन्निवेश एवं सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण पाया जाता है। अपने दृष्टि-विस्तार के कारण ही वह उत्तर भारत की समग्र जनता के हृदय में पूर्ण प्रेम और श्रद्धा के साथ प्रतिष्ठित हैं। प्रायः अन्य सभी कवि तो जीवन का केवल एक पक्ष लेकर चलते हैं, परन्तु गोस्वामीजी की वाणी की पहुँच मनुष्य के समस्त भावों एवं व्यवहारों तक है। इनकी कविता में अपने समय में प्रचलित काव्य-भाषाओं के समस्त रूपों (व्रजभाषा और अवधी के लोक-प्रचलित एवं परिनिष्ठित दोनों रूपों) का समावेश है तथा परम्परा से चली आई हूई प्रचलित काव्य-शैलियों के समस्त रूपों (छप्पय शैली कवित्त-शैली, दोहा-चौपाई की प्रबन्ध शैली, दोहा की उपदेश शैली तथा रहीम की बरवा शैली, का सुखद प्रयोग पाया जाता है। तुलसीदास का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं लोक-प्रिय ग्रन्थ 'रामचरित मानस' है। इसमें प्रबन्ध काव्य के समस्त अवयवों (इतिवृत्त, वस्तु-व्यापार-वर्णन, भाव-व्यंजना, संवाद आदि) का सफल निर्वाह मिलता है। उन्हें मार्मिक स्थलों की पूर्ण पहिचान है। इस प्रकार उनके काव्य-कौशल में हमको प्रन्वध-पटुता और भावुकता का समाहार प्राप्त हो जाता है। प्रेम और शृंगार का ऐसा शिष्ट एवं मर्यादित वर्णन जो विना किसी लज्जा और संकोच के सबके सामने पढ़ा जा सके, गोस्वामी जी का ही है। हरिऔध ने ठीक ही लिखा है—"कविता करिके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला।" इतना ही नहीं, हमें उसमें अपने समय में प्रचलित उपासना-पद्धति के दोनों रूपों—रामोपासना एवं कृष्णोपासना—का सुन्दर समन्वय उपलब्ध होता है।

गोस्वामीजी की वाणी में हमको जीवन-दर्शन के समस्त पक्षों का भी समन्वय प्राप्त होता है। इनके काव्य में ज्ञान और भक्ति का, ज्ञान के विविध दार्शनिक सिद्धान्तों (अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत) का, भक्ति के विविध रूपों (सगुण भक्ति, निर्गुण भक्ति) का तथा व्यक्ति और समाज का पूर्ण समन्वय उपलब्ध होता है—"इनकी कविता में व्यक्तिगत साधना के साथ ही साथ लोकधर्म की अत्यन्त उज्ज्वल छटा वर्तमान है।"

"ज्ञानहिं भक्तहिं नहिं कछु भेदा, उभय हरहिं भव सम्भव खेदा।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रभृति वाक्यों में ज्ञान और भक्ति का समन्वय दिखाई देता है। 'सोइ जानै जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होइ जाई आदि वाक्यों में भक्ति और ज्ञान के साध्य की एकरूपता परिलक्षित होती है। 'विनयपत्रिका' में बार-बार वह कहते हैं कि अनेक साधन हैं, अनेक सिद्धान्त हैं, सब सत्य हैं, कोई भी झूठा नहीं है। परन्तु मन को विश्राम तभी मिलता है, जब प्रभु की कृपा होती है और साधक विवेचन विश्लेषण के परे पहुँच जाता है—

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोऊ मानै।
तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै।

वह सगुण और निर्गुण को सापेक्ष-एक ही सिक्के की दो पीठें मानते हैं—

ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास।
निर्गुण कहै सगुन बिनु, सो गुरु तुलसीदास॥

उनके विचार से निर्गुण और सगुण रूप 'नाम' के दो सिरे हैं, दो "तदैजति, तन्नैजति" की भाँति एक भी हैं और पृथक् भी हैं—

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी।

उन्होंने माया और भक्ति का भी समन्वय कर दिया—

ताकर भेद सुनहु तुम सोऊ। माया अपर अविद्या दोऊ।
× × ×
माया भगति सुनहु तुम दोऊ। नारिवर्ग जानहिं सब कोऊ।

—इत्यादि

सारांश यह है कि तुलसीदास ने काव्य में वर्णित भक्ति-पद्धति के अन्तर्गत धर्म और ज्ञान दोनों की रसानुभूति पाई जाती है। चित्त की एकाग्रता के लिए 'योग' की आवश्यकता होती है। अतः उसके अन्तर्गत यथास्थान 'योग-साधना' का भी समावेश पाया जाता है।

बुद्धदेव के पश्चात् भारतीय जनता के लोकनायक तुलसी ही हुए— गौतम बुद्ध के आविर्भाव के समय भारतीय समाज विशृंखल होगया था। वेद-धर्म तिरोहित होगया था और कर्म-कांड छा गया था। यज्ञ के नाम पर हिंसा प्रचलित थी और धर्म एवं ज्ञान के स्वरूप अव्यवस्थित हो गए थे। गौतम बुद्ध ने अपने मध्यम मार्ग का प्रतिपादन करके धर्म का सामान्य स्वरूप स्थिर किया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और 'दुःखवाद' के प्रतिपादन द्वारा पारस्परिक विद्वेष को दूर किया। उन्होंने अष्टसूत्रीय साधन-पद्धति का प्रवर्तन करके जन-मन में सदाचार की साधना के प्रति जागृति उत्पन्न की और विश्व-मैत्री एवं मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया। उन्होंने अपने युग की आवश्यकताओं को देखते हुए आत्मा, परमात्मा, मोक्ष आदि की चर्चा न करके सद्पथ के स्वर्ण सोपानों के माध्यम से 'निर्वाण' प्राप्ति का मार्ग बताया।

गौतम बुद्ध के पश्चात् कई सौ वर्षों तक भागवत् धर्म भारतीय समाज की रक्षा करता रहा। परन्तु हर्षवर्धन के पश्चात् केन्द्रीय शासन की भावना समाप्त हो जाने पर यहाँ का राजनीतिक जीवन विशृंखल हो गया। उधर मुसलमानों के आक्रमण लगातार होते रहे। यहाँ की संस्कृति, धर्म भावना एवं जीवन की मान्यताओं को गहरा आघात पहुँचा। हिन्दू धर्म और उसके आधार स्तम्भों---धर्म, कर्म, अवतारवाद, वर्णाश्रम धर्म की जड़ें ही हिल गईं। साथ ही मुसलमानी शासन के अत्याचारों एवं अनाचारों ने जन-मन को नैराश्य से भर दिया और जो देश द्रोही राजे थे, वे मुगल शासन का आश्रय प्राप्त करके विलासमय जीवन व्यतीत करने लगे।

निर्गुण मार्गी कवीर आदि संत कवियों एवं जायसी आदि प्रेम मार्गी कवियों ने जीवन से निराश भारतीय जनता में जागृति उत्पन्न करने का प्रयत्न किया, परन्तु वे अधिक सफल न हो सके। उनकी वाणी में लोक व्यापिनी भगवान की उस आनन्द प्रदायिनी कला का अभाव था जिसका संस्पर्श प्राप्त करके धर्म-प्राण भारतवर्ष की जनता के भावुक हृदय में मंगलाशा का संचार हो उठता है।

कवीर, नानक, दादू आदि संत कवियों ने धर्म के सिद्धान्त पक्ष का निरूपण अवश्य किया, परन्तु उनकी वाणी में सीमा विशेष तक लोक धर्म की अवहेलना थी। इन निर्गुण मार्गी संतों के उपदेशों में संसार की असारता का प्रतिपादन था। इनके उपदेशों को सुनकर कर्म-क्षेत्र से विमुख होकर वैरागी बन जाना एक सामान्य बात थी। रमते जोगी और साधु इस प्रकार की वाणी का प्रचार करते हुए प्रायः देखे जाते थे—

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कहि गए, सबके दाता राम॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन संतों ने वेद, पुराण, वर्णाश्रम धर्म, भक्त जन आदि की इतनी निन्दा की कि जनता में ईश्वर भारत के प्राचीन वाङ्मय, धर्म, कर्म, विद्वज्जन आदि के प्रति आस्था और विश्वास का बहुत कुछ अभाव हो गया। ऐसे समय में जबकि भारतीय जन-जीवन के समस्त सूत्र बिखर गए थे, गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव हुआ। एक सच्चे लोक नायक की भाँति गोस्वामीजी ने जनता की आवश्यकता को पहिचाना और उसके मनोवैज्ञानिक एवं व्यावहारिक अभावों की पूर्ति करने के लिए श्रुति सम्मत एवं विरति-विवेक-संयुत हरि भक्ति पथ की प्रतिष्ठा की। उन्होंने यद्यपि 'अलखहि अलखहि का जापैं, राम नाम जप नीच, एवं गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग' आदि कथनों द्वारा वैराग्य धर्म के प्रति विरोध प्रकट किया, तथापि उन्होंने खण्डन की पद्धति को न अपना कर मण्डन-पद्धति को ही अपनाया। उन्होंने ज्ञान और उपासना के साथ कर्म और धर्म के स्वरूप का सामंजस्य उपस्थित करके लोक-धर्म एवं लोक-संस्कृति का प्रतिपादन किया। लोक-धर्म उनकी भक्ति पद्धति का मूल मन्त्र हुआ। जिसे यह दृश्यमान जगत प्रिय नहीं, वह कैसे कह सकता है कि उसे उसका बनाने वाला भगवान प्रिय है?

अन्तर्जामिहु तें बड़ बाहिर जामी है राम, जो नाम लिए तें।
पैंज परे प्रहलादहु कों प्रगटे प्रभु पाहन तें न हिए तें।

× × ×

यहि जग महँ जहँ लगि या तन की प्रीति प्रतीति सगाई।
सो सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहु सिमिटि एक ठाईं।

उनके राम धर्म रूप हैं और उनकी भक्ति-भावना सेवा-भावना की पर्यायवाची है—

सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।

क्योंकि "सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।"

गोस्वामीजी ने प्रजा पालन के लिए प्रसिद्ध सूर्यवंशी रघुकुल में उत्पन्न राजा राम को अपना इष्टदेव बनाया और अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्ति एवं अनन्त शील समन्वित उनके आदर्श स्वरूप की प्रतिष्ठा की। राम का यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरूप जनता की रुचि के अनुरूप था। राम के रूप में जनता को अपने आदर्श इष्ट की प्राप्ति हुई और तुलसी द्वारा प्रणीत राम-कथा के पात्रों में उसने अपने आदर्श पात्रों का साक्षात्कार किया। तुलसी के काव्य में लोक और शास्त्र का समन्वित ज्ञान उसको व्यावहारिक रूप में प्राप्त हुआ, उसने अपने सिर के भार के गुरुत्व में कुछ हल्केपन का अनुभव किया। तुलसी द्वारा प्रवाहित राम-भक्ति-सुरसरिधारा में जनता की उदासी या खिन्नता बह गई। वह नवोत्साह के साथ अपने कर्त्तव्य-पथ की ओर उन्मुख हो गई।

गोस्वामीजी ने हिन्दू-समाज को अपनी शक्ति के प्रति जागरूक किया और उसके हृदय में अवतारवाद के प्रति आस्था उत्पन्न की वह युग-स्रष्टा थे—गोस्वामी तुलसीदास की यह दृढ़ मान्यता एवं सुनिश्चित धारणा थी कि राम की अनन्य भक्ति जीवन का चरम लक्ष्य होना चाहिए। इस साधारण एवं सर्वमान्य वात को व्यक्त करने के लिए कितने साहस की आवश्यकता थी, यह वात उनके निम्नलिखित छन्द द्वारा स्पष्ट हो जाती है—

सिय राम स्वरूप अनूप अगाध, बिलोचन-मीनर्नान को जलु है।
श्रुति रामकथा मुख राम को नाम हिए पुनि रामहि को थलु है।
गति रामहि सों मति रामहि सों रति राम सों रामहिं को वल है।
सबकी न कहे तुलसी के मते, इतनों जग-जीवन को फल है।

अन्तिम चरण में 'सबकी न कहे' वाक्यांश सामान्य विरोध के प्रति तुलसी की सजगता को प्रकट करता है। वात यह है कि तत्कालीन समाज मुग़ल शासकों के अत्याचारों से त्रस्त हो रहा था और उसमें सिर उठाकर अपनी बात कहने का साहस नहीं रह गया था। उनके सम्मुख उनके देव मन्दिर गिराए जाते थे, अनेक नारियों का अपमान होता था और वे असहाय दृष्टा वने हुए देखते रहते थे। गज की टेर सुनकर आने वाले खरारि और द्रौपदी की पुकार सुनकर आने वाले मुरारि उन्हें कहीं भी नहीं दिखाई देते थे। अपने पुरुषार्थ के प्रति वे हताश थे और भगवान के प्रति उन्हें विश्वास नहीं रह गया था। ऐसी स्थिति में गोस्वामीजी के सम्मुख दो कार्य थे—हिन्दू समाज को अपनी खोई हुई शक्ति को प्राप्त करने के लिए प्रेरित करना और भगवान के अवतारवाद के प्रति आस्था उत्पन्न करके उनके मन में आशा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का संचार करना। कहने की आवश्यकता नहीं है कि वे अपने इन दोनों कार्यों का सम्पादन सम्यक् प्रकार एवं सफलतापूर्वक करने में समर्थ हुए।

गोस्वामी तुलसीदास ने राम और रावण का ऐतिहासिक वृत्त लेकर काव्य-रचना की। उन्होंने अपने समय में प्रचलित काव्य भाषा और काव्य-शैलियों के समस्त रूपों को अपनाकर राम-रावण की कथा को सर्वव्यापी एवं लोकप्रिय वनाने का सफल प्रयास किया। रावण एक प्रकार से हिन्दू-समाज के शत्रु का प्रतीक हुआ और राम हिन्दू समाज की आकांक्षाओं के प्रतिनिधि हुए। रावण समस्त साधनों से समस्त सम्पूर्ण शक्ति से युक्त एवं प्रकृति के पंच महाभूतों का विजेता है, राम अकेले निर्वासित और असहाय। वह वानर भालुओं को लेकर अपनी सेना संघटित करते हैं और दुर्द्धर्ष शत्रु पर विजय प्राप्त करते हैं। प्रकारान्तर से गोस्वामीजी यह कहते हैं कि तुम न तो राम की भाँति अकेले और निस्सहाय हो और न तुम्हारे शत्रु रावण की भाँति शक्तिशाली ही हैं, राम को तो शत्रु के घर में जाकर लड़ना पड़ा था, तुम्हारा शत्रु तो तुम्हारे ही घर में आया हुआ है। ऐसे राम ऐसे रावण पर विजय प्राप्त करते हैं। धर्म रूप की विजय की शंखध्वनि सुनकर सोता हुआ हिन्दू समाज जाग उठा। उसे अपनी शक्ति पर विश्वास होने लगा और उसने चैन की साँस ली। 'रामचरितमानस' के उपसंहार रूप तुलसी के इस कथन में 'पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ' के द्वारा वस्तुतः हिन्दू-समाज के आत्म-विश्वास का स्पंदन ही सुनाई देता है।

विशेष प्रकार से प्रवन्ध विधान करके गोस्वामीजी ने अपने द्वितीय उद्देश्य—अवतारी रूप के प्रति आस्था उत्पन्न करने के उद्देश्य की पूर्ति की। 'रामचरितमानस' की कथा के प्रमुख वक्ता हैं शिवजी और श्रोता हैं पार्वतीजी या उमा। उमा शिवजी से कुछ प्रश्न करती हैं। प्रथम प्रश्न है—

प्रथम सो कारन कहहु विचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन बपुधारी।

अन्तिम प्रश्न है—

प्रजा सहित रघुबंस मनि किमि गवने निज धाम।

शिवजी उन प्रश्नों का उत्तर देते हैं, और रामचरित की कथा समाप्त हो जाती है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कछुक राम गुन कहेउँ बखानी। अब का कहौं सो कहहु भवानी।

प्रथम प्रश्न 'निर्गुण सगुन वपुधारी' को गोस्वामीजी ने सबसे अधिक महत्त्व प्रदान किया और विस्तार सहित पूर्ण मनोयोग पूर्वक उसका विविध प्रकार उत्तर प्रस्तुत किया। ज्ञान-विज्ञान स्वरूप शिव द्वारा विवेचित 'अवतारवाद' की प्रक्रिया सुनकर उमा आश्वस्त हो जाती हैं—

तुम्हरी कृपा कृपायतन अब कृतकृत्य न मोह।
जानेउँ राम प्रताप प्रभु चिदानंद संदोह॥

भावुक श्रोताओं के लिए गोस्वामी जी कागभुशुंडि-गरुड़-संवाद की सृष्टि की और आगमपरक कथा कह दी। हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि कागभुशुंडि के रूप में स्वयं गोस्वामी जी ही उपस्थित होकर यह कहते हैं कि—

बार-बार मुनि मोहि समुझावा। निर्गुन मत मन मोर न आवा।
तब मैं नाइ कहेउ पद सीसा। सगुन उपासन कहेउ मुनीसा।
भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहौं निर्गुन उपदेसा।

गोस्वामीजी अपनी साधना में सर्वथा सफल हुए। उनके समय में ही विष्णु के अवतारी रूप में कृष्ण और राम की पूजा एवं भक्ति प्रचलित होगई थी और लोगों को भगवान के अवतार में पूर्ण विश्वास हो गया था।

लोग केवल इतना ही नहीं कहते थे कि भगवान अवतार लेते हैं, वह आते है और आएँगे, बल्कि वे यह भी कहने लगे थे कि भगवान ने अवतार ले लिया है। कोई कहता कि सूरदास को उन्होंने कुए में से निकाला है—

बाँह छुड़ाए जात हों, निबल जानि के मोहि।
हृदय तें जब जाउगे, सबल बदौंगो तोहि।

कोई कहते थे कि हमने उन्हें चित्रकूट के घाट पर तुलसी के हाथों चन्दन लगाते देखा है—

चित्रकूट के घाट पं, भई सन्तन की भीर।
तुलसीदास चन्दन घिसैं, तिलक देत रघुबीर।

कहने का तात्पर्य यह है कि गोस्वामीजी की सुधा वर्षिणी वाणी के सुधा-रस का पान करके हिन्दू-समाज चैन की साँस लेने लगा था। उसके जीवन में मंगलाशा का संचार हो उठा था और वह भविष्य के प्रति निराश नहीं रहता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था। कागभुशुंडि के मुख से लोकनायक तुलसी की आस्था-प्रदायिनी वाणी सुनिए—

यातें यह तन मोहि प्रिय भयेउ राम-पद नेह।
निज प्रभु नयनन्हि देखयउँ, गयउ सकल संदेह।

तभी तो कविवर रहीम ने यह कहा था—

सुरतिय नरतिय नागतिय अस चाहत सब कोय।
गोद लिए हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय॥

तुलसी समाज के भावीस्वरूप की परिकल्पना कर सके थे। उन्होंने आगे आने वाले भौतिकवादी समाज की रूपरेखा प्रस्तुत करके अपने 'युग द्रष्टा' पद को सार्थक किया—गोस्वामी तुलसीदासजी ने 'रामचरित-मानस' के अन्तर्गत कलियुग का जो वर्णन किया है, वह प्रस्तुत समाज की परिस्थितियों के साथ बिल्कुल मेल खाता है।' कलियुग का अभिप्राय यदि भौतिकवादी अथवा जड़वादी समाज लिया जाए, तो कलियुग की संगति काली धातु के युग—लोहे के युग मशीन—युग के साथ बैठ जाती है।

विज्ञान की अत्यधिक उन्नति हुई है। परिणामस्वरूप भौतिकवाद का साम्राज्य होगया है। येन केन प्रकारेण अर्थ-संचय मानव की जय-माया का लक्षण बन गया है। इन सौ सवासौ वर्षों में समाज की उन्नति हेतु अनेकानेक आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। सबका निष्कर्ष एक ही है—स्थूल की उन्नति अथवा प्रयोजन की सिद्धि।

इन सिद्धान्तों में प्रमुख ये हैं—डार्विन का विकासवाद, कार्लमार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद और फ्रायड का यौनिवाद। इन सबकी चिन्तन पद्धति में दो बातें सामान्य रूप से पाई जाती हैं—(i) मानव की आत्मा की उपेक्षा, क्योंकि ये मनस (Mind) को ही पदार्थ की सूक्ष्मतम परिणति मानते हैं, और (ii) समाज की उन्नति पर बल एवं व्यक्ति के व्यक्तित्व-विकास की गौणता। इनके अनुसार पहले समाज की आर्थिक, सामाजिक एवं तन्त्रात्मक व्यवस्थाओं में सुधार होना चाहिए। व्यक्ति के निर्माण का प्रश्न सर्वथा गौण है।

उपर्युक्त सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार पूरी शक्ति के साथ किया गया है और किया जा रहा है। परिणामतः प्रत्येक व्यक्ति समाजवाद, कृषि-विज्ञान,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पशु-विज्ञान आदि के विकास के प्रति दत्तचित्त एवं प्रयत्नशील है। मानव विकास, विचार-संस्कृति जैसी विधाओं अथवा कलाओं के नाम भी नहीं सुनाई देते हैं। हमने Horticulture, Agriculture आदि cultures के लिए बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाएँ स्थापित कर रखी हैं, अनेक शिक्षा संस्थाएँ स्थापित कर रखी हैं, परन्तु Man Culture अथवा Thought Culture की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता है। इतना ही कहीं, हम इनकी आवश्यकता को अनुभव ही नहीं करते हैं। अस्तु।

वस्तुस्थिति यह है कि प्रत्येक व्यक्ति यह सोचता है कि मुझे अपने शारीरिक सुखों का विधान कर लेना चाहिए, त्याग, तपस्या, सदाचार आदि की वात विशेष आवश्यक नहीं है। जब समस्त समाज अथवा सब लोग सदाचारी बन जाऐंगे, तब मैं भी सदाचारी बन जाऊँगा। परन्तु विडम्बना यह है कि सुखी हम सबसे पहले बनना चाहते हैं। न समाज सुखी बन पाया है, न व्यक्ति सुखी हो पाता है। फलतः समस्त समाज अनाचार एवं व्यभिचार में आकण्ठ निमग्न होगया है। भाँति-भाँति की वातें बनाकर प्रयोजन की सिद्धि आज के सामाजिक के जीवन का लक्ष्य बन गया है। गोस्वामी तुलसीदासजी को सम्भवतः आने वाले समय का स्वरूप विदित था। उन्होंने कलि- का वर्णन करते हुए लिखा है कि—

पर द्रोही पर दाररत, परधन पर अपवाद।
ऐसे पामर पापमय, देह धरें मनुजाद।
ऐसे ऐसे अधम मनुज खल, कृत जुग त्रेता नाहिं।
द्वापर कछुक वृन्द बहु, होइहिं कलिजुग माहिं।

तथा—

झूठहि लेना झूठहि देना। झूठहि भोजन झूठ चबेना।
जो कह झूठ मसखरी जाना। कलिजुग सोई गुनवत बखाना।
मारग सोइ जा कहँ जो भावा। पण्डित सोई जो गाल बजावा।
असुभ भेष भूषन धरहिं, भक्षाभक्ष जे खाँहि।
ते जोगी, ते सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माँहि।

गोस्वामीजी ने अर्थवाद के प्रतीक रूप रावण का चित्रण किया। रावण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ने पंच महाभूतों पर विजय प्राप्त करली थी। उसके यहाँ पवन पंखा झलता, अग्नि रसोई बनाता था, जल के देवता (इन्द्र) छिड़काव करते थे, आदि। वह भौतिक-विजय एवं भौतिकवाद का मूर्तिमंत रूप था।

इस दृष्टि से विचार करने पर हम देखते हैं कि रावणरूपी अर्थवाद पर विजय प्राप्त करने का साधन राम द्वारा निरूपित 'धर्म रथ' ठहरता है। राम शील-सदाचार के प्रतीक हैं।

रावण और राम के मध्य युद्ध हो रहा है। रावण भौतिक साधन सम्पन्न है, राम उनसे विहीन। राम की विजय के प्रति संदेह स्वाभाविक है—

रावण रथी विरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा।
अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा।
नाथ न रथ नहि तन पदत्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना।

इस प्रश्न के उत्तर में श्री रघुनाथजी विजय-प्राप्ति के साधन स्वरूप जिस धर्म रथ का निरूपण करते हैं, वह विवेक, वैराग्य, शील, सदाचार, विश्व-प्रेम आदि उदात्तगुणों से युक्त हमारे व्यक्तित्व के अतिरिक्त और कुछ नहीं है—

सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होई सो स्यंदन आना।
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल विवेक दम परहित घोरे। क्षमा कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजनु सारथी सुजाना। विरति चर्म संतोष कृपाना।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचण्डा बर विग्यान कठिन कोदंडा।
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जप नियम सिलीमुख नाना।
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा एहि सम विजय उपाय न दूजा।
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके।
महा अजय संसार रिपु. जीति सकइ सो बीर।
जाकें असरथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मति धीर॥

समाधान स्पष्ट है। रावण हमारे मन के मैल की छाया के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मन से विपक्षी का भाव लुप्त होते ही विजय है। संसार को जीतने के लिए मन का अपने मन को जीतना आवश्यक है, समाज को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुखी बनाने के पहले व्यक्ति का मन पहले सुखी होना चाहिए। वस्तुतः गोस्वामीजी कहना यह चाहते हैं कि हमारी समाजगत न होकर व्यक्ति की समस्या है। हम यदि समाज का सुधार करना चाहते हैं तो हमको पहले व्यक्ति का सुधार करना होगा। हम जड़ एवं अर्थ के दास हैं। इसी से समस्त संसार हमको शत्रुवत् प्रतीत होता है। भौतिकवादी समाज में भय और निराशा का साम्राज्य हो जाना प्रकृति का नियम है। समाज के कल्याण के प्रति रुचि रखने वाले महानुभावों को गोस्वामीजी द्वारा निरूपित 'धर्मरथ' व्यक्तित्व के निर्माण के प्रति प्रयत्नशील होना चाहिए। इस युग में पूज्य महात्मा गांधी ने हमको यही संदेश दिया है। गांधीवादी जीवन-दर्शन व्यक्तित्व-निर्माण के सिद्धान्त का ही प्रतिपादन करता है। राजनीति के क्षेत्र में ग्राम पंचायत, अर्थनीति के क्षेत्र में चर्खा को प्रतीक मानकर ग्रामोद्योग आदि परिधि से केन्द्र की ओर जाने के विभिन्न मार्ग हैं। केन्द्रोन्मुखी संस्कृति मानव विकास का मूलमन्त्र रहा हैं और रहेगा। इसी कारण गोस्वामीजी द्वारा निरूपित राम-कथा का संदेश शाश्वत और अमर है। उनके युग द्रष्टा और युग स्रष्टा होने का यही रहस्य है।

निष्कर्ष—गोस्वामी तुलसीदास अपने समाज की परिस्थितियों और अपने समय की आवश्यकताओं के प्रति पूर्णतः जागरूक थे। उन्होंने समाज की दुर्व्यवस्था और समाज में प्रचलित रूढ़िवादिता पर अनेक प्रहार किए, परन्तु उनमें कबीर की निर्ममता एवं कठोरता नहीं थी। मधुरता और सौम्यता उनकी वाणी के सहज स्वाभाविक गुण थे। उनका दृष्टिकोण एक निर्माता का दृष्टिकोण था, विध्वंसकारी प्रवृत्तियाँ उनकी शालीन प्रकृति के प्रतिकूल थीं। इसी कारण वह समन्वय का सम्बल लेकर अपने कर्त्तव्य-मार्ग पर अग्रसर हुए। उनका सम्पूर्ण काव्य वस्तुतः समन्वय की विराट चेष्टा है। उसमें लोक और शास्त्र भक्ति और ज्ञान, ज्ञान और कर्म, धर्म और कर्म, निर्गुण और सगुण, गृहस्थ और वैरागी, ब्राह्मण और अछूत, जनभाषा और संस्कृत आदि के समन्वय के अतिरिक्त विभिन्न काव्य प्रणालियों का सफल एवं सुखद समन्वय है। भक्ति के क्षेत्र में तुलसीदास जी ने एक विचित्र प्रकार का समन्वय कर दिखाया। शिव को राम का सबसे बड़ा भक्त बताया और राम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के द्वारा शिव की पूजा करा दी, और इस प्रकार वैष्णवों एवं शैवों के मध्य भेद-भाव को बहुत कुछ कम कर दिया। प्रमाण यह है कि दक्षिण-भारत की भाँति उत्तर भारत में शिवकांची और विष्णुकांची के रूप में काशी, प्रयाग, मथुरा प्रभृति किसी तीर्थस्थान का विभाजन न हो सका। इस प्रकार समाज में प्रचलित अनेकानेक विषमताओं के मध्य तुलसी ने समन्वय स्थापित करके समाज को एक स्वस्थ जीवन-दर्शन प्रदान किया।

तुलसी ने न तो अपना कोई मत ही चलाया और न अन्य सन्तों एवं भक्तों की भाँति कोई पंथ ही खड़ा किया। उन्होंने तो एक सच्चे युग द्रष्टा और युग स्रष्टा के रूप में ऐसे काव्य का प्रणयन किया जो सनातन धर्म के रूप में सदैव हमारा पथ-प्रदर्शन करता रहे। यही कारण है कि वह कृष्ण, बुद्ध, गाँधी, प्रभृति लोक नायकों की पंक्ति में विराजमान होकर भारतीय जनता के कंठहार बने हुए हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के निम्न-लिखित कथन का औचित्य स्वयं सिद्ध है—"लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचार-निष्ठाएँ और विचार-पद्धतियाँ प्रचलित हैं। बुद्धदेव समन्वयकारी थे। गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसीदास जी समन्वयकारी थे।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१३)

गोस्वामी तुलसीदास और 'विनय-पत्रिका'

प्रश्न ६३—विनय-पत्रिका के लिखने में कवि का उद्देश्य क्या है ? अपने इस उद्देश्य में गोस्वामी तुलसीदास को कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है ?

अथवा

प्रश्न ६४—'विनय-पत्रिका'—शीर्षक का निरूपण करते हुए उसमें व्याप्त काव्य तत्वों की विशेषताएँ समझाइए ।

प्रश्न ६५—"विनय-पत्रिका" तुलसीदास के अन्तरंग जीवन का इतिहास है । इस कथन की युक्तियुक्त समीक्षा कीजिए ।

अथवा

प्रश्न ६६—"विनय-पत्रिका" में गोस्वामी जी ने अपनी हीनता और आतुरता का राग सर्वत्र अलापा है । क्या इस ग्रन्थ को आत्म-चरित्र प्रधान कहाँ जा सकता है ? यदि नहीं तो इस रहस्य का उद्घाटन कीजिए ।

उत्तर—'विनय-पत्रिका' के माध्यम से तुलसी भगवान राम को अपनी विशेष प्रार्थना सुनाते हैं—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, 'विनय-पत्रिका' एक प्रार्थना-पत्र या अर्जी है जिसको तुलसीदास भगवान राम के दरबार में पेश करते हैं। वह कलियुग के विरुद्ध उनकी शिकायत है। 'कलियुग' से तात्पर्य है स्वार्थियों से भरा हुआ समाज । उनके समय में चारों ओर अनाचार, अत्याचार एवं दुराचार का ताण्डव नृत्य हो रहा था जिससे तंग आकर वह भगवान की शरण में जाने को प्रयत्नशील थे । वह इस संसार के प्रति विरक्त हो गए थे । अतः यह कहा जा सकता है कि श्रीराम की शरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को प्राप्त करने के लिए तुलसी ने 'विनय-पत्रिका' की रचना की थी। वह राम को अपनी विनय सुनाना चाहते थे। इस कारण उन्होंने अपनी समस्त भावनाओं को 'विनय-पत्रिका' का रूप दिया।

'विनय-पत्रिका' में व्यक्त उद्देश्य वैयक्तिक नहीं, अपितु पारमार्थिक हैं—गोस्वामी तुलसीदास को अपने चारों ओर स्वार्थियों का जमघट दिखाई देता था, कहीं भी पारमार्थिक भावना के दर्शन नहीं होते थे। अतः उन्होंने अपने चारों ओर होने वाली आपदाओं तथा सर्वजनीन दुःखों का संग्रह करके 'विनय-पत्रिका' के माध्यम से उन्हें भगवान के सम्मुख प्रस्तुत किया है। स्वारथ के साथिन्ह तज्यों कह कर वह समाज की दुर्दशा की ओर संकेत करते हैं और श्रीरघुनाथ जी के द्वार पर जाकर पड़ रहते हैं—"प्रन करिहौं हठि आजु तें राम-द्वार परयो हौं।" परन्तु फिर वही प्रश्न उपस्थित होता है कि यह सब वह किस लिए और किसके लिए कह रहे हैं ? परन्तु ऐसा नहीं है। वह व्यष्टि-हृदय का चित्र न होकर समष्टि का प्रतिबिम्ब है। वैयक्तिक सुधार की याचना और मोक्ष-प्राप्ति के पीछे उनकी परमार्थ भावना झाँकती हुई दिखाई देती है। हम यदि उनकी याचना, प्रार्थना अथवा आत्म-प्रदर्शन को गम्भीरतापूर्वक विश्लेषणात्मक अध्ययन करें, तो हम देखेंगे कि वह यह सब आत्म-लाभ के लिए नहीं वल्कि मानव-मात्र के मनः शोधन एवम् इसकी पंकिल दशा के सुधार के लिए कर रहे हैं। उनकी आर्त्त प्रकार का मुख्य लक्ष्य मानव मात्र का कल्याण है। इसके लिए वह संसार के दुःखों का वर्णन करते हैं, विभिन्न धार्मिक विश्वासों, विभिन्न दार्शनिक मतों का समन्वय करते हैं और अन्त में निष्कर्ष रूप जीव मात्र को राम भक्ति के राज-पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा करते हैं। अतः 'विनय-पत्रिका' की रचना का उद्देश्य लोकहित एवं जीवमात्र के कल्याण के पथ का निरूपण है जिसमें कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त होती है।

'विनय-पत्रिका' में खिन्न, दुखी एवं संतप्त जीव की आर्त्त पुकार है—'विनय-पत्रिका' में अभिव्यक्त आर्त्तवाणी के मूल में कई कारण हैं—(i) स्वयं अनाथ होना (ii) साथियों द्वारा छोड़ दिया जाना। वह संसार की स्वार्थपरता देखकर घबड़ा गए थे और इस कारण राम के द्वार पर जाकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पड़ गए थे, (iii) जीवन के अधिकांश भाग में राम-नाम न ले सकने के कारण उत्पन्न आत्मग्लानि तथा (iv) कलि का कोप। हमारे विचार से यह अन्तिम कारण ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण है। कलि की कुचालों से तंग आकर वह श्रीरामजी के चरणों के प्रति बढे थे। एक स्थान पर तो कलि के भयावह रूप को देखकर एक अबोध बालक की भाँति रक्षार्थ चिल्लाते हुए से दिखाई पड़ते हैं—

पाहि पाहि राम ! पाहि, रामचन्द्र रामचन्द्र
सुजस सुवन सुनि आयो हौं सरन ।
दीनबन्धु दीनता-दरि-दाह-दोष-दुख-
दारुन-दुरुह-दर-दरप-हरन ।

'विनयपत्रिका' लिखे जाने सम्बन्धी किंवदंती के आधार पर यह **स्वार्थपरता से परे सर्वजन की वेदना का चित्र है**—कहा जाता है कि एक गो-हत्यारा बड़े दीन स्वर से चिल्ला कर यह कह रहा था कि 'राम के नाम पर कोई मेरे हाथ का भोजन खाकर मुझे गो-हत्या के पाप से छुड़ा दो गोस्वामीजी ने उसको अपने पास बुलाया और प्रेमपूर्वक उसके हाथ का भोजन किया। काशी के रूढ़िवादी पण्डितों को यह सह्य न था। उन्होंने गोस्वामीजी से अनेक प्रकार से तर्क करते हुए यह जानना चाहा कि राम-नाम के द्वारा हत्या का पाप किस प्रकार छूट सकता था। अन्ततः यह तय हुआ कि यदि भगवान विश्वनाथ का नंदी उस पापयुक्त गो-हत्यारे के हाथ का भोजन ग्रहण कर ले, तो वह मान लेंगे कि राम-नाम पर गो-हत्यारे के साथ भोजन करके तुलसी ने उचित ही किया। निदान नंदी के सम्मुख भोजन रखा गया। भगवान की लीला, पत्थर के नंदी ने उसके हाथ का भोजन खा लिया। इस चमत्कार को देखकर पण्डित जन तो सन्तुष्ट हो गये परन्तु कलिदेव रुष्ट हो गये। उन्होंने भाँति-भाँति से तुलसी को सताना आरम्भ कर दिया। तुलसी ने हनुमानजी से कलि को दण्ड देने की प्रार्थना की। हनुमानजी ने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए तुलसी को परामर्श दिया कि वह श्रीरघुनाथजी से प्रार्थना करें। वही कलि को दण्डित करने में समर्थ हैं। कहते हैं कि हनुमानजी की आज्ञानुसार तब तुलसी ने यह 'विनय-पत्रिका' लिखी।

कुछ लोगों का कहना है कि तुलसी का कलियुग वस्तुतः मुगल शासन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC-0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही था। 'विनयावलि' लिखने का कारण प्रधानतः तुलसीदास का निठुर काल ही है जिसमें हिन्दू समाज मुगल शासन के चक्के के नीचे पिस रहा था। उन दिनों बेकारी भी खूब थी और अकाल भी पड़ रहे थे। इन सब कारणों से उत्पन्न वेदना को संजोकर तुलसीदास ने 'विनय-पत्रिका' के माध्यम से भगवान राम से भारत भूमि के उद्धार की प्रार्थना की। जो भी हो, 'विनय-पत्रिका' की रचना का कारण स्वार्थपरक कम परमार्थपरक अधिक है। चूंकि "भूमि चोर भूप भए" के अनुसार इस संसार में उनकी सुनने वाला कोई नहीं था, इस कारण तुलसी ने संतप्त, पीड़ित एवं शोषित जनता के प्रतिनिधि रूप में करुणापूरित यह प्रार्थनापत्र भगवान की सभा में भेज दिया। 'विनय-पत्रिका' के अनेक पद 'सर्वजन की वेदना' से भरे हुए हैं। उन्हें पढ़कर किस सहृदय का हृदय द्रवित न हो उठेगा ? भगवान राम तो करुणा के सागर हैं। वह तुलसी की 'विनय-पत्रिका' की सुनवाई कर लेते हैं—"कृपा गरीव निवाज की, देखत गरीब की साहब बाँह गही है। × × मुदित माथ नावत, बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है।"

तुलसी को विश्वास हो जाता है कि भगवान श्रीराम ने 'कलियुग' को दण्डित कर दिया, उसने ऊधम करना बन्द कर दिया और सब ओर मंगलमय वातावरण छा जाता है—

दीजै दादि देखि नातौ-बलि, मही मोद मंगल रितई है।
भरे भाग अनुराग लोग हैं, राम अवध चितवन चितई है।
बिनती सुनि सानन्द हेरि हँसि, करुना वारि भूमि भिगई है।
राम-राज भयो का सगुन सुभ राजा राम जुगत-विजई है।

तात्पर्य यह है कि विनय-पत्रिका का प्रयोजन है—शील सिन्धु भक्त-वत्सल भगवान की दुःख-निवारक सहायता की याचना।

संसारी जीवों को राम-भक्ति की ओर प्रवृत्त करना तुलसी की 'विनयपत्रिका' का पारमार्थिक उद्देश्य है—'विनय-पत्रिका' पर हित-भावना व लोक-हित भावना का सुप्रभ दर्पण है। तुलसी के मतानुसार राम भक्ति और परोपकार-भावना अन्योन्याश्रित हैं। मानव शरीर का लाभ ही क्या यदि श्रुति सम्मत हरि भक्ति न की—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो पै रहनि राम सों नाहीं।
तौ नर खर कूकर सूकर सम वृथा जियत जग माहीं।
× × ×
कीरति, कूल, करतूति, भूति, भलि, सील, सरूप सलोने।
तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने।

अथवा—

ऐसेहि जनम-समूह सिराने।
प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरन बिराने।
× × ×
तुलसी चित-चिन्ता न मिटै बिनु चिन्तामनि पहिचाने।

उनकी सुनिश्चित धारणा है कि मनुष्य का शरीर पाकर भी यदि परोपकार के प्रति प्रवृत्ति न हुई तो यह जन्म सर्वथा निष्फल ही समझना चाहिए—

काज कहा नर-तनु धरि सारयो।
पर उपकार सार श्रुति को जो सो धोखेहु न विचारयो।

इस परोपकार अथवा परहित का श्रेय-दर्शन 'विनय-पत्रिका' के अनेकानेक पदों में प्राप्त होता है। तुलसी बार-बार यही कहते हैं कि नर शरीर की सार्थकता भगवत्प्राप्ति है और उसका एक मात्र साधन है परोपकार। 'विनय-पत्रिका' में दैन्य भाव की बड़ी ही मार्मिक व्यंजना हुई है। दैन्य-प्रदर्शन करते हुए तुलसी थकते नहीं हैं। परन्तु वहाँ भी वह लोक-हित को भूलते नहीं हैं। यही कारण है कि उनकी वेदना और पीड़ा व्यक्ति की सीमाओं का उल्लंघन करके विश्व की वेदना और पीड़ा बन जाती है। यथा—

सुन मन मूढ़ सिखावन मेरो।
हरिपद-विमुख लयो न काहु सुख, सठ ! यह समुझि सबेरो।
बिछुरे ससि रबि मन-नैननितें, पावत दुख बहुतेरो।
× × ×
छूटै न विपति भजे बिनु रघपति, श्रुति संदेहु निबेरो।
तुलसीदास सब आस छोड़ि कर, होहु राम कर चेरो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निष्कर्ष—गोस्वामीजी ने 'विनय-पत्रिका' में लोक-मंगल की भावना की अभिव्यक्ति बड़े ही व्यापक रूप में की है। उन्होंने लोक की वेदना को अपनी वेदना बनाकर व्यक्त किया है। ऐसा करने में उनका उद्देश्य यह है कि सांसारिक दुःखों में ग्रस्त जीव परोपकार भाव, उत्पन्न करके भगवत्भक्ति के प्रति उन्मुख होकर मोक्ष-प्राप्ति के हेतु प्रयत्नशील हों। इसी कारण उन्होंने 'विनय-पत्रिका' में भगवान राम की अनन्यभक्ति की सविस्तार अभिव्यक्ति की है। लोक-जीवन को आनन्द से सिक्त करना इस भक्ति-भावना का लक्ष्य है।

प्रश्न ६७—"विनय-पत्रिका भक्तों का सर्वस्व है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं? युक्तियुक्त विवेचन कीजिए।

अथवा

प्रश्न ६८—"विनय-पत्रिका भक्ति-रस के नाना स्वादों से भरी हुई है।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ६९—गोस्वामीजी ने विनय-पत्रिका में भक्ति के जिन तत्वों का विवेचन किया है, उनका उल्लेख करते हुए उनकी भक्ति-भावना पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

अथवा

प्रश्न ७०—"भक्ति-प्रेम में आलम्बन के महत्व और भक्त के दैन्य का अनुभव परम आवश्यक है।" 'विनय-पत्रिका' के आधार पर इसकी परीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ७१—"विनय-पत्रिका आराध्य के प्रति तुलसी के निश्छल आत्म समर्पण की गाथा है।" इस कथन का विवेचन कीजिए।

अथवा

प्रश्न ७२—'विनय-पत्रिका' में भक्ति रस का पूर्ण परिपाक हुआ है। भक्ति-हृदय के जैसे भावपूर्ण उद्गार इसमें हैं वैसे अन्यत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहीं भी नहीं।" पुष्ट प्रमाण देते हुए इस कथन का समर्थन कीजिए।

अथवा

प्रश्न ७३—सिद्ध कीजिए कि 'विनय-पत्रिका' एक प्रपत्ति काव्य है। यह भी बताइए कि निम्नलिखित कथन से आप किस सीमा तक सहमत हैं—"'विनय-पत्रिका' में भक्ति का प्रतिपादन मानव-जीवन के सर्वोत्कृष्ट तत्व के रूप में किया गया है।"

उत्तर—'विनय पत्रिका' भक्ति-रस के नाना स्वादों से परिपूर्ण है अथवा विनय-पत्रिका एक भक्ति-रस का ग्रन्थ है—"'विनय पत्रिका' में कलियुग की कुचालों का वर्णन करने के वहाने गोस्वामी तुलसीदास ने अपने मन की दुर्वलताओं का सांगोपांग वर्णन किया है। उसमें उन्होंने अपना हृदय खोल कर रख दिया है, तथा भक्ति की पूर्ण पद्धति का अनुसरण करते हुए श्रीराम से अपने उद्धार की प्रार्थना की है। प्रारम्भ से अन्त तक हमको उसमें उनके हृदय की तन्मयता के दर्शन होते हैं। इस सम्वन्ध में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल ने वहुत ठीक लिखा है कि, "आलम्बन की महत्त्व भावना से प्रेरित दैन्य के अतिरिक्त भक्ति के और जितने अंग हैं—भक्ति के कारण अन्तःकरण को जो और-और शुभ वृत्तियाँ प्राप्त होती हैं—सबकी अभिव्यंजना 'विनय-पत्रिका' के भीतर हम पा सकते हैं। × × चरम महत्त्व के इस भव्य मनुष्य-ग्राह्य रूप के सम्मुख भाव-विह्वल भक्त-हृदय के बीच जो-जो भाव तरंगें उठती हैं उन्हीं की माला यह 'विनयपत्रिका' है।"

प्रारम्भ में राम के प्रति अनुराग और संसार के प्रति विराग है—'विनय-पत्रिका' के आरम्भ में भक्त तुलसीदास रामचरण-रति' के लिए विभिन्न देवी-देवताओं से प्रार्थना करते हैं। राम के प्रति उसका यह भक्त तुलसीदास को भक्ति के क्षेत्र में प्रवेश करने का अधिकारी बनाता है—

मांगत तुलसिदास कर जोरे। बर्साहि राम सिय मानस मोरे।

राम के प्रति राग होने पर वह भक्ति के अगले सोपान 'वैराग्य' पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चढ़ता है। वह बार-बार अपने मन को डाट कर समझाकर, संसार के प्रति विरक्त करना चाहता है—

अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़, त्याग दुरासा जी ते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी, कहूँ बिषय-भोग बहु घी ते।

वैराग्य के अभाव में रामचरन-रति कठिन है और रामचरण रति हो जाने पर संसार के भोग-रोग का टहर सकना कठिन है—

जो रघुवीर-चरन अनुरागे, तिन्ह सब भोग रोग सम त्यागे।

इसके पश्चात् वह संतोष आदि विभिन्न सोपानों को पार करते हुए 'षड्सम्पत्ति' के लिए विकल हो उठते हैं—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
परहरि देह जनित चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि गहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरि-भक्ति लहौंगो।

वह श्रीरघुनाथजी से 'सत्संग' की मांग करते हैं, क्योंकि, उनके मतानुसार, इसी के द्वारा राम-भक्ति की प्राप्ति सम्भव है—

देहि सतसंग निजअंग श्रीरंग। भव भंग-कारन सरन-सोक हारी।

उनकी कामना है कि उनका जन्म कहीं भी हो, बारम्बार उन्हें भक्ति और संतों का संग प्राप्त हो। अस्तु।

गोस्वामी तुलसीदास राम के स्वरूप में अनंत सौन्दर्य, अनन्त शक्ति और अनंत शील की प्रतिष्ठा करके भक्ति के क्षेत्र में मानव हृदय के परिष्कार एवं प्रसार के लिए विस्तृत क्षेत्र उपलब्ध कर देते हैं। इस भक्ति के क्षेत्र में पदार्पण करते ही मानव का हृदय सरस हो उठता है। ऐसे राम के स्वरूप का आभास पाकर मनुष्यता को पहुँचा हुआ हृदय अवश्य ही द्रवीभूत होगा—

सुनु सीतापति सील सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल सो नर खेहर खाउ।

'विनय-पत्रिका' में भक्ति के समस्त अवयवों का निर्वाह है—श्रद्धा और प्रेम के योग के नाम भक्ति है। महत्त्व की अनुभूति और समर्पण की भावना, भक्ति के ये दो प्रमुख अवयव ठहरते हैं। महत्त्व की अनुभूति से 'दैन्य' भावना आती है। 'समर्पण' भाव के फलस्वरूप अनन्य निष्ठा एवं निष्कामना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आती हैं। हम देखते हैं कि 'विनयपत्रिका' के अनेक पदों में इन कोमल मनोभावों की मार्मिक व्यंजना हुई है।

महत्त्व की अनुभूति और दैन्य की भावना—भक्त को प्रभु के महत्त्व-वर्णन में जितना आनन्द आता है, उतना ही संतोष अपने दोषों को झुक-झुक कर देखने में और उठा-उठाकर दिखाने में आता है। महत्त्व की अनुभूति और दैन्य की भावना की गंगा-यमुना 'विनय-पत्रिका' में आद्योपान्त प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। राम के महत्त्व और अपने लघुत्व का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं कि—

राम सों बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो ?
राम सों खरो है कौन मोसों कौन खोटो ?

वह अपनी हीनता प्रकट करते हुए कहते हैं—

कबहुँ मन बिस्राम न मान्यो।
निसदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, तहं जहै इन्द्रिय तान्यो।

अथवा—

मो समान जग माहीं।
सब बिधि हीन, मलीन, दीन अति, लीन-बिषय कोउ नाहीं।

इस प्रकार तुलसी ने दैन्य भाव की अत्यन्त निर्मल अभिव्यक्ति की है। स्तुति के पदों में राम की महिमा भरी पड़ी है। वह तो यहाँ तक कह देते हैं कि राम की लीला अपरम्पार है और कहते नहीं बनती है—

केसव कहि न जाइ का कहिए।
देखत तव रचना बिचित्र अति, समुझि मनहिं मन रहिए।

पूर्ण समर्पण और अनन्य निष्ठा—गोस्वामीजी अपने आप को पूर्ण रूप से राम को समर्पित कर देते हैं। राम के अतिरिक्त उनकी गति कहीं नहीं है। वह अन्यत्र जाने की बात सोच भी नहीं सकते हैं—

कहाँ जाउँ, कासों कहौं, को सुनै दीन की।
त्रिभुवन तुही गति सब अंगहीन की।

वह तो यहाँ तक कह देते हैं कि—

गरैगी जीह जो कहौं और को हौं।
जानकी जीवन ! जनम जग ज्यायो तिहारेहि कौर को हौं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके लिए तो एक राम का नाम ही सब कुछ है—

राम नाम हीसों जोग छेम, नेम प्रेम-पन,
सुधा सो भरोसो एहु दूसरो जहरु।

यद्यपि कर्म-काण्ड, उपासना काण्ड, ज्ञान-काण्ड तथा वैदिक सिद्धान्तादि अनेक बताए गए हैं। वे सब सत्य और सार्थक हैं, तथापि तुलसी को तो केवल एक राम नाम का ही भरोसा है। उनके लिए तो वही कल्पतरु के समान सर्वेच्छा-पूरक है—

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कलपतरु कलि कल्यान करो।
करम, उपासन, ग्यान वेदमत सो सब भाँति खरो।
× × ×
अपनो भलो राम-नामहि तें, तुलसिहि समुझि परो।

इसी से तुलसीदास राम के नाम को ही अपना माता-पिता, सम्बन्धी, गुरु, स्वामी, मित्र, सखा सभी कुछ मानते हैं—

राम रावरो नाम मेरो मातु-पितु है।
सुजन, सनेही गुरु, साहिब, सखा सुहृदय,
राम-नाम-प्रेम-मन अविचल वितु है।

इतने पर भी यह निवेदन है कि "मोहि तोहि नाते अनेक मानिए जो भावै"। उनकी तो एक ही लग्न है—ज्यों त्यों तुलसी सरन पावै।

तुलसी की भक्ति सर्वथा निष्काम है—तुलसीदास राम की भक्ति इसलिए करते हैं कि क्योंकि उनको राम का लोक सुखदायी रूप अच्छा लगता है। वह इसलिए भक्ति नहीं करते हैं कि राम उन्हें भुक्ति या मुक्ति दे देंगे—

जो जगदीस तो अति भलो, जो महीसु बड़ भाग।
तुलसी चाहत जनम भरि राम चरन अनुराग।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनकी अनन्य भक्ति का चरम फल भक्ति ही है। तुलसी की केवल एक ही इच्छा है अपने प्रभु के प्रति दिनों दिन 'हेतु रहित' प्रेम की वृद्धि होती रहे—

चहौं न सुगति सुमति, संपति कुछ रिधि सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग नाथ पद बढ़ौं अनुदिन अधिकाई।

वैधी नवधा-भक्ति का निर्वाह किया गया है—भक्ति को प्रेम रूप-तथा गोपी नामक दो भेदों में विभाजित किया जाता है। गोपी भक्ति को सात्त्विकी, राजसी और तामसी तीन उपभेदों में विभाजित करते हैं। सात्त्विकी भक्ति में उपासना प्रधान होती है। राजसी-भक्ति मूर्ति पूजा परक होती है और तामसी भक्ति हिंसा पर आधारित होती है। तुलसी की 'विनय-पत्रिका' में प्रेमरूपा भक्ति की प्रधानता है। साथ ही सात्त्विकी गोपी भक्ति का भी निर्वाह किया गया है।

प्रेम सखा भक्ति की तीन कोटियाँ होती हैं—गौण, मुख्य और अनन्य। तुलसी का प्रेम 'अनन्य' है। अतः उनकी भक्ति अनन्य है "जायं कहाँ तजि चरन तिहारे"आदिक पदों में उनकी अनन्य भक्ति मुखरित है। भक्ति का सच्चा स्वरूप वस्तुतः यही है। भक्ति को 'परानुक्तिरीश्वरे' तथा 'सात्वस्मिन प्रेमस्वरूपा' मानकर चलने पर ज्ञात होता है कि प्रेमजन्य अनन्य निष्ठा का नाम ही भक्ति है। 'विनय पत्रिका' में इसी की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है।

साधन की दृष्टि से नवधा भक्ति का विधान किया गया है। इसे वैधी भक्ति भी कहा जाता है। इस भक्ति में शास्त्रानुमोदित विधि निषेध का अनुसरण करना आवश्यक माना जाता है। यह नौ प्रकार की मानी जाती है—(i) स्मरण (ii) कीर्तन (iii) स्मरण (iv) याद-सेवन (v) अर्चन (vi) वन्दन (vii) दास्य (viii) सख्य तथा (ix) आत्म समर्पण।

तुलसी की 'विनय पत्रिका' में प्रायः सभी प्रकार की भक्ति के उदाहरण मिल जाते हैं। आठवीं प्रकार की भक्ति का आभास केवल स्थान पर मिलता है। 'दास्य' और 'आत्मनिवेदन' की अभिव्यंजना सर्वाधिक है।

वह नवधा भक्ति की पद्धति का अनुसरण करते हुए भक्ति की उच्चतम अवस्था को पहुँच जाते हैं। वह स्वयं अपने आप सब प्रकार के पापों के लिए दोषी ठहराते हैं तथा आराध्य की पवित्रता और श्रेष्ठता का अनेक प्रकार से प्रतिपादन करते हैं। उनका कहना है कि—

काम लोलुप भ्रमत मन हरि, भगति परिहरि तोरि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा— है प्रभु मेोई सब दोसु
सीलसिंधु, कृपालु, नाथ, अनाथ, आरत-पोसु ।

'विनय पत्रिका' में उपलब्ध कथनों के आधार पर हम निस्संकोच रूप से कह सकते हैं कि उसमें श्रीमद्भागवत् में निरूपित नवधा भक्ति के सर्वगुणों से सम्पन्न भक्त के उदात्त हृदय की प्रेममयी अविरल भावनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है ।

भक्ति की भूमिकाओं एवं उसके नियमों का निर्वाह पाया जाता है—वैष्णव अथवा भागवत धर्म-पद्धति के अनुसार भक्ति की सात भूमिकायें मानी जाती हैं—(i) दीनता (ii) मान मर्षता (iii) भय दर्शन (iv) भर्त्सना (v) आश्वासन (vi) मनोराज्य और (vii) विचारणा ।

'विनय पत्रिका' के पदों में इन समस्त भूमिकाओं का सुन्दर निर्वाह पाया जाता है । भय-दर्शन का एक उदाहरण देखिये—

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो ।
हरिपद विमुख लह्यो न काहू सुख, सठ यह समुझि सबेरो ।

निम्नलिखित पद में भर्त्सना की मार्मिक अभिव्यंजना है—

ऐसी मूढ़ता या मन की ।
परिहरि राम भगति सुर सरिता आस करत ओस कन की ।

वैष्णव भक्ति-पद्धति के अनुसार शरणागति के ६ नियमों का विधान है—(i) अनुकूल गुणों का संकल्प (ii) प्रतिकूल गुणों का त्याग (iii) इष्टदेव द्वारा रक्षित होने का आश्वासन (iv) गोप्तृप्त का वर्णन (v) आत्म-निक्षेप तथा कार्पण्य ।

'विनय पत्रिका' के पदों में हमको इन नियमों की सफल अभिव्यक्ति प्राप्त होती है । देखिए, अनुकूल गुणों को धारण करने के संकल्प की व्यंजना कितनी मनोहारी है—

अबलौं नसानी, अब न नसैहों ।
× × ×
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कचनहिं कसैहों ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शील का निर्वाह इस भक्ति-पद्धति का लक्षण है—'विनय पत्रिका' में ऐसे अनेक पद हैं जिनमें शील और भक्ति की अन्योन्याश्रितता की ओर संकेत किया गया है। "तुम अपनायो तव जानिहै। जव मन घिरि परिहै।" सदृश कथन करके गोस्वामी जी ने शील वृत्ति अथवा सदाचार को भक्ति का नित्य लक्षण वता दिया है। इस प्रकार विनय पत्रिका में निरूपित भक्ति-भावना के अन्तर्गत धर्म आ जाता है। देखिये भक्त तुलसी का यह मनोराज्य—

कबहुंक हौं यहि रहनि रहौंगो।
रघुनाथ कृपालु कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो।

भक्ति-भावना और धर्म-परता का नित्य सम्वन्ध 'विनय पत्रिका' की भक्ति पद्धति की सवसे वड़ी विशेषता है। धर्म का विरोध एक ही बात है। जिसे राम प्रिय नहीं उसे धर्म प्रिय नहीं। 'विनय पत्रिका में इस सिद्धान्त की सफल अभिव्यक्ति निम्नलिखित पद में दिखाई देती है—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।
तुलसी सो सब भांति परम हित, पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासो होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो।

निष्कर्ष—'विनय पत्रिका' में तुलसी ने स्पष्ट कह दिया है कि राम की भक्ति ही जीव का परम इष्ट एवं चरम साध्य है। इसके लिए शास्त्र सम्मत नियमों का निर्वाह, अनन्य प्रेम, पूर्ण निष्ठा एवं प्रभु-कृपा पर विश्वास अपेक्षित हैं। भगवान राम उनकी 'विनय पत्रिका' स्वीकार लेते हैं और समाज में मंगलमय वातावरण छा जाता है, यह कह कर उन्होंने भक्त जन के हृदय को आशा और विश्वास से भर दिया है। यही कारण है कि 'विनयपत्रिका' के पद भक्त-हृदय के सर्वस्व वन गये हैं। 'विनय पत्रिका' पढ़ कर भक्त-हृदय को यह विश्वास हो जाता कि दुनियाँ एक तरफ और राम की भक्ति एक तरफ। आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन अक्षरशः, सत्य है कि, भक्ति रस का पूर्ण परिपाक जेसा 'विनय-पत्रिका' में पाया जाता है वैसा अन्यत्र नहीं। × × गोस्वामीजी की विनय-पत्रिका' भक्ति-रस के नाना स्वादों से भरी हुई है। हिंदी साहित्य में यह एक अनमोल रत्न है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न ७४—विनय पत्रिका हिंदी साहित्य का एक अनमोल ग्रन्थ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, के इस कथन के औचित्यानौचित्य पर विचार कीजिए।

अथवा

प्रश्न ७५—वे क्या कारण हैं जिनके आधार पर 'विनय-पत्रिका' को तुलसीदासजी की सर्वोत्तम कृति माना जाता है अथवा माना जा सकता है?

अथवा

प्रश्न ७६—"तुलसी के भाव तथा विचार पक्षों का सुन्दर समन्वय 'विनय-पत्रिका' में उपलब्ध है।" समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ७७—भावोत्कर्ष की दृष्टि से तुलसी के ग्रन्थों में 'विनय-पत्रिका' का स्थान निर्धारित कीजिए।

अथवा

प्रश्न ७८—यदि तलसीदास केवल विनय-पत्रिका लिखते तो उनका हिंदी साहित्य में क्या स्थान होता? तर्क-संगत उत्तर दीजिए।

अथवा

प्रश्न ७९—विनय-पत्रिका के पद लालित्य, अर्थ गाम्भीर्य और काव्य गुणों पर प्रकाश डालते हुए यह दिखाइए कि किन विशेषताओं के कारण 'विनय-पत्रिका' को भक्तों के गले का हार कहा जा सकता है।

अथवा

प्रश्न ८०—विनय-निवेदन-पदावली के रूप में 'विनय-पत्रिका' की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ८१—गीति काव्य की दृष्टि से 'विनय-पत्रिका' का मूल्यांकन कीजिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथवा

प्रश्न ८२—काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से विनय-पत्रिका के महत्व पर प्रकाश डालिए। 'विनय-पत्रिका' को तुलसी की एक मात्र रचना मानते हुए केवल इसी कृति के आधार पर हिंदी कवियों में तुलसी का स्थान निर्धारित कीजिए।

उत्तर—यथाक्रम से रचित विषय-वस्तु—विनय-पत्रिका भगवान की सेवा में भक्त द्वारा भेजी हुई पत्रिका है। इसका क्रम व शिष्टाचार वैसा ही है जैसा कि किसी दरबार में प्रस्तुत की जाने वाली पत्रिका का होता है। इस क्रम-निर्वाह में तुलसी को पूर्ण सफलता मिली है। साथ-साथ इसमें भक्ति की भूमिकाओं का भी निर्वाह है और यह एक वैष्णव भक्ति का क्रमबद्ध रचित सांगोपांग ग्रन्थ ठहरता है। इस पत्रिका को इस प्रकार रचा गया है कि वह जिसके पास पहुँचेगी, वही द्रवीभूत हो जाएगा। अतः इसका उपसंहार सर्वथा स्वाभाविक एवं आशाप्रद है। भगवान राम कलियुग के खिलाफ़ तुलसी की शिकायत सुन लेते हैं और उनको उद्धार का आश्वासन दे देते हैं—**"मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ हाथ सही है।**

'विनय-पत्रिका' में जीव के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने में कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है—इस ग्रन्थ में गोस्वामी तुलसीदासजी ने जीव के परमार्थ पर विस्तार से विचार किया है। इसमें कवि का लक्ष्य है—जीव को मोक्ष का मार्ग दिखाना। इसमें गोस्वामीजी जागतिक जीवन के दुखादि का वर्णन करते हैं, उनके निवारण के उपाय पर विचार करते हैं, विभिन्न विश्वासों और मतों का समन्वय करते हैं और अन्त में निष्कर्ष रूप राम भक्ति का सरल सुन्दर पथ निर्दिष्ट करते हैं। इस सम्पूर्ण प्रयत्न में उनको पूर्ण सफलता प्राप्त होती है। यह ग्रन्थ भक्त-जन के हृदय का सर्वस्व है और तुलसी की अत्यन्त श्रेष्ठ रचना मानी जाती है। कतिपय भक्त जन तो इसे रामचरितमानस से भी अधिक श्रेष्ठ रचना कहने को तैय्यार हैं।

'विनय-पत्रिका' की श्रेष्ठता के कई कारण हैं—इस ग्रन्थ में गोस्वामीजी ने राम-कथा का गायन तो नहीं किया है, परन्तु इसमें उनकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काव्य-प्रवृत्तियों का निचोड़ है। इसमें हमें भक्ति के चरमोत्कर्ष और काव्य सौष्ठव के श्रेष्ठतम स्वरूप के दर्शन होते हैं। संक्षेप में इस ग्रन्थ की विशेषताएँ निम्नलिखित प्रकार हैं।

(१) भक्ति का चरमोत्कर्ष—इस ग्रन्थ में तुलसी ने अपनी राम-भक्ति का परिचय अनन्यतम रूप में दिया है। इसमें हम श्रुतिसम्मत और विरति-विवेकसंयुत भक्ति की पूर्ण पद्धति का अनुसरण पाते हैं। इस ग्रन्थ के प्रत्येक पद में हमको भक्त के निश्छल हृदय की झांकी उपलब्ध होती है। प्रत्येक पद दैन्य भाव अनन्य भक्ति, पूर्ण निष्ठा, समर्पण-भावना तथा विनम्रता से आपूरित है। इसमें पग-पग पर हमको भक्ति का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है—

गरैगी जीह जो कहौं और को हौं।
जानकी जीवन ! जनम-जनम जग ज्यायो तिहारेहि कौर को हौं।
× × ×
तुलसिदास सीतल नित यहि बल, बड़े ठिकाने ठौर को हौं।

निर्मल भक्ति भावना की मार्मिक अभिव्यक्ति के स्वरूप-दर्शन के लिए एक और उदाहरण देख लीजिए—

कबहुँ कृपा करि रघुबीर। मोहूं चितै हो !
× × ×
तुलसिदास कासों कहै ? तुमही सब मेरे,
प्रभु गुरु मात पितै हो !

और बस, भगवान मानो उनकी निर्मल हृदय से निकलने वाली आर्त्त पुकार को सुन लेते हैं—

कृपा गरीब निवाज की, देखत गरीब की, साहब बाँह गही है।
बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि में हूँ लही है।

भक्ति-वाणी का ऐसा चरम-विकास अन्यत्र दुर्लभ है।

(२) शान्त रस का अगाध सिंधु लहरें लेता हुआ दिखाई देता है—इस ग्रन्थ में जागतिक दुःखों का निरीक्षण करते हुए तुलसी ने बड़े ही सहज स्वाभाविक ढंग से वैराग्य भाव का प्रतिपादन किया है। इस दृष्टि से यह एक बहुत ही श्रेष्ठ कृति बन पड़ी है। इसमें प्रत्येक पद में शांत रस का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सागर लहरें लेता हुआ दिखाई देता है जिसके किनारे खड़े होने वाले साधक का मन सर्वथा तृप्त हो जाता है—

अजहुँ जानि जिय मानि-हारि हिय होइ पलक महँ नीको।
सुमिरु सनेह सहित हित रामहिं, मानु मतो तुलसी को।

(३) हृदय की निश्छलता एवं भाव-गाम्भीर्य—'विनय-पत्रिका' के प्रत्येक पद से तुलसी के हृदय की निश्छलता प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। प्रत्येक पंक्ति से उनके मन की वेदना और कुछ प्रभु के प्रति उन्मुख होने के संकल्प की दृढ़ता टपकती हुई दिखाई देती हैं। गम्भीर भक्ति भाव से पूरित हृदय से निःसृत निर्मल भावों की मंदाकिनी का संस्पर्श प्राप्त करने के लिए सहृदय पाठक को विनय-पत्रिका रूपी भक्ति-सागर का दर्शन करना चाहिए। यथा—

कबहुँ मन बिस्राम न पायो।
निसदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख, जहँ तहँ इन्द्रिन तान्यो।
× × ×
तुलसिदास कब तृषा जाय सर खनतहिं जनम सिरान्यो।

एक अन्य पद में निश्छल हृदय की भावाभिव्यक्ति का दर्शन कीजिए—

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम-भक्ति-सुरसरिता, आस करत ओस कन की।
× × ×
कहँ लौं कहौं कु चालि कृपानिधि, जानत हौं गति जनकी।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की।

(४) सन्त-स्वभाव की प्राप्ति पर बल—तुलसी सन्त स्वभाव को राम भक्ति का लक्षण मानते हैं। उनके मतानुसार सदाचरण ही जीवन का चरम लक्ष्य है। राम का प्रेम और धर्म का प्रेम एक ही बात है। जब तक व्यक्ति ने ईर्ष्या, द्वेष आदिक अवगुणों को नहीं छोड़ दिया है, तब तक वह कैसे कह सकता है कि उसे शील-निधान राम प्रिय हैं। उनकी तो सबसे बड़ी कामना ही यह है कि वह राम-भक्ति-पथ पर चलकर राम के मार्ग पर चलने योग्य बन सकें—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ-कृपालु कृपा तें, संत-सुभाव गहौंगो ।
× × ×
परिहर देह-जनित चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अविचल हरि भगति लहौंगो ।

वह राम भक्ति का लक्षण ही यह मानते हैं कि मन आप से आप सुशीलता की ओर ढल जाए—"हौं अपनायो तब जानिहौं कब मन फिरि परिहै ।" जिसे राम प्रिय नहीं, उसे धर्म प्रिय नहीं, अतः उसे त्याग देने में ही कल्याण है । मीरावाई को उनके पत्र का उत्तर देते समय तुलसीदास ने यही उत्तर तो दिया था—

जाके प्रिय न राम वैदेही,
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ।

इन पंक्तियों को ऐकान्तिक साधना की प्रतिपादक नहीं समझना चाहिए । सदाचारी व्यक्ति सद्भावनापूर्ण वातावरण की सृष्टि करता है । इस प्रकार साधु-मत लोकहित के उद्देश्य में सहायक होता है । व्यक्तियों से मिलकर ही समाज या लोक का निर्माण होता है ।

(५) आत्मालोचन पर बल—व्यक्ति का सुधार तभी सम्भव है जब वह आत्म-विकास के प्रति सदैव सजग रहे । इसके लिए आवश्यक है साधक अपनी त्रुटियों को अपना गुरु माने और उनसे शिक्षा ग्रहण करता रहे । तुलसीदास ऐसे ही साधक भक्त हैं । उन्होंने भक्त के लिए आत्म दोषों से अवगत रहना और उनके प्रक्षालन के लिए प्रयत्नशील रहना आवश्यक वताया है । आत्मालोचन द्वारा आत्मविकास की प्रेरणा देने वाली पंक्तियां साधक जन के गले का हार हैं । यथा—

कैसे देउँ नाथहि खोरि ।
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि, भगति परिहरि तोरि ।
× × ×
देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता अस मोरि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी संदर्भ के अन्तर्गत तुलसी ने सत्संगति की आवश्यकता बताई है। उनका यह निश्चित मत है कि विना सत्संग के भक्ति नहीं हो सकती है—

बिन सत्संग भक्ति नहिं होई।
ते तब मिलैं द्रवैं जब सोई।
जब द्रवैं दीन दयालु राघव,
साधु संगति पाइए। × आदि।

(६) **लोक-मंगल की भावना**—गोस्वामीजी भक्त की साधना को लोक-मंगल की साधना का हेतु ही मानते थे। उनकी हरि-भक्ति दृश्यमान जगत के प्रति सेवा-भाव की पर्याय थी। 'विनय-पत्रिका' की यह वहुत बड़ी विशेषता है कि उसमें लोक-मंगल की भावना जीव मात्र के कल्याण की कामना आद्यन्त व्याप्त पाई जाती है। 'विनय-पत्रिका' यद्यपि आत्माभिव्यक्ति प्रधान काव्य है, तथापि वह लोक-मंगल की भावना द्वारा अनुप्राणित है। यथा—

राम जपु राम जपु, राम जपु बावरे।
घोर भव-नीर-निधि नाम निज नावरे।
एक ही साधन सब रिद्धि सिद्धि साधिरे।
ग्रुसे कलि-रोग-जोग संजम समाधि रे।

लोक-मंगल का तत्त्व 'विनय-पत्रिका' को रामचरितमानस' की कोटि की साधनावस्था का ग्रन्थ बना देता है।

(७) युग-जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति

'विनय-पत्रिका' की रचना यद्यपि एक भक्ति ग्रन्थ के रूप में हुई है, तथापि उसमें तुलसी ने युग-जीवन की उपेक्षा नहीं की है। उसमें उन्होंने एक ओर परोक्ष रूप से आत्म-चरित सम्बन्धी संकेत दिए हैं और दूसरी ओर अपने युगीन समाज की विभिन्न दशाओं का भी उल्लेख किया है। तत्कालीन समाज का चित्र प्रस्तुत करते हुए वह लिखते हैं कि—

आस्रम बरन धरम बिरहित, जग लोक बेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पाय रत, अपने-अपने अंग रई है॥
सांति सत्य सुभ रीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु साधुता सोचति, खल बिलसति हुलसति खलई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी प्रकार राजनीतिक दशा का यह वर्णन देखिए—

राज समाज कोटि कटु, कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परिमिति, रति हेतुवाद हठि हेरि हई है।।

(८) दार्शनिक विचारों का समन्वय

'विनय-पत्रिका' वैष्णव भक्ति का सांगोपांग ग्रन्थ है। भक्ति की सातवीं भूमिका 'विचारण' के अन्तर्गत दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन किया जाता है। तुलसी ने भी ऐसा ही किया है, परन्तु वहुत ही मनोरम शैली में। उन्होंने दार्शनिक सिद्धान्तों को वहुत ही संक्षेप में सुलझा कर रख दिया है साथ ही उनका परस्पर और साथ-साथ भक्ति के साथ उनका समन्वय भी प्रस्तुत कर दिया है। दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन साधन मात्र है, साध्य नहीं—यह बात जितनी कुशलता के साथ 'विनय-पत्रिका' में मिलती है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है—

केसव कहि न जाइ का कहिये।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये।
× × ×
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै।

काव्य और दर्शन का, हृदय और मस्तिष्क का ऐसा सुखद समन्वय अन्यत्र दुर्लभ है। दार्शनिक सिद्धान्त को कवित्वपूर्ण शैली में प्रस्तुत करना 'विनय-पत्रिका' की वहुत वड़ी विशेषता है।

(९) धार्मिक मत-मतान्तरों का निराकरण— जिस युग में कवि गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव हुआ उस युग में अनेक धर्म और सम्प्रदाय फैले हुए थे और इस प्रकार सच्ची धर्म-भावना का लोप हो गया था अथवा यह कहिए कि धर्म-भावना के साथ जन-जीवन का सम्वन्ध छूट गया था। तुलसी ने भगवान राम को अपनी विनय सुनाने के साथ-साथ कवित्वपूर्ण शैली में—कान्ता समस्त उपदेश की शैली में, अपने युग में प्रचलित प्रायः समस्त धार्मिक मत-मतान्तरों का निराकरण कर दिया। उन्होंने अपने समाज और उसकी धर्म भावना को कवित्वपूर्ण शैली में वाणी प्रदान की। एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सफल काव्य ग्रन्थ की भाँति 'विनय-पत्रिका' की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि उसमें उच्चकोटि की भावाभिव्यक्ति होने पर भी लोक की उपेक्षा नहीं हुई है। इस ग्रन्थ में तुलसी ने गणेशजी से लेकर परब्रह्म रूप राम तक सभी प्रमुख देवताओं की स्तुति करके और सबसे राम भक्ति की याचना करके यह स्थापना कर दी कि मत-मतान्तरों को सामाजिक जीवन में स्थान देना उचित नहीं, क्योंकि सबका उपास्य (देवताओं का भी अन्ततः एक ही है। उन्होंने शिव और शक्ति की वन्दना की है और साथ ही उनसे राम-भक्ति का वर मांगा है। ऐसा करके उन्होंने शैवों, शाक्तों और वैष्णवों के मध्य नित्य होने वाले विवाद को बहुत कुछ समाप्त कर दिया। इसी प्रकार उन्होंने राम के सगुण और निर्गुण दोनों रूपों को मान कर साकार और निराकार सम्बन्धी द्वन्द्व को शांत कर दिया। मत-मतान्तरों का यह सहज निराकरण 'विनय-पत्रिका' की एक विशेषता ही नहीं, बहुत बड़ी उपलब्धि भी है।

मत-मतान्तरों के इस निराकरण में तुलसी खण्डन-मण्डन की पद्धति का अवलम्बन करके भावात्मक ढंग से धार्मिक विश्वासों में, समरसता लाने की चेष्टा की है। इस प्रकार 'विनय-पत्रिका' काव्य को जीवन से सम्बन्धित करने में बहुत कुछ सफल हुई है। सामाजिक संघर्ष के निराकरण में सफलता ही इसको उच्च श्रेणी के काव्य-ग्रन्थों की पंक्ति में बैठा देती है।

(१०) काव्य और संगीत का मणि-कांचन संयोग—'विनय-पत्रिका' की रचना संगीत शास्त्र के विभिन्न राग-रागनियों में बंधे हुए गेय पदों में हुई है। ये राग-रागनियाँ पद विशेष में अभिव्यक्त रस के अनुरूप हैं। काव्य और संगीत का यह मधुर समन्वय उनकी किसी अन्य कृति में उपलब्ध नहीं होता है। यद्यपि इनकी 'गीतावली' की भी रचना गेय पदों में हुई है, तथापि काव्य और संगीत के समन्वय के क्षेत्र में वह 'विनय-पत्रिका' की श्रेष्ठता को नहीं पाती है। 'विनय-पत्रिका' का कोई भी ऐसा पद नहीं है जिसमें किसी राग-रागिनी विशेष का शास्त्रानुमोदित निर्वाह न पाया जाता हो। और फिर इसके ऊपर है पदों में अविच्छिन्न रूप से व्याप्त तुलसी के भक्त हृदय की भावुकता। इन कारणों से 'विनय-पत्रिका' भावुक भक्तों, सहृदय पाठकों एवं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणग्राही संगीतज्ञों के गले का समान रूप से हार बनी हुई है। निम्नांकित पद हमारे कथन की पुष्टि करेगा—

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे।
काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे।
× × ×
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज, सब माया-बिबस बिचारे।
तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु, कहा अपुनपौ हारे:

(११) पाण्डित्य पूर्ण भाषा—विनय-पत्रिका की भाषा परिनिष्ठित व्रजभाषा है। व्रजभाषा का ऐसा संस्कृत गर्भित, परिमार्जित तथा सहज-सुबोध स्वरूप अन्यव दुर्लभ है। कोमल कान्त पदावली युक्त 'विनय-पत्रिका" की भाषा में कवि का पाण्डित्य पग-पग पर झाँकता हुआ दिखाई देता है। केवल एक इसी विशेषता के कारण तुलसी की 'विनय-पत्रिका व्रजभाषा के श्रेष्ठतम ग्रन्थों में गिनी जाने योग्य ठहरती है। सरल, साहित्यिक परिनिष्ठित व्रजभाषा का एक उदाहरण देखिए—

लाभ कहा मानुष तनु पाये।
काय-बचन-मन सपनेहुँ कबहुँक घटत न काज पराये।
जो सुख सुरपुर नरक गेह वन आवत बिनहिं बुलाये।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन, समुझत नहिं समुझाये।

संस्कृत गर्भित कोमल कान्त पदावली भी देखिए। इसे पढ़ते ही जयदेव के 'गीतगोविन्दम् की सरस कोमल कान्त पदावली की रुनझुन का स्मरण हो आता है—

जयति मंगलगार संसार भारापहार वानराकर विग्रह पुरारी।
राम-रोषानल-ज्वालमाला-मिष ध्वान्तचर-सलभ संहारकारी।

(१२) मनोहारी वाक् चातुर्य और भाव-गर्भित उक्ति वैचित्र्य—गोस्वामीजी की वात कहने का ढंग वहुत ही प्रभावशाली है। वह अपनी वात को इतनी वाक्-पटुता के साथ प्रस्तुत करते हैं कि उसमें विचित्र प्रकार की लोच-जिसे काव्य-चमत्कार कहते हैं—आ जाता है। 'विनयपत्रिका' के कई पदों में भाव-गाम्भीर्य और वाक्-चातुर्य का सुन्दर समन्वय दृष्टिगोचर होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। निम्नलिखित पद में वह माता जानकी की स्तुति करके बड़ी ही चतुराई के साथ भगवान राम तक अपनी बात पहुँचाना चाहते हैं। इसमें वाक्-चातुर्य में एक राजनीतिज्ञ की कुटिलता नहीं, वल्कि भावुक भक्त के हृदय की अनन्य प्रेम प्रसूत सरलता दिखाई देती है—

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन कथा चलाइ।
× × ×
जानकी जग जननि जन की किये वचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव-नाथ-गुनगन गाइ।

तुलसी सब कुछ समझते हैं। इस कारण अपने आप में लघुत्व का अनुभव करते हैं। इस स्वाभाविक दैन्य के कारण उनकी वाणी सीधे मर्म को वेधकर निकल जाती है। उक्ति-वैचित्र्य के ऐसे उदाहरण विनय-पत्रिका में भरे पड़े हैं—

तौ हौं बार-बार प्रभुहिं पुकारिकै खिजावतो न
जो पै मोको होतो कहूँ ठाकुर-ठहरु

(३) उच्च कोटि के कला-विधान का समावेश—तुलसी ने इस ग्रन्थ में अपनी 'कला' को महिमा मण्डित स्वरूप में प्रस्तुत किया है। 'विनय-पत्रिका' का प्रत्येक पद यद्यपि मुक्तक-काव्य के अन्तर्गत परिगणित होता है, तथापि सम्पूर्ण 'विनय-पत्रिका' एक क्रमबद्ध रूप से रचा हुआ ग्रन्थ है। उसमें वैष्णव भक्ति का सांगोपांग विवेचन है। उसमें भक्ति की सातों भूमिकाओं, वैधी भक्ति के नवों अंगों तथा शरणागति छओं नियमों का सुन्दर निर्वाह है। इस प्रकार 'विनयपत्रिका' प्रवन्धात्मक मुक्तक-काव्य का वहुत ही सुन्दर उदाहरण है।

'विनयपत्रिका' को भगवान राम की सेवा में प्रेषित करने के लिए तुलसी ने दरबारी पद्धति अपनाई है। पहले वह मुसाहिवी तौर-तरीके से समस्त देवताओं की स्तुति करते हैं और फिर बड़ी कुशलता के साथ भक्ति की समस्त मर्यादाओं का निर्वाह करते हुए अपनी आर्त्त वाणी सुनाते हैं। एतदर्थ उन्होंने बड़ी प्रभावशाली संगीतात्मक शैली का प्रयोग किया है। कहने की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आवश्यकता नहीं है कि इनकी भावप्रवण शैली में प्रयुक्त साहित्यिक भाषायें अनेकानेक अलंकार इनके संकेत पर कृत्य करते हुए परिलक्षित होते हैं। विभावना और विशेषोक्ति अलंकारों का एक साथ सफल निर्वाह देखिए। इसमें प्रयत्न न होकर स्वाभाविक प्रस्फुटन ही दिखाई देता है—

सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोये मिटइ न मरइ भीति, दुख पाइय एहि तनु हेरे।

निष्कर्ष—काव्य-कला की दृष्टि से 'विनयपत्रिका' तुलसीदास की सर्व श्रेष्ठ रचना है। गोस्वामी तुलसीदास यदि केवल 'विनयपत्रिका' ही लिखते, तब भी वह हिन्दी के मूर्धन्य कवियों में शीर्ष स्थान के अधिकारी होते। यह काव्य रसिकों, संगीत-प्रेमियों, भावुक भक्तों और 'दर्शन' शास्त्र के पण्डितों का समान रूप से कण्ठहार बनी हुई है।

प्रश्न ८३—'विनय-पत्रिका' मुक्तक काव्य रचना है अथवा एक प्रबन्ध काव्य ? इस सम्बन्ध में अपना युक्तियुक्त उत्तर प्रस्तुत कीजिए।

अथवा

प्रश्न ८४—'विनय-पत्रिका' एक क्रमबद्ध काव्य-रचना है।" इस कथन की समीक्षा कीजिएं।

अथवा

प्रश्न ८५—"विनय-पत्रिका' एक प्रबन्धात्मक मुक्तक काव्य-रचना है।" इस कथन की परीक्षा कीजिए।

उत्तर—काव्य के दो भेद-प्रबन्ध काव्य और मुक्तक-काव्य—

रचना-क्रम के आधार पर काव्य के दो भेद माने गये हैं—प्रबन्ध काव्य और मुक्तक-काव्य। जिस काव्य-रचना में किसी कथानक का निर्वाह हो, उसे 'प्रबन्ध काव्य' कहते हैं। इसके छन्दों में पूर्वापर सम्बन्ध होता है। इसके विपरीत 'मुक्तक-काव्य' का प्रत्येक छन्द स्वतन्त्र होता है। उसके छन्दों में किसी प्रकार के पूर्वापर सम्बन्ध एवं कथानक के निर्वाह की आवश्यकता नहीं होती है। कबीर और मीरा के पद, रसखान के कवित्त-सवैये, बिहारी के दोहे आदि मुक्तक-काव्य के उदाहरण हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रबन्ध काव्य के लिए कथावस्तु, नायक और रस-सिद्धि की अनिवार्यता बताई गई है। प्रबन्ध काव्य की घटना भूमिका, विकास और उपसंहार के क्रमों को सुगठित रूप से पार करती हुई अन्त में काव्य के फल का आस्वाद नायक को कराती है। अतः प्रबन्ध काव्य में कथावस्तु के फल के भोक्ता 'नायक' का होना अनिवार्य होता है। घटना चक्र के साथ-साथ उसके चरित्र का विकास होता चलता है।

'मुक्तक-काव्य' में इन सब बातों की आवश्यकता नहीं होती है। जब कथानक ही नहीं है, तब उसको वहन करने वाले 'नायक' उसके चरित्र विकास फल, प्राप्ति आदि की आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। उसमें भावों, घटनाओं, चरित्रों तथा रस की अभिव्यक्ति स्फुट रूप में रहती है। इस प्रकार रचना-क्रम से काव्य के वस्तुतः तीन भेद ठहरते हैं—प्रबन्ध काव्य, (महाकाव्य एवं खण्ड काव्य), मुक्तक-काव्य और प्रबन्धात्मक मुक्तक।

कुछ विद्वान विनय-पत्रिका को प्रबन्ध-काव्य मानते हैं—कुछ विद्वान कलियुग द्वारा तुलसी के पीड़ित होने को एक घटना मानते हैं। तुलसी उसी घटना को क्रमबद्ध रूप से—देवताओं से लेकर राम तक—सुनाते हैं। इसी घटना को लेकर तुलसी चलते हैं। वही इसके नायक हैं। इन आलोचकों की दृष्टि से घटना के रस के भोक्ता भी तुलसी ही हैं। प्रारम्भ से अन्त तक समस्त 'विनय-पत्रिका' में 'रस-निष्पत्ति' के लिए भी सुन्दर भाव-योजना मिलती है? शांत रस की विशद योजना पाकर वे प्रबन्ध-काव्य का रस-सम्बन्धी दृष्टिकोण भी सिद्ध कर देते हैं। मानव-जीवन तथा प्रकृति की स्फुट अभिव्यक्ति भी उसमें मिल ही जाती है।

विनय-पत्रिका प्रबन्धात्मक मुक्तक है—'विनय-पत्रिका' एक प्रार्थना पत्र है जो भगवान राम के दरबार में भेजा जाता है और उनके द्वारा स्वीकार किया जाता है। राजा महाराजा के पास कोई बाला-वाला अर्जी नहीं भेज देता है। पहले दरबार के मुसाहिबों की खुशामद करनी पड़ती है, उनको अपनी ओर मिलाना पड़ता है। इस बात को ध्यान में रखकर गोस्वामीजी ने समस्त देवी-देवताओं को मनाया है और अंत में माता जानकी से भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रार्थना कर दी है कि वह महाराज श्रीरघुनाथजी को यथावसर उनको स्मरण करा दें।

स्पष्ट है कि 'विनय-पत्रिका' का वर्ण्य-विषय कथावस्तु-विहीन है। इसमें न तो कोई घटना-क्रम है, न कोई नायक है और न उसका चरित्र विकास ही है। इसका प्रत्येक पद स्वतन्त्र रूप से लिखा गया प्रतीत होता है, परन्तु इतना अवश्य है कि इसके पदों में एक क्रम-विशेष दिखाई पड़ता है। डा० रामकुमार वर्मा ने इसको क्रम-बद्ध-रचना माना है—"यह रचना सम्यक्-ग्रन्थ रूप में ज्ञात होती है, क्योंकि इसमें मगंलाचरण है, और क्रम से अन्य देवी देवताओं की प्रार्थना है। उसके बाद राम की सेवा में 'विनय-पत्रिका' पहुँचा कर उसकी स्वीकृति ले ली गई है।"

हमारे विचार से इस ग्रन्थ में एक क्रम-विशेष अवश्य है, परन्तु प्रवन्ध काव्योचित कथा का निर्वाह, चरित्र-विकास, फल-प्राप्ति आदि नहीं हैं। इसमें भावों की अभिव्यक्ति है, परन्तु प्रवन्ध काव्योचित रस की अजस्र धारा का अभाव है। अतः इसको 'प्रवन्धात्मक मुक्तक' कहना ही समीचीन प्रतीत होता है।

इस सम्वन्ध में डा० सरनामसिंह ने वहुत ठीक लिखा है कि यद्यपि इसमें आवेदन-पत्र के विषय-क्रम का निर्वाह है, इसकी देवस्तुति में क्रम है, है, तथापि यह नहीं माना जा सकता है कि यहाँ घटना का भी क्रमिक विकास है।×भिन्न-भिन्न पदों में पृथक्-पृथक् आलम्वन का होना, उसकी स्फुटता का प्रमाण है। रचना के नायक का नायकत्व सम्वन्ध-कल्पना के वल पर है, वस्तु-व्यापार की एकता के आधार पर नहीं। प्रवन्ध की सिद्धि न होते हुए भी कवि-कला ने रचना में वह स्थिति और क्षमता निष्पन्न कर दी है कि उसमें प्रवन्ध का आभास सा मिलता है।"

कुछ विद्वान यह भी कहते हैं कि 'विनय-पत्रिका' यदि प्रवन्ध काव्य नहीं है, तो वह मुक्तक काव्य भी नहीं है। यदि उसमें घटनाओं का अभाव है, कथावस्तु का विकास नहीं है, चरित्रों का अभाव है, तथा प्रवन्ध काव्योचित रस-योजना का अभाव है तो उसका यह अर्थ तो नहीं है कि वह अनिवार्यतः एक मुक्तक-काव्य है। इसका उत्तर यही है कि 'विनय-पत्रिका' की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचना गेय पदों के रूप में हुई है और उसके प्रत्येक पद में हमको गीति काव्य के तत्वों का सफल समावेश उपलब्ध होता है। स्वाभावानुभूति के प्रकाशन की प्रमुखता और वस्तु-निक्षेप का अभाव, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता आदि समस्त गुण मुक्तक गीति-काव्य के ही हैं। साथ ही इन पदों में एक क्रम-विशेष भी प्रच्छन्न रूप से अनुस्यूत है। अतः इसको प्रवन्धात्मक मुक्तक कहना ही युक्तियुक्त है।

विनय-पत्रिका क्रमबद्ध काव्य-रचना है—मुक्तक-काव्य होते हुए भी विनयपत्रिका का क्रम वहुत ही सुन्दर है। यह हो सकता है कि इसके पद समय-समय पर वनाए गए हों, किन्तु इसकी रचना यथाक्रम से हुई है।

'विनयपत्रिका' सम्यक् ग्रन्थ के रूप में लिखित रचना है। इसमें मंगला-चरण है तथा क्रम से अन्य देवताओं की प्रार्थना है। उसके बाद राम की सेवा में 'विनयपत्रिका' पहुँचाकर उसकी स्वीकृति ले ली गई है।

यह कलियुग के खिलाफ शिकायत है, जो भगवान राम के पास भेजी गई है। भगवान राम के सम्मुख उपस्थित होने के पूर्व यह सात द्वारों में प्रविष्ट होती है। प्रत्येक द्वार पर एक द्वारपाल विराजमान हैं—गणेश, सूर्य, शिव, दुर्गा, यमुना और हनुमान। प्रत्येक द्वारपाल की स्तुति में एक पद है। शिव की स्तुति में १२ पद हैं—एक पद द्वारपाल के नाते तथा ११ पद एकादश रुद्र के नाते। ६ वें द्वार में प्रविष्ट होते ही दो वन दिखाई पड़ते हैं—(१) आनन्द वन, यह वन दाहिनी ओर है, इसके अधिष्ठाता शंकर हैं। इसे मुक्ति-क्षेत्र काशी कहते हैं, (२) चित्रवन—यह बाईं ओर है। इसके अधिष्ठाता हनुमान हैं। यह भगवान की नित्य लीला का प्रमोदकानन है। यहीं से 'विनय-पत्रिका' सातवें द्वार में प्रविष्ट होती है। हनुमानजी की स्तुति में १२ पद हैं—एक पद द्वारपाल के नाते और शायद और ११ पद एकादश रुद्र के नाते। ७ वें द्वार में होकर राजभवन में पहुँचते हैं। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और माता जानकी विराजमान हैं। उनकी स्तुति करने के पश्चात् भगवान राम के सम्मुख पहुँचते हैं। अन्त में पद सं० २७९ में यह कह कर कि मुदित माथ नावत, वनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ सही है, "ग्रन्थ का उपसंहार कर दिया है। इस प्रकार 'विनय-पत्रिका' सर्वथा एक शृंखलाबद्ध ग्रन्थ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विनय-पत्रिका वैष्णव भक्ति का सम्यक् ग्रन्थ है—वैष्णव भक्ति-पद्धति के अनुसार भक्ति की सात भूमिकाएँ मानी जाती हैं—(१) दीनता (२) मान-कर्षता (३) भय-दर्शन (४) भर्त्सना (५) आश्वासन (६) मनोराज्य और (७) विचारणा। 'विनयपत्रिका' में इनका सम्यक् निर्वाह पाया जाता है।

इसी प्रकार वैष्णव मत के अनुसार शरणागति के लिए ६ नियमों का विधान है—(i) अनुकूल गुणों का संकल्प (ii) प्रतिकूल गुणों का त्याग (iii) गोप्तृप्त का वर्णन (iv) आत्म-निक्षेप (v) कार्पण्य और (vi) इष्टदेव द्वारा रक्षित होने का आश्वासन। हम देखते हैं कि 'विनय-पत्रिका' में इनका निर्वाह पाया जाता है। 'विनयपत्रिका' के पदों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करके हम देखते हैं कि उसके समस्त पद सप्त भूमिकाओं और षट्नियमों के अन्तर्गत आजाते हैं। एक भी पद ऐसा नहीं है जो भक्ति की किसी भूमिका अथवा भक्ति के किसी नियम के अन्तर्गत न आ जाता हो। अतः स्पष्ट है कि 'विनयपत्रिका' में वैष्णव भक्ति का साँगोपांग निरूपण किया है। डा० रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' के अन्तर्गत ठीक ही लिखा है कि, "मेरे विचार से 'विनयपत्रिका' एक पूर्ण रचना है, जिसकी रूप-रेखा ग्रन्थ के रूप में हुई है।×× साधारण रूप से देखने में पद क्रमहीन जान पड़ते हैं पर वास्तव में इनमें एक प्रवाह है—एक क्रम है। तुलसीदास स्मार्त वैष्णव थे, अतः वह स्मार्त वैष्णवों के अनुसार पांच देवताओं की पूजा में विश्वास रखते थे—विष्णु, शिव, दुर्गा, सूर्य और गणेश। इन्हीं पंच देवों की स्तुति से उन्होंने 'विनयपत्रिका' आरम्भ की है। विष्णु रूप राम की स्तुति तो ग्रन्थ, भर में है।×× अतः इन्हीं सब कारणों से 'विनय-पत्रिका' एक सम्यक ग्रन्थ है।"

निष्कर्ष—भावों की स्फुटता, कथावस्तु और नायक का प्रभाव गीतात्मकता का आधिक्य, संक्षिप्तता तथा वैयक्तिकता आदि विशेषताएँ 'विनयपत्रिका' को मुक्तक काव्य की कोटि में लाकर रख देती हैं। परन्तु साथ ही उसमें एक निश्चित क्रम का भी निर्वाह है—उसमें हमको वैष्णव भक्ति का क्रमबद्ध सांगोपांग निरूपण भी मिलता है। अतः हम कह सकते हैं कि 'विनयपत्रिका'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक प्रबन्धात्मक मुक्तक काव्य है, जिसमें वैधी वैष्णव भक्ति-पद्धति का सम्यक् एवं सांगोपांग विवेचन किया गया है।

प्रश्न ८६—'विनय पत्रिका' में गोस्वामी जी ने एक स्थान पर लिखा है कि—

कोऊ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोऊ मानै।
तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै।

इस कथन को पल्लवित करते हुए गोस्वामी तुलसीदास के दार्शनिक विचारों की समीक्षा प्रस्तुत कीजिए।

अथवा

प्रश्न ८७—"विनय पत्रिका' कवि के आध्यात्मिक जीवन एवं दृष्टिकोण को समझने का सर्वोत्तम साधन है।" इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिये।

अथवा

प्रश्न ८८—आवश्यक स्थलों का संकेत करते हुए उन दार्शनिक मान्यताओं की मीमांसा कीजिए जिन पर तुलसी के विनय के पद आधारित हैं।

अथवा

प्रश्न ८९—'विनय पत्रिका' के आधार पर तुलसीदास जी की आध्यात्मिक मान्यताओं की संक्षिप्त रूप-रेखा प्रस्तुत कीजिये।

विनय पत्रिका की भक्ति-पद्धति का आधार दार्शनिक परिवेश है—

गोस्वामी तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में अपने भक्त-रूप की प्रतिष्ठा की है। उससे भिन्न पद्धति के द्वारा आपने 'विनय पत्रिका' में अपनी अनन्य राम भक्ति का परिचय दिया है। इस परिचय की पृष्ठभूमि ठोस दार्शनिक विचारों पर आधारित है। 'विनय पत्रिका' में आद्यन्त उनके दार्शनिक दृष्टिकोण का एक सुनिश्चित स्वरूप प्रतिपादित है। उसको विश्लेषणात्मक विवेचन द्वारा सरलता पूर्वक समझा जा सकता हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'विनय पत्रिका' में अभिव्यक्त आध्यात्मिक विचार

जगत-सम्बन्धी विचार—तुलसी जगत को मिथ्या मानते हैं—

जागु जागु जीव जड़ जो है जग-जामिनी।
देह-गेह-नेह जानि जैसे घन-दामिनी।
सोवत सपने सहै संसृति संताप रे।
बूड़ो मृगवारि, खायो जेवरी को साँप रे।

'विनय पत्रिका' में इस प्रकार के विचार कई स्थानों पर व्यक्त किये गए हैं। इन विचारों पर शंकराचार्य के मायावाद का प्रभाव स्पष्ट है। तुलसी जगत को शून्य नीति पर विना रंग के एवं तनुहीन चित्रकार द्वारा बनाया हुआ चित्र ही कह देते हैं—

शून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धोए मिटै न मरै, भीति दुख पाइय यहि तनु हेरे।

माया-सम्बन्धी विचार—मिथ्या जगत की सत्यवत् प्रतीति माया के कारण होती है। यह माया ब्रह्म के अधीन है और जीव इसके अधीन है --

हौं जड़ जीव ईस रघुराया।
तुम मायापति हौं बस माया।

हमारा अज्ञान ही वस्तुतः माया है। इसी के कारण जीव दुःख पाता रहता है—

माया बस स्वरूप बिसरायो।
तेहि भ्रम तें दारुन दुःख पायो।

माया सम्बन्धी ये विचार शंकराचार्य के 'मायावाद' के समान हैं। मिथ्या प्रतीति के लिए गोस्वामी जी ने रज्जु में सर्प का भ्रम, सीपी में चाँदी का भ्रम धुएँ में महलों का भ्रम, आकाश में फूली हुई वाटिका का भ्रम, सूर्य की किरणों में जल का भ्रम, जल में मकर का भ्रम, तैल में चन्द्र प्रतिबिम्ब को चन्द्रमा का भ्रम, आदिक दृष्टान्त प्रस्तुत किए हैं। वह बार-बार यही कहना चाहते हैं कि हम छाया को ही वास्तविक काया समझने की भूल करते हैं। इस कारण हमारे हाथ कुछ भी नहीं लग पाता है। संसार का यह मिथ्यात्व स्पष्टतः शंकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के मायावाद की देन है। यह भ्रम अथवा मिथ्याज्ञान जन्य प्रतीति ही समस्त दुःख का हेतु है इसके प्रति सचेत करते हुए वह कहते हैं कि—

जग नभ-वाटिका रही है फल फूलि रे।
धुआँ के से धौरहर देखि तू न भूलि रे।

वस्तुतः जगत की भयंकरता एवं भ्रमात्मकता का कारण राम की अविद्या माया है, जिसका तुलसी ने विस्तार से विनय पत्रिका में वर्णन किया है।

जीव-सम्बन्धी विचार—सिद्धान्त तुलसी जीव को ब्रह्म रूप मानते है। परन्तु व्यवहार के क्षेत्र में वह माया-जाल में फंस गया है। अतः वह अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गया है।

एक भक्त के रूप में तुलसी द्वैत भाव मानते हैं, साथ ही वह यह भी कहते हैं कि जीव को द्वैत का आभास इसलिए होता है, क्योंकि वह जगत में आकर विकार-ग्रस्त हो गया है। यदि वह समस्त विकारों का त्याग कर दे, तो द्वैत भावना के भ्रम से मुक्त हो सकता है—

जो निज मन परिहरै विकारा।
तो कत द्वैत-जनित संसृति दुख संसय सोक अपारा।

ईश्वर-सम्बन्धी विचार—जीव चिदंश है। इसका अंशी निर्गुण और सगुण—दोनों रूपों वाला अनादि, अखण्ड तथा अच्युत है। राम को तुलसी ने उसी ब्रह्म का लीलावतार माना है। लीलावतारी राम परब्रह्म नहीं, वल्कि परब्रह्म के 'विष्णु' रूप के अवतार हैं। तुलसी के राम अद्वैत, अज, अखण्ड हैं। साथ ही जीव-भिन्न रूप धारण कर अपनी लीला दिखाते हैं। इस कारण द्वैत रूप भी हैं।

जितने भी देवी-देवता हैं, वे भी राम के समान ब्रह्म राम के ही अंश हैं। तुलसी प्रत्येक में ब्रह्म रूप का दर्शन करते हैं। प्रत्येक की उपासना के द्वारा वह अद्वैत ब्रह्म राम की ही उपासना करते हैं। यही कारण है कि 'विनय-पत्रिका' में यद्यपि तुलसी ने अनेक देवी-देवताओं की बन्दना की है, तथापि उन्हें राम का अनन्य भक्त कहा जाता है। वह विभिन्न देवी-देवताओं में राम के अतिरिक्त कुछ देख ही नहीं सकते थे। इतना ही नहीं, वह प्रत्येक देवी-देवता से 'राम भक्ति' की ही याचना करते हैं। राम के प्रति उनकी अनन्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्ति का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण चाहिये ? उनका बहुदेववाद वस्तुतः अद्वैतवाद का ही प्रतिपादक है। प्रत्येक प्राणी उसी एक ब्रह्म राम का चिदंश है। आनन्द तत्व का आविर्भाव होने पर हमें देवत्व के दर्शन होने लगते हैं।

सिद्धान्त—प्रश्न उठता है कि वस्तुतः तुलसी ने 'विनय-पत्रिका' में किस दार्शनिक सिद्धान्त के प्रति निष्ठा व्यक्त की है। यों तो गोस्वामीजी की समन्वय बुद्धि समस्त दार्शनिक सिद्धान्तों में अविरोध देखती है, सभी को यथास्थान महत्त्व भी प्रदान करती है, पर उनके प्रस्थान के अनुरोध तथा ग्रन्थ के उपक्रम एवं उपसंहार पर विचार करके हम देखते हैं कि उन्हें सिद्धांत रूप में शांकर 'अद्वैत' ही मान्य है। उनके जगत, जीव और माया सम्बन्धी विचार स्पष्टतः 'मायावाद' द्वारा प्रभावित हैं। कुछ विद्वान उनके भक्ति भाव को देखकर उन्हें 'द्वैतवाद' का समर्थक मान वैठते हैं। उनसे हमारा निवेदन है कि वह निम्नलिखित पद पढ़ने की कृपा करें—

सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख प्रतिसय द्वैत-बियोगी।

इसी प्रकार उन्होंने 'सांख्यवाद' के विरोध में भी विचार प्रकट किए हैं। 'रामचरितमानस' की भाँति 'विनय-पत्रिका' में भी तुलसी मनः शुद्धि के लिए सेवा-भाव आवश्यक मानते हैं और सेवा बिना सेव्य-सेवक भाव, द्वैत भाव के सम्भव नहीं। तुलसी के लिए द्वैत का केवल इतना ही उपयोग है।

'विनय-पत्रिका' में एक स्थान पर गोस्वामीजी ने लिखा है कि—

केशव, कहि न जाइ का कहिए।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहि मन रहिए।
× × ×
कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचानै।

इसका अर्थ कुछ विद्वान यह करते हैं कि गोस्वामीजी द्वैतवाद, अद्वैतवाद तथा द्वैताद्वैत, तीनों मतों के विरोधी थे, वह तीनों को आवश्यक समझते हैं। अतः वह किसी दार्शनिक मत को नहीं मानते थे। हमारे विचार से इस पद का अर्थ भिन्न प्रकार से होना चाहिए। जब तक विश्लेषणात्मक बुद्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काम करती रहती है, तब तक संश्लेषणात्मक बुद्धि निष्क्रिय बनी रहती है। संश्लेषण परक चेतना के द्वारा ही आत्म साक्षात्कार सम्भव होता है। विभिन्न प्रकार की विवेचना-चाहे वह उच्चतम कोटि की दार्शनिक विवेचना ही क्यों न हो—विश्लेषण परक बुद्धि की देन है। इसका अभिप्राय यह है कि विश्लेषण परक बुद्धि और दार्शनिक विवेचन अन्योन्याश्रित हैं। प्रत्येक प्रकार के विवेचन का अन्त यह घोषित करता है कि हमारा 'मनस' शांत है और हम संश्लेषण परक बुद्धि अथवा विश्व-चेतना के क्षेत्र में पदार्पण कर रहे हैं। यही वह दशा है जब हमें आत्म रूप राम के दर्शन होते हैं। विवेचन द्वैत भाव का परिणाम होता है। विवेचन की समाप्ति का अर्थ द्वैतभाव का अन्त है। स्पष्ट है कि तुलसी की मान्यता यह है कि द्वैत भाव का अंत होने पर ही आत्म-स्वरूप का दर्शन सम्भव है। अतः तीन 'भ्रम' का अर्थ है विश्लेषण परक बुद्धि द्वारा उत्पन्न द्वैतभाव। जीव सम्बन्धी विचारों के भी अन्तर्गत यह लिख चुके हैं कि माया के कारण जीव भ्रमवश अपने आपको ब्रह्मा से पृथक समझने लगता है। तुलसी जब 'द्वैतभाव' को माया अथवा अज्ञान जन्य मानते हैं, तब वह द्वैतवाद को सिद्धान्त रूप किस प्रकार स्वीकार कर सकते हैं ?

निष्कर्ष—तुलसी 'द्वैत' भाव को अज्ञान जन्य मानते हैं। उनके मतानुसार विकार ग्रस्त जीव द्वैत भाव मानता है। द्वैत-भाव के कारण ही वह संसार के दुःख भोगता है।

तुलसी ने जिन 'राम' की शरण की याचना की है, वह अद्वैत मतावलम्बियों के ब्रह्म ही हैं—

अनघ, अद्वैत, अनवद्य, अव्यक्त, अज,
अमित अविकार, आनन्दसिंधो।
प्रनतपालक राम परम करुनाधाम,
पाहि मामुर्विपति दुर्विनीहं।

'विनय-पत्रिका' में तुलसी के राम का रूप पूर्ण ब्रह्मत्व को प्राप्त हुआ है। उनको सिद्धान्ततः अद्वैत मत ही मान्य है। साधक की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपने पर ब्रह्म राम का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया है कि वह ज्ञानी और भक्त दोनों के लिए समान रूप से ग्राह्य तथा माननीय है।

प्रश्न ९०—'विनय-पत्रिका' से उपयुक्त उद्धरण देकर सिद्ध कीजिए कि तुलसी का साधु-मत वास्तव में लोक-हित का प्रतिपादक है।

उत्तर—काव्य और लोकहित—कवि मात्र अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए ही कविता नहीं करता है। वह अपने काव्य द्वारा समाज को भी प्रभावित करना चाहता है। अतः काव्य को समाज के साथ सम्वन्धित करने वाला एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है उसमें अन्तर्निहित 'लोकहित भावना।'

तुलसी और लोकहित—यह सच है कि कवि का उद्देश्य आत्म-सुख रहता है। परन्तु उसकी आत्म-सुख-सम्वन्धी धारणा के ऊपर उसका आत्म सुख निर्भर रहता है। कवि यदि तामसी वृत्ति का व्यक्ति है, तो वह स्वार्थी होगा, वह यदि राजसी वृत्ति का व्यक्ति है, तो वह लोकहित का गौण और स्वार्थ को प्रमुख मानेगा। परन्तु यदि वह सात्त्विकी वृत्ति वाला व्यक्ति होगा, तो परमार्थ ही उसका स्वार्थ होगा लोकहित भावना ही उसके आत्म-सुख का हेतु होगी। गोस्वामी तुलसीदास एक साधु-स्वभाव भक्त थे। वह 'स्वान्तः सुखाय' काव्य-रचना में प्रवृत्त हुए थे। पर जनहिताय ही उनका स्वान्तः सुखाय था। उनका स्पष्ट मत है कि—

कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सबकर हित होई।

उनका काव्य लोक-कल्याण भावना से अनुप्राणित है। 'विनय-पत्रिका' भी इसका अपवाद नहीं है।

साधुमत और लोक-हित वस्तुतः अभिन्न हैं—

'साधु' का अर्थ सात्त्विकी वृत्ति वाले उस संत-स्वभाव का व्यक्ति है, जो सदैव पर-पीड़न से कोसों दूर रहकर सदैव परहित-साधन में निरत रहता है। इस दृष्टि से उसकी समस्त साधना लोकहिताय ही होती है। उसका जीवन जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण सदा साधुतापूर्ण रहता है। अतः इस 'साधुमत' सदैव 'लोकहित' भावना से परिपूर्ण रहता है।

तुलसी की साधुमत लोकहित प्रतिपादक है—

हमारे देश में संसार से विरक्त भिक्षान्न पर जीवित रहने वाले गेरुआ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्त्र धारण करने वाले व्यक्तियों के लिए 'साधु' शब्द रूढ़ हो गया है। इस अर्थ में साधु संज्ञा धारी सभी व्यक्तियों के साधना-मार्ग समाज नहीं होते हैं। 'साधना' का मार्ग भिन्न होने के कारण समाज के प्रति, जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण में भी भिन्नता रहती है। 'भक्ति काल' के विभिन्न मार्गों के 'साधु' इस तथ्य के प्रमाण हैं। उस काल में कबीर, तुलसी, सूर, चैतन्य आदि सभी साधु थे, पर सबके मार्ग भिन्न थे। इनके अतिरिक्त मांस, मदिरा का सेवन करने वाले श्मशान जगाने वाले औघड़, अघोरी नाथपंथी सिद्ध आदि भी साधु कहलाते थे, जिन्हें लोकहित साधन से बहुत कम सम्बन्ध था। अतः यह आवश्यक नहीं है कि सभी साधु सात्त्विकी वृत्ति के व्यक्ति हों, परन्तु यह आवश्यक है कि सात्त्विकी वृत्ति के समस्त साधु अपने हृदय में 'लोकहित' धारण करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास रूढ़ अर्थ में साधु नहीं थे, वह वास्तविक रूप में सात्त्विक वृत्तिधारी भगवद् भक्त साधु थे। 'लोकहित' ही उनके जीवन का सर्वस्व था यही उनका साधुमत था।

'विनय-पत्रिका' में व्यक्त साधुमत में लोक-हित का समावेश है—

'रामचरितमानस' में तुलसी ने कई स्थलों पर यह स्पष्ट कर दिया है कि उनका 'साधुमत' पूर्णतः लोकहित की भावना पर प्रतिष्ठित है 'रामचरित-मानस' में इस मत की अभिव्यक्ति की एक विशाल योजना द्वारा की गई है। 'मानस' में वह लोक पीड़क रावण के वध करने वाले राम की लीला का प्रचार भी करते हैं, और राम के पावन चरित्र का गुणगान करते हैं तथा उनकी भक्ति को जीवन का चरम लक्ष्य मानते हैं। 'विनय-पत्रिका' की स्थिति कुछ भिन्न है। यह एक आत्माभिव्यक्ति-परक काव्य है। इसमें उन्होंने लोक पीड़ा के प्रतिनिधि होकर कलियुग के खिलाफ शिकायत के रूप में अपने मानसिक उद्वेग को व्यक्त किया है। इसमें आत्म-विकास द्वारा आत्मोद्धार का जो मार्ग बताया है, उस पर चलकर प्रत्येक व्यक्ति काल के तापों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। तुलसी की 'विनय-पत्रिका' पर श्री रघुनाथजी की 'स्वीकृति' का अर्थ ही यह है कि लोक में मंगलाशा का संचार हो जाता है और सात्त्विकता की सुरसरि के प्रवाह में साधक जीव की उदासी या खिन्नता बह जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'विनय-पत्रिका' में व्यक्त साधु मत में सन्निविष्ट 'लोक-हित' का विवेचन—'विनयपत्रिका' में तुलसी ने जिस साधुमत को व्यक्त किया है, उसमें निहित लोक-हित-भावना पर हम निम्नलिखित प्रकार से विचार करते हैं—

जीव और ब्रह्म अभिन्न हैं—गोस्वामीजी जीव को 'ब्रह्म' का चिदंश मानते हैं। वह सांसारिक विकारों के कारण, अज्ञान के कारण द्वैत भाव का अनुभव करता है। उनके साधुमत के अनुसार जीव यदि मन के विकारों को त्याग दें, तो द्वैत-भावना एवं उससे उत्पन्न सांसारिक त्रिताप समाप्त हो जाएँ—

जौ निज मन परिहरै विकारा।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति दुख संसय सोक अपारा।

इस साधुमत में लोक-हित भी समाविष्ट है। समस्त सामाजिक संघर्ष का मूल 'स्व-पर' के मध्य चलते रहने वाला द्वन्द्व है। अतः यदि हम अपनी सामाजिक भावना को विस्तृत कर सकें, 'स्व' की अनुभूति को व्यापक बना सकें, तो हमारे जागतिक दुःखों का सहज ही अन्त हो जाए।

इसी प्रसंग के अन्तर्गत वह 'माया' की चर्चा करते हैं, जो मिथ्या 'प्रतीति' का ही दूसरा नाम है। इसी के वश में पड़कर जीव तरह-तरह के नाच नाचता है और औचित्यानौचित्य का विवेक छोड़ बैठता है। इस साधुमत के साथ संलग्न लोक-हित का दृष्टिकोण है—सांसारिक सुख-सम्पत्ति की निरर्थकता का प्रतिपादन। शरीर, सम्पत्ति का दम्भ लोक जीवन में अनेकों अनर्थों को जन्म देता है। हम यदि इनके प्रति अपने आसक्ति को मूर्खता समझ सकें, तो भाँति-भाँति के नाच क्यों नाचें ? मिथ्याभिमान का त्याग करना जीव का सबसे पहला और प्रधान धर्म है। तुलसी का यह साधुमत लोक-हित का ही प्रतिपादक है—

माया बस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रम तें दासन दुख पायो।

इस साधुमत के तृतीय सोपान के रूप में तुलसी ने जगत के मिथ्यात्व का प्रतिपादन किया है। जगत के प्रति हमारी आसक्ति ही 'सांसारिक' बन्धनों को उत्पन्न करती है। जिन्हें इस मिथ्यात्व का ज्ञान होगा, वे इसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुखोपभोग के शिकार कभी नहीं होंगे। यदि समाज का प्रत्येक व्यक्ति जगत के मिथ्यात्व को समझ ले तो वह उन अनाचारों को न करे जिनके कारण लोक जीवन में विविध विशेषताएँ आ जाती हैं।

सत्संग की आवश्यकता पर बल—जीव का लक्ष्य राम रूप हो जाता है। इसका साधन राम भक्ति है। और राम-भक्ति की उपलब्धि सत्संग द्वारा ही सम्भव है—

रघुपति भगति सुलभ सुखकारी।
सो भय ताप-सोक-भ्रम हारी।
बिनु सत्संग भक्ति नहिं होई।
ते तब मिलैं द्रवैं जब सोई।
× × ×
सेवत साधु द्वैत-भय-भागै।
श्री रघुबीर चरन लौ लागै।

राम कृपा और सत्संग को अन्योन्याश्रित बताकर तुलसी ने 'सदाचरण' को 'साधुमत' का अनिवार्यता व्यवहारिक रूप घोषित कर दिया है। तुलसी के साधुमत के अनुसार लोकहित के लिए यह आवश्यक है कि समाज में सज्जनों की संख्या में वृद्धि हो। ये सज्जन ही 'साधु' कहे जाने योग्य हैं। इसी मान्यता को दृष्टि में रखकर उन्होंने 'साधु भक्त' के 'मनोराज्य' को इस प्रकार व्यक्त किया है—

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्रीरघुनाथ-कृपालु कृपा तें, संत सुभाव गहौंगो।
जथा लाभ संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरंतर मन-क्रम-बचन नेम निबहौंगो।
परुष वचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
× × ×
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि भगति लहौंगो।

इन पंक्तियों में साधु-मत और लोक-हित का मणिकांचन संयोग है। ऐसे गुणों से युक्त साधु किस लोकोपकारक बुद्ध अथवा गांधी से कम हो सकता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है ? गोस्वामीजी का तो स्पष्ट मत है कि राम का प्रेम और धर्म का प्रे एक ही बात है। जिसे स्वार्थ के प्रति आसक्ति है, जो दृश्यमान जगत के सुखोपभोग में ग्रस्त है, वह कैसे कह सकता है कि उसे राम के प्रति प्रेम है तथा राम के बनाए हुए जगत के प्रति उसके हृदय में सच्चा प्रेम है ? जब स्वार्थ से हटकर दृष्टि परमार्थ के प्रति लग जाए, तब साधक समझे कि उसकी साधना सफल है, उसके हृदय में राम में चरणों के प्रति सच्चा अनुराग जाग्रत हो गया है—

तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै।

आदि वाक्यों में तुलसी के 'साधुमत और लोक-हित' का समन्वित रूप मुखरित हो उठा है।

इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गोस्वामीजी ने निरन्तर 'आत्म-निरीक्षण' का उपदेश दिया है। अपने अवगुणों का आलोचन करते रहकर ही जीव अवगुणों से बच सकता है। जब तक जीव के मन में लघुत्व की अनुभूति न होगी, तब तक वह महत्त्व की ओर किस प्रकार अग्रसर हो सकता है ? महत्व के प्रति अग्रसर होने में प्रयत्नशील साधु ही लोक-हित के सच्चे विधायक बनते हैं। यथा—

जेहि दरस परस समगमादिक पाप-रासि नसाइए।

× × ×

मद-मोह लोभ विषाद क्रोध, सुबोध तें सहजहिं गए।

निष्कर्ष—'विनय-पत्रिका' में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं जिनसे तुलस का 'साधुमत' तो विदित होता ही है, साथ ही लोक-हित की भावना का भी निर्देशन होता है। 'विनय-पत्रिका' को अध्ययन करने के पश्चात् क ... अध्येता यह विश्वास पूर्वक कह सकता है कि 'विनय-पत्रिका' में व्यक्त तुलसी का साधुमत वस्तुतः लोक-हित का प्रतिपादक है। जो समाज का कल्याण कर सके, भेद-भाव-जन्य क्लेशों से मुक्ति न दिला सके, वह 'साधुमत' कैसा ? वह 'साधु' कैसा ? ठीक ही है—

जब द्रवै दीनदयालु राघव
साधु संगति पाइए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१६)

गोस्वामी तुलसीदास और गीतावली

प्रश्न ६१—गीति काव्य के आवश्यक तत्त्वों को ध्यान में रखकर 'गीतावली' का मूल्यांकन कीजिए।

अथवा

प्रश्न ६२—"हृदय के भावों की मधुर व्यंजना गीतावली के मधुर पदों में देखने योग्य है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—गीतावली एक मुक्तक काव्य है—'गीतावली' में स्फुट पदों में राम-कथा का वर्णन है। इसकी कथा पर वाल्मीकि रामायण का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। अतः कुछ विद्वानों का यह अनुमान ठीक ही प्रतीत होता है कि यह उस समय की रचना है जब कवि संस्कृत ग्रन्थों से अधिक प्रभावित हुआ होगा।

इसकी रचना सम्यक् ग्रन्थ के रूप में न होकर स्फुट पदों के रूप में की गई है। इसके प्रबन्ध काव्य की भाँति मंगलाचरण भी नहीं है। ग्रन्थ का [illegible] र जन्मोत्सव से होता है—

> आजु सुदिन सुभ घरी सुहाई।
> रूप सील गुन-धाम राम नृप भवन प्रगट भए आई।

इसमें न तो रामावतार के कारण ही दिए गए हैं और न पूर्व कथाओं का निर्वाह ही है। ग्रन्थ का आरम्भ और ग्रन्थ की कथा का विस्तार अनियमित हैं। अतः इसमें कथा के अनेक सूत्र छूट गए हैं, तथा कांडों के विस्तार में किसी प्रकार के अनुपात का निर्वाह भी नहीं दिखाई देता है। इसमें कुल ३२८ पद हैं और उनका विभाजन सात कांडों में इस प्रकार है—

बालकांड १०८ पद, अयोध्याकांड ८९ पद, अरण्यकांड १७ पद, किष्किंधाकांड २ पद, सुन्दरकांड ५१ पद, लंकाकांड २३ पद और उत्तरकांड ३८ पद।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC-0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कांडों की असमानता के समान घटनाओं का स्वरूप भी विशृंखल है। घटनाओं की विशृंखलता के फलस्वरूप इसमें चरित्र-चित्रण का भी विकास नहीं हो पाया है। इसमें राम कथा के कोमल प्रसंगों का विशेष वर्णन है रामचरित की कथा के कई मार्मिक प्रसंगों को इसमें चलता कर दिया गया है। उदाहरणतः कैकेयी-वरदान की समस्त विदग्धतापूर्ण कथा का अभाव है। इतना ही नहीं भरत के चरित्र का चित्रण भी अधूरा ही है। ये कारण यह प्रमाणित करते हैं कि गीतावली स्फुट रूप में लिखी जाने वाली एक मुक्तक रचना है।

शोध कर्त्ताओं ने 'गीतावली' और 'सूरसागर' के कई पदों के साम्य का निर्देशन करके यह सिद्ध कर दिया है कि 'गीतावली' के ऊपर 'सूरसागर' का व्यापक प्रभाव है।

गीतावली एक गीति काव्य है—गीतावली की रचना मुक्तक-रूप में गेय पदों के रूप में हुई है। अतः 'गीतावली' का अध्ययन 'गीतिकाव्य' की दृष्टि से किया जाना चाहिए।

गीति काव्य के लक्षण—गेय रचना गीति काव्य के अन्तर्गत आती है। सफल 'गीतिकाव्य' पर विचार करते हुए डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि "गीतिकाव्य की रचना आत्माभिव्यक्ति के दृष्टिकोण से की जाती है। उसमें विचारों की एकरूपता रहती है। आराध्य से आत्म निवेदन के उल्लास में रचना गेय हो जाती है। अतः सफल गीतिकाव्य में चार बातें—आत्माभिव्यक्ति, विचारों की एकरूपता, संगीत और संक्षिप्तता—होनी आवश्यक हैं।" अन्य विद्वानों ने भी गीतिकाव्य के लक्षणों पर विचार किया है। हमारे विचार से इन विभिन्न विद्वानों के लक्षणों में कोई मौलिक भेद नहीं है। सामान्यतः गीतिकाव्य के लक्षण में ठहरते हैं—आत्माभिव्यक्ति (वैयक्तिक अभिव्यक्ति), विचारों की एकरूपता, आन्तरिक प्रेरणा, संगीतात्मकता, संक्षिप्तता—तथा प्रसाधन की उपेक्षा अथवा अभिव्यक्ति की सरलता।

'गीति काव्य' के तत्वों के आधार पर 'गीतावली' एक सफल रचना है--

कोमल भावनाओं को प्रश्रय—'गीतावली' के वर्ण्य विषय को देखने पर विदित होता है कि इसमें कोमल भावनाओं को विशेष प्रश्रय मिला है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामचरित के कोमल स्थलों का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है तथा परुष घटनाओं का संकेत मात्र कर दिया है। उदाहरण के लिए कैकेयी-दशरथ-संवाद, लंका-दहन और राम-रावण युद्ध का इसमें वर्णन ही नहीं है। दूसरी ओर बालकाण्ड में राम की बाल्यावस्था के, उनके शील-सौन्दर्य के तथा राम की शारीरिक छवि के अनेकानेक वर्णन प्राप्त होते हैं। कई पदों में तो राम की छवि का वर्णन 'सूरसागर' के कृष्ण-सौन्दर्य वर्णन के समान है। जनकपुर में एकत्र नागरिक वधू अपने प्रेम-कथन से राम की सुन्दरता और भक्ति-भावना की सर्वांग पवित्र चित्रावली प्रस्तुत करती हैं।

'गीतावली' में कोमल रसों का वर्णन ही अधिक किया गया है, परुष रसों का कम। इसके अनुसार श्रृंगार, करुण, हास्य, अद्भुत, शान्त के लिए अधिक स्थान हैं; वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स के लिए कम।

आत्माभिव्यंजना की प्रधानता—गीतावली में हमको कई स्थलों पर कथावस्तु की नितान्त अवहेलना दिखाई देती है, परन्तु जो घटनाएँ कोमल भावना से युक्त हैं, उनका वर्णन अवश्य ही किया गया है। गीध-प्रसंग एवं शवरी प्रसंग में राम की भक्त-वत्सलता का वर्णन जिस रूप में किया गया है, उसके द्वारा तुलसी ने आत्माभिव्यंजन ही किया है। इन स्थलों पर काव्य सौन्दर्य न होते हुए भी वर्णन विस्तार है जिससे व्यक्तिगत भक्ति-भावना को प्रश्रय मिलता है। वस्तुस्थिति यह है कि जहाँ कहीं कवि को व्यक्तिगत भावनाओं के प्रदर्शित करने का अवसर मिला है, वह चूका नहीं है। यथा—

तथा— राघव, भावति मोहि विपिन की बीथिन्ह धावनि।

ऐसो प्रभु बिसारि तुलसी सठ तू चाहत सुख पायो।

इसी प्रकार राम की सर्वोपरि देव मानने के कारण तुलसी ने अपनी कथा में वन-देवों को स्थान दिया है। वन-देव राम को सीता का समाचार सुनाते हुए दिखाई देते हैं—'जबहिं सिय सुधि सब सुरनि सुनाई।'

'सुन्दरकाण्ड' में विभीषण राम की शरण में आता है। विभीषण का राम की शरण में आना तुलसी का भगवान की शरण में आना ही ज्ञात होता है। विभीषण राम पक्ष में आकर सेवा करने लगता है। इस घटना का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्णन करने वाले पद में तुलसी की व्यक्तिगत भावना का चित्रण सा हो गया है—समस्त पद तुलसी की भक्ति भावना से ओत-प्रोत दिखाई देता है—

पद पद्म गरीब निवाज के।
देखिहौं जाइ पाइ लोचन फल, हित सुर साधु समाज के।

काव्य-कला की मधुर अभिव्यक्ति—इस ग्रन्थ में कोमल भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। इसमें कोमल रसों का ही निरूपण हुआ है। गीतावली में श्रृंगाररस प्रधान है। यह वस्तुतः तुलसी की काव्य कला की सबसे मधुर अभिव्यक्ति है।

एकान्त माधुर्य रचना—गीतावली में वर्णन-विस्तार का प्रायः अभाव ही है। मुक्तक काव्य के लिए संक्षिप्तता आवश्यक गुण है। इसमें तुलसी के किसी काव्यादर्श की सृष्टि करना अभीष्ट नहीं था, उन्हें तो केवल सौन्दर्य की सृष्टि करनी थी। इस प्रयास में वह पूर्णतः सफल हुए हैं। डा० रामकुमार वर्मा ने ठीक ही लिखा है कि "गीतावली एकान्त माधुर्य रचना है।" ब्रजभाषा की कोमलकान्त पदावली की मधुरता ने सौन्दर्य वर्णन के माधुर्य में चार चाँद लगा दिए हैं।

संगीतात्मकता—तुलसीदास ने गीतावली की रचना कृष्ण भक्त कवियों की गेय पद शैली में की है। इसमें २१ रागों की योजना है। सभी संगीत शास्त्रानुमोदित रूप में व्यवहृत हैं। अतः संगीतज्ञों के कण्ठहार हैं।

हिन्दी गीति-काव्य की परम्परा—हिन्दी-काव्य के बीज हमको सामवेद के गीतों में उपलब्ध होते हैं। जयदेव के 'गीतगोविन्दम्' में हमें सर्वप्रथम गीत काव्य का उन्नत एवं परिष्कृत रूप दिखाई देता है। जयदेव के 'गीतगोविन्दम्' से प्रभावित होकर मैथिल कोकिल विद्यापति ने अपने मधुर पदों की रचना की। विद्यापति के पदों के साथ ही हिन्दी के गीत काव्य की परम्परा प्रारम्भ होती है। विद्यापति के पदों में पदलालित्य, संगीतात्मकता, उक्ति-वैचित्र्य आदि समस्त गुणों के दर्शन होते हैं, परन्तु उनमें ऐन्द्रियता की गंध है और पूर्ण आत्म निवेदन का अभाव है।

विद्यापति के पश्चात् हमें कबीर आदि सन्त कवियों द्वारा रचित गेय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पदों के दर्शन होते हैं। इनमें वैराग्य भावना भी है और विरह-निवेदन की मार्मिक अभिव्यक्ति है। इनकी भाषा खरी और तीखी है।

भक्ति काल में कृष्ण भक्ति काव्य के अन्तर्गत हमको गीतिकाव्य का पूर्ण विकास दिखाई देता है। सूरादि अष्टछाप के कवियों मीराबाई आदि के पदों में हमको गीतिकाव्य के उत्कृष्ट रूप के दर्शन होते हैं।

इसी युग में तुलसी ने भी अपने गीतिकाव्य की रचना की। इनके तीन ग्रन्थ इस कोटि में आते हैं—विनयपत्रिका, गीतावली और श्रीकृष्ण गीतावली।

'रीतिकाल' में इस परम्परा का विकास अवरुद्ध हो गया। केवल कुछ ही कवियों ने कुछ स्फुट रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

आधुनिककाल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से पुनः गीतिकाव्य की रचना का श्रीगणेश हुआ। यह परम्परा आज तक चली आ रही है। आधुनिक युग में लिखे जाने वाले 'लोकगीत' इसकी अन्तिम कड़ी हैं। भारतेन्दु के पश्चात् छायावाद के युग में प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा, बच्चन, डा० रामकुमार वर्मा आदि ने सुन्दर गीतों की रचना की। आजकल कई नवयुवक कवि इस क्षेत्र में अनेक प्रयोग कर रहे हैं।

'गीतावली' का स्थान—गीतावली में गोस्वामीजी ने कोमल मनोवेगों के बहुत ही कोमल एवं हृदय ग्राह्य चित्र उपस्थित किए हैं। उन्होंने राम के बाह्य रूप का तो वर्णन किया है, परन्तु वह उनके मनोवेगों में नहीं बैठ सके हैं। इतना ही नहीं, 'गीतावली' में 'विनयपत्रिका' के गाम्भीर्य एवं आत्म-निवेदन का भी अभाव है।

गीतावली वर्णनात्मक काव्य और आत्माभिव्यक्ति के मध्य की रचना है। जहाँ तक राम की कथा के कोमल स्वरूप से सम्बन्ध है, वह बड़ी ही सफलता के साथ गीतावली में अभिव्यक्त हुआ है। राम का सौन्दर्य और ऐश्वर्य वस्तुतः 'गीतावली' की आत्मा है। इसमें राम के सौन्दर्य एवं ऐश्वर्य का वर्णन बहुत ही सांगोपांग एवं विस्तृत रूप में किया गया है। इसमें विचार धारा और संगीत में पूर्ण सामंजस्य के दर्शन होते हैं। इस दृष्टि से गीतावली का अरण्यकाण्ड सर्वाधिक सफल है। निम्नलिखित उदाहरण में राम को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ललित घन का रूपक देकर उनका सौन्दर्य-वर्णन मलार राग में किया गया है—

देखे राम-पथिक नाचत मुदित मोर।
मानत मनहु सतड़ित ललित घन, धनु सुर धनु, गरजनि टँकोर।

निष्कर्ष—'गीतावली' में यद्यपि मुक्तक गेय काव्य के लक्षणों का सुन्दर निर्वाह पाया जाता है, तथापि वह 'विनयपत्रिका' सदृश गीतिकाव्य की कोटि को नहीं पहुँच पाती है। डा० रामकुमार वर्मा ने इसका मूल्यांकन करते हुए बहुत ही समीचीन निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि "यदि 'गीतावली' में घटनाओं की अधिक सृष्टि न की गई होती और कवि भाव-विभोर होकर अपने में आराध्य को लीन कर लेता, तो 'गीतावली' उत्कृष्ट गीतिकाव्य के रूप में साहित्य में ऊँचा स्थान पाती।"

प्रश्न ६३—गीतावली में गोस्वामी तुलसीदास की प्रवृत्ति श्रृंगार प्रियता की ओर दिखाई देती है। इसके आधार पर कुछ आलोचक उन्हें रीतिकाल के श्रृंगारी कवियों की कोटि में रखना चाहते हैं। क्या ऐसा करना उचित है? पक्ष या विपक्ष में अपना मत सकारण प्रस्तुत कीजिए।

अथवा

प्रश्न ६४—'रामचरितमानस' में हमको गोस्वामी तुलसीदास के जिस मर्यादित श्रृंगार के दर्शन होते हैं, वह गीतावली में तिरोहित हो जाता है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए और गोस्वामीजी के द्वारा श्रृंगार-निरूपण में उपर्युक्त परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—गीतावली में श्रृंगार रस की प्रधानता है और इस श्रृंगार-वर्णन में 'रामचरितमानस' सदृश मर्यादा पूर्ण श्रृंगार का निर्वाह नहीं है। राम के सौन्दर्य-वर्णन के अनेक चित्रों के ऊपर हमको सूरसागर का प्रभाव दिखाई देता। यथा—'विहरत अवध वीथिन राम' तथा करकमलनि चौगानें खेलन लगे खेल रिझये" आदि अनेक पदों में उनके बाल-जीवन के चित्र खींचे गए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'रामचरितमानस' में चित्रकूट शील और शील का, श्रद्धा और विश्वास के संगम-स्थल के रूप में दिखाई देता है वहाँ हमको साधुमत, लोकमत, और नृपनय-निगम-निचोर' की सहस्र-धारा के दर्शन होते हैं। परन्तु 'गीतावली' में चित्रकूट के प्रकृति-चित्रण में फाग और होली की कल्पना की गई है। यथा—

चित्रकूट पर राउर जानि अधिक अनुरागु।
सखा सहित जनु रतिपति आयउ खेलन फागु।

× × ×

हंस कपोत कबूतर बोलत चक्क चकोर।
गावत मनहुँ नारि नर मुदित नगर चहुं ओर।

यहाँ तुलसीदास जी ने भले ही इस कोलाहल में 'रामग्राम गुन' की झाँकी दिखाने का प्रयत्न किया है, परन्तु है यह शृंगार-रस का ही वर्णन।

'गीतावली' के 'उत्तरकाण्ड' में राम एक प्रौढ़ व्यक्ति के रूप में चित्रित हैं और वहाँ उनके शृंगार वर्णन का लौकिक रूप ऊपर आ गया है। वहाँ राम के विलास, हिंडोला, नख-शिख आदि वर्णन किए गए हैं। जो तुलसीदास 'रामचरितमानस' में परम्परा सिद्ध शिव-पार्वती के शृंगार-वर्णन को यह कह कर टरका जाते हैं—"जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहि सिंगारु न कहौं बखानी," वे ही तुलसी शिव के उपास्य और अपने परम इष्ट राम के विलास का वर्णन इस प्रकार करते हुए दिखाई देते हैं—

भोर जानकी जीवन जागे।
सूत मागध प्रबीन, बेनु-बीना-धुनि द्वारे, गायक सरस राग रागे।

तथा—

आली री! राघो के रुचिर हिंडोलना झूलन जैए।

यह हिंडोलना वर्णन वसंत-वर्णन के साथ है जिसमें—

नूपुर किंकिनि धुनि अति सोहाइ।
ललना गन जग जेहि धर्राहि जाइ।

तुलसी को शृंगारी कवियों की कोटि में नहीं रखा जा सकता है— 'गीतावली' में गोस्वामी तुलसीदास की प्रवृत्ति की शृंगार-प्रियता की ओर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखकर कुछ आलोचक उन्हें रीतिकाल के श्रृंगारी कवियों की कोटि में रखना चाहते हैं। हमारे विचार से ऐसा करना तुलसी के साथ अन्याय करना है। रीतिकाल के श्रृंगारी काव्य-प्रणयन के पीछे रीति-साहित्य की एक सुनिश्चित परम्परा थी। कालिदास के लौकिक श्रृंगार साहित्य की परम्परा चली थी। उसमें 'गाथा सप्तशती, आर्याशप्तशती, अमरुक शतक, और पंचाशिका' आदि के श्रृंगार वर्णन ने योग प्रदान किया और इस प्रकार अमर्यादित श्रृंगाररस-वर्णन की एक परम्परा ही चल पड़ी थी। दूसरी ओर दण्डी से संस्कृत-रीति-निरूपण की परम्परा बराबर पण्डितराज जगन्नाथ तक चली गई थी, जिसे केशवदास, चिन्तामणि त्रिपाठी प्रभृति रीति आचार्यों ने सादर स्वीकार कर लिया था। रीति साहित्य में नायिका-भेद-कथन एक आवश्यक अंग था। उसके ऊपर नाट्यशास्त्र एवं काम-शास्त्र की चिंता धारा का व्यापक प्रभाव था। सारांश यह है कि संभोग श्रृंगार के कामुकतापूर्ण चित्र नायिका-भेद-कथन तथा शाक्त सम्प्रदाय के अन्तर्गत निर्मित स्तोत्रों की शैली पर नख-शिख-वर्णन तथा वस्तु परिगणन की शैली पर प्रकृति-वर्णन रीति-साहित्य के आवश्यक अवयव थे। सारांश यह है कि आश्रयदाता राजा को रिझाने के लिए रीति-कवि प्रायः लौकिक श्रृंगार-साहित्य के प्रणयन में प्रवृत्त होते थे। इनके काव्य में स्पष्टतः आभिजात्य एवं ऐहिकता की गंध थी। इतना ही नहीं इनकी वैराग्य-भावना के मूल में 'निर्वेद' अथवा विरक्ति न होकर निराशा की भावना रहती थी। तुलसी की 'गीतावली में न तो नर-काव्य की ओर प्रवृत्ति है, न नायिका-भेद-कथन है, न सीताजी का कामोद्दीपक नख-शिख-वर्णन है और न संभोग श्रृंगार एवं विरहोपचार के अमर्यादित ऊहात्मक वर्णन हैं। इसमें प्रकृति का परम्परा युक्त वर्णन, राम का नख-शिख एवं विलास-वर्णन तथा होली हिंडोला के ही चित्र पाए जाते हैं, वे भी एक नियोजित रूप में न होकर केवल विरल रूप में ही हैं। रीति साहित्य के श्रृंगारी कवियों की दृष्टि काव्यांगों के लक्षण उदाहरणों पर रहती थी। तुलसी के काव्य में यह प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती है। अतः तुलसी को रीति-काल के श्रृंगारी कवियों की कोटि में नहीं रखा जा सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'गीतावली' के शृंगार-वर्णन पर रसिक सम्प्रदाय का प्रभाव है— तुलसी की 'गीतावली' पर सूरदास के 'सूरसागर' का प्रभाव है। यदि इस शृंगार-वर्णन को रीति के शृंगारी कवियों के शृंगार वर्णन के अन्तर्गत माना जाए, तो इसका अर्थ होता है कि कृष्ण काव्य के कवियों की एक स्वतन्त्र परम्परा ही नहीं रह जाती है। तुलसी ने 'रामचरितमानस' और 'गीतावली' की रचना दो भिन्न दृष्टिकोणों से की। 'रामचरितमानस' के राम 'मर्यादा पुरुषोत्तम' परब्रह्म राम हैं और 'गीतावली' के राम 'लीला पुरुषोत्तम' राम हैं, जिनका चरित्र-चित्रण उन्होंने व्रजभाषा के कृष्ण कवियों के काव्य को सामने रखकर किया।

राम-कथा का साम्प्रदायिक रूप—रामकथा के स्वरूप विकास की तीन अवस्थाएँ स्पष्टतः लक्षित होती हैं। ऐतिहासिक, साहित्यिक और साम्प्रदायिक। तीनों रूपों में हमको राम की अवतार-कल्पना के सूत्र मिलते हैं, विशेषकर सांप्रदायिक रूप में। भागवत धर्म के प्रचार के साथ-साथ ज्यों-ज्यों वासुदेव कृष्ण का महत्त्व बढ़ता गया, त्यों-त्यों राम की अलौकिक लीलाओं का भी प्रचार होता गया और उनकी अवतार-कल्पना को वल मिला।

९ वीं शताब्दी में शठकोप आलवार के साथ श्री वैष्णवों की गुरु-परम्परा आरम्भ होती है। यहीं से राम-कथा के साम्प्रदायिक साहित्य के निर्माण का सूत्रपात माना जाता है।

स्वामी रामानन्द ने 'श्री' सम्प्रदाय के विशिष्टाद्वैत दर्शन और प्रपत्ति सिद्धान्त का आधार लेकर रामावत सम्प्रदाय का संगठन किया। इसी सम्प्रदाय में गोस्वामी तुलसीदास ने दीक्षित होकर जन-जन तक राम भक्ति का संदेश पहुँचाया। राम लोक मर्यादा के रक्षक, लोक विरोधी तत्त्वों के उन्मूलक और लोक-धर्म के संस्थापक राम हैं। इसके अतिरिक्त तुलसी के 'गीतावली' सदृश ग्रन्थों में हमको राम के जिस अन्य रूप के दर्शन होते हैं, वह है राम का 'माधुर्य रूप'। यह वस्तुतः रामावत सम्प्रदाय की माधुर्य भक्ति का प्रभाव है। रामावत सम्प्रदाय में माधुर्य-भक्ति की एक प्राचीन एवं विकसित परम्परा है। इस पद्धति के रामोपासक कवियों की संख्या इतनी अधिक है कि मर्यादित शृंगार का वर्णन करने वाले तुलसीदास अपवाद स्वरूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही दिखाई देते हैं। 'राम-काव्यों में शृंगारी-वर्णनों की परम्परा वस्तुतः राम-कथा के समान ही प्राचीन है।'

'रसिक' रामभक्ति की परम्परा

आलवार सन्त शठकोप ने रसिक राम भक्ति का सूत्रपात किया। आलवार सन्तों से यह परम्परा वैष्णव आचार्यों द्वारा ग्रहण कर ली गई। स्वामी रामानन्द जी ने वैष्णव आचार्यों से रिक्थ रूप प्राप्त रसिक राम भक्ति के सिद्धान्त को विकसित एवं सिंचित किया। इन्होंने भक्ति की रसमयी धारा में मर्यादा तथा सदाचार की प्रतिष्ठा के लिए 'स्वकीया' भाव को आदर्श ठहराया और इस प्रकार माधुर्यभाव की रामोपासना का मार्ग प्रशस्त कर दिया। कृष्ण काव्य में परकीया भाव की माधुर्य-भक्ति का प्राधान्य है। कृष्ण काव्य से तुलसी के शृंगार-वर्णन की यह विलगता है। कृष्ण-भक्ति की काव्य परम्परा में हमको रीति कवि साहित्य का जो व्यापक प्रभाव दिखाई देता है, उसका एक प्रमुख कारण परकीया प्रेमोपासना ही है। सूफी सन्त और कबीरपंथी कवि प्रेम-साधना की आध्यात्मिक अभिव्यक्ति कर चुके थे। उधर कृष्ण भक्ति-काव्य की शृंगारी प्रवृत्ति पनप ही रही थी। इस चतुर्दिक प्रभाव से तुलसी जैसे लोक धर्म के प्रति जागरूक कवि का अछूता बना रहना असम्भव ही था। वह रसिक सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे या नहीं, यह प्रश्न गौण है। परन्तु इतना सुनिश्चित है कि उनके ऊपर रसिक साम्प्रदाय की माधुर्योपासना का प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

तुलसी पर रसिक सम्प्रदाय का प्रभाव

गोस्वामी जी ने अपने नाम तुलसी का विष्णु-प्रिया 'वृन्दा' (तुसली) के के समकक्ष मान कर अपने नाम को सौभाग्य सूचक माना है—

नाम तुलसो पै भौंड़े भाग, सो कहायो दास
किये अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को। (कवितावली)

तथा— भलो भले सो छल किये जनम कनौड़ो होइ।
श्रीपति सिर तुलसी लसति, बलिवावन गति सोइ॥
(दोहावली)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'कवितावली' में राम विवाह के अवसर पर वह अपने आपको जनकपुर की सखियों के समान देखते हैं। 'राधावल्लभी सम्प्रदाय के अनुयायियों के समान उन्होंने मेरी साहिबिनि सदा सीस पर विलसति' कहकर अपने आपको सीता जी का दास कहा है।

गोस्वामी जी का सखी रूप 'गीतावली' में उभर कर एकदम सामने आ जाता है—

सोभा सील सनेह सोहावने समउ केलि गृह गौने।
देखि तियन के नयन सफल भये तुलसी दास हू के होने।

केलिगृह की झाँकी के प्रति तियनि की तरह तुलसी का औत्सुक्य प्रकट करना उनकी मधुर साधना की ओर संकेत करता है। 'अष्टयाम' के अन्तर्गत रसिक भाव के प्रवर्तक अग्रदास ने साधकों के लिए 'शयनागर' की झाँकी के चिन्तन की व्यवस्था प्रायः इसी प्रकार की है।

राम-सीता की वन-यात्रा के अन्तर्गत जहाँ तुलसीदास 'रामचरितमानस' में एक तापस के रूप में आते हैं, ठीक उसी स्थान पर 'गीतावली' में वह एक स्त्री के रूप में उपस्थित होते हैं—'रामचरितमानस' का तापस सीता की चरण-रज सिर पर धारण करके उनके आशीर्वाद को प्राप्त करता है—

पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा॥

'गीतावली' में उसी अवसर पर प्रेमविह्वल सखी न जाने कहाँ से आ जाती है और सीताजी इसे अपने हृदय से लगाती हैं—"हेरि के हरषि हिये लियो है ओही।" इस सखी को यदि तुलसीदास ही मान लिया जाए, तो हम कह सकते हैं कि 'मानस' में उनका आराध्य के प्रति आत्म निवेदन दास्यभाव का था, किन्तु 'गीतावली' में उनका आत्म समर्पण माधुर्यभाव से प्रेरित था। इस प्रसंग के अन्तर्गत पं० चन्द्रबली पाण्डेय ने ठीक ही लिखा है कि "रसिक-सिद्धान्त के अनुसार सखियाँ सीता के पुरुषकारत्व से ही प्रभु-सेवा की अधिकारिणी होती हैं। अज्ञात स्त्री का यह प्रसंग कदाचित् इसी तथ्य का समर्थन करता है।"

माधुर्य भक्ति की ऐसी सफल अभिव्यक्ति के कारण ही अनन्य माधव ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोस्वामी तुलसीदास को 'तुलसी सखी' की उपाधि दे दी और उनको वृन्दा-सखी का अवतार मान लिया। उनकी यही कामना है कि तुलसीदास तुलसी सखी के रूप में समाहृत हों—"सकल सखियन में सिरोमनि दास तुलसी तुम रहौ।" इत्यादि।

निष्कर्ष—'रामचरितमानस' में हमको गोस्वामी तुलसीदास के जिस मर्यादित श्रृंगार के दर्शन होते हैं, वह 'गीतावली' में तिरोहित हो गया है। 'गीतावली' में उनकी प्रवृत्ति श्रृंगार-प्रियता की ओर दिखाई देती है। इसका कारण रसिक सम्प्रदाय का माधुर्य भाव है, न कि रीति साहित्य की श्रृंगारिकता। अतः उनको रीतिकाल के श्रृंगारी कवियों की कोटि में रखना किसी प्रकार उचित नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१७)

हिंदी साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास का स्थान

प्रश्न ९५—गोस्वामी तुलसीदास की लोकप्रियता के कारणों पर प्रकाश डालिए।

अथवा

प्रश्न ९५—बनी पावन भाव की भूमि भली
हुआ भावुक भावुकता का भला
कविता करके तुलसी न लसे
कविता लसी पा तुलसी की कला"
अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के कथन की समीक्षा कीजिए। अथवा

प्रश्न ९७—सुरतिय नरतिय नागतिय अस चाहत सब कोय।
गोद लिए हुलसी फिरे तुलसी सो सुत होय।"
इस कथन के औचित्य पर प्रकाश डालिए।

अथवा

प्रश्न ९८—"तुलसी रस सिद्ध कवीश्वर थे।" इस कथन की सत्यता प्रमाणित कीजिए।

अथवा

प्रश्न ९९—जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' के निम्नलिखित कथन में निहित तुलसी के काव्य सौष्ठव को स्पष्ट कीजिए—
भ्रम विटप प्रभंजन कुमति बन अगिन तेज रवि सुजस ससि।
गुन तुलसिदास सब देव-मय प्रनवत रत्नाकर हुलसि।

उत्तर—भावपक्ष की दृष्टि से गोस्वामीजी का अधिकार अप्रतिम है—गोस्वामीजी का अधिकार मनुष्य की सम्पूर्ण भाव सत्ता पर है। उन्होंने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्येक रस पर अपनी लेखनी चलाई और सरस काव्य-धारा प्रवाहित की। उन्होंने मानव की अन्तः प्रकृति के प्रायः प्रत्येक छोटे-बड़े मनोभाव का मनोहारी वर्णन किया और उसको वाह्य जीवन के गहरे-हल्के रंगों के साथ मिलाकर चित्रित किया। अतः हम यह सरलता पूर्वक कह सकते हैं, कि मानव अन्तः करण की सूक्ष्म से सूक्ष्म वृत्तियों तक जैसी पहुँच गोस्वामीजी की है, वैसी वहुत कम कवियों में पाई जाती है।

अन्तः प्रकृति की विभिन्न वृत्तियों के उद्घाटन के अतिरिक्त गोस्वामीजी ने शृंगार रस जैसा मर्यादित वर्णन किया है, वैसा कदाचित् ही किसी कवि ने किया हो। इनके संभोग शृंगार-वर्णन की विशेषता यह है कि संभोग के समस्त अवयव एवं रस-परिपाक की सम्पूर्ण सामग्री उपलब्ध रहते हुए भी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं हो पाता है। इस विशेषता का निर्वाह इन्होंने वड़े ही मनोवैज्ञानिक कौशल के साथ किया है। नायक-नायिका को एकान्त में नहीं छोड़ते हैं तथा उनके पारस्परिक दर्शन एवं स्पर्श के द्वारा अनुभूति आनन्द की ओर संकेत भरकर देते हैं। पाठक स्वयं उसको समझ लें। इस आन्दानुभूति की अभिव्यक्ति दृष्टा में होती है।

वन-मार्ग में जाते हुए राम-सीता जब ग्राम वधूटियों के मध्य पहुँचते हैं, तब उस प्रसंग का वर्णन गोस्वामीजी वड़े ही मनोयोग के साथ करते हैं। ग्राम वधूटियाँ राम की ओर संकेत करती हुई सीता से पूछती हैं—साँवरे से सखि, रावरे को हैं ?" उस समय सीता उन्हें मौन उत्तर इस प्रकार देती हैं—

बहुरि बदन-बिधु अंचल ढाँकी। प्रियतन चितइ भौंह करि बाँकी।
खंजन मंजु तिरीछे नयनन। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि।

सीता के कटाक्ष और उनकी तिरीछी चितवनि का प्रभाव राम पर क्या हुआ, इसे तो राम जानें और सहृदय जानें, परन्तु गोस्वामीजी ग्राम वधूटियों के हृदय में उत्पन्न प्रभाव का वर्णन करके मर्यादा-निर्वाह कर लेते हैं—

मुदित भइं सब ग्राम-वधूटी। रंकनि रासि राउ जिमि लूटीं।

इसी प्रकार सीता-हरण के प्रसंग के अन्तर्गत राम के मन की क्षोभ पूर्ण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मग्लानि का यह मार्मिक वर्णन देखते ही बनता है। मानव मन में उनकी पैंठ का यह बेजोड़ उदाहरण है। यथा—

हर्माहि देखि मृग निकर पराहीं। मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं।
तुम आनन्द करहु मृग जाए। कंचन-मृग खोजन ये आए।

गोस्वामीजी की भावुकता अप्रतिम है—गोस्वामीजी जिस स्थिति एवं मनोदशा का वर्णन करते हैं, उसके साथ पूर्ण तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। इसी कारण उनके वर्णन इतने मार्मिक एवं सहज प्रतीत होते हैं। लक्ष्मण-शक्ति के अवसर पर राम के विलाप द्वारा उत्पन्न करुणा के प्रवाह में मर्यादा पुरुषोत्तम की समस्त मर्यादा बहती हुई दिखाई देती है—जो जनतेउँ बन बन्धु विछोहू। पिता वचन मनतेहु नहि ओहू।" यहाँ वह ब्रह्म के अवतार राम न रहकर दशरथ के पुत्र और लक्ष्मण के भाई के रूप में हमारे सामने आते हैं। इस अवसर पर यदि हम होते, तो क्या बीतती, इस बात का ध्यान रखकर जो कवि काव्य-रचना करते हैं, वे ही सच्चे कवि होते हैं। इस कसौटी पर गोस्वामीजी पूरी तरह खरे उतरते हैं।

भावुकता की एक अन्य पहिचान होती है—मार्मिक स्थलों की पहिचान। राम-कथा के भीतर ये स्थल अत्यन्त मार्मिक हैं—राम का अयोध्या-त्याग, राम-सीता-लक्ष्मण का पार्थक के रूप में वन-गमन, चित्रकूट में राम और भरत का मिलन, शबरी का आतिथ्य, सीता-हरण तथा लक्ष्मण को शक्ति लगने के अवसर पर राम का विलाप, तथा भरत की प्रतीक्षा। इन स्थलों को गोस्वामीजी ने अच्छी तरह पहचाना है और इनका उन्होंने अधिक विस्तृत और विशद वर्णन किया है। 'चित्रकूट' में राम-भरत मिलन तो वस्तुतः एक आध्यात्मिक घटना है। धर्म के इतने स्वरूपों की एक साथ उद्भावना तुलसी के ही विशाल मानस में सम्भव थी।

उनकी प्रबन्ध-पटुता के कारण 'रामचरित-मानस' हिंदी भाषा-भाषियों के जीवन का साथी बन गया है—'रामचरित' में जीवन की सब दशाओं की समाप्ति है। तुलसी की वाणी मनुष्य-जीवन की प्रत्येक दशा तक पहुँचने वाली है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रबन्ध-पटुता की मुख्यतः तीन विशेषताएँ मानी जाती हैं—सम्बन्ध-निर्वाह, वस्तु-वर्णन और मार्मिक स्थलों की पहचान। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इनका प्रबन्ध-निर्वाह प्रत्येक दृष्टि से सफल है। कहीं भी जोड़ नहीं मालूम पड़ता है। कथा-प्रवाह और घटना-क्रम का निर्वाह ऐसा सुन्दर है कि पाठक न तो कहीं ऊबने पाता है और न एक क्षण के लिए भी जीवन के यथार्थ से दूर हट पाता है।

राम-कथा के चार वक्ता हैं और चार श्रोता है। चारों चार भिन्न दृष्टिकोणों से कथा कहते हैं। गोस्वामीजी ने चारों प्रकार के दृष्टिकोणों का सामंजस्य करते हुए इस प्रकार कथानक को आगे बढ़ाया है कि प्रत्येक स्तर का श्रोता या पाठक आद्यन्त रसमग्न बना रहता है और कथा-प्रवाह पल भर के लिए भी विशृंखल नहीं होने पाता है। ऐसी प्रबन्ध-पटुता हिन्दी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है।

वाह्य-जगत के नाना रूपों का प्रत्यक्षीकरण अद्वितीय है—गोस्वामी जी ने वाह्य-जगत से सम्बद्ध प्रत्येक स्थिति-परिस्थिति का उद्घाटन बहुत ही मनोरम शैली में किया है। जीवन और जगत् की प्रत्येक घटना तुलसी का ज्ञान-वर्द्धन करती हुई प्रतीत होती है। तुलसी उस ज्ञान को उन्मुक्त भाव से, दोनों हाथों से लुटाते हुए दिखाई देते हैं। जीवन की सम्बन्धित पंक्तियाँ हमको 'रामचरितमानस' में उपलब्ध होती हैं और विशेषता यह है कि उनके द्वारा हमारा समाधान हो जाता है। हम 'राम-चरित-मानस' के विधि-निषेधों को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं, मानो वह किसी अलौकिक पुरुष की अलौकिक कृति हो। विद्वानों का एक बहुत बड़ा वर्ग 'रामचरितमानस' को पंचम वेद ही मानता है। प्रकृति की एक सामान्य घटना भी हमें कान्ता सस्मित उपदेश दे सकती है—

दामिनि दमक रही बन माहीं। खल की प्रीति जथाथिर नाहीं।
बुंद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सहिं जैसे।

काव्य भाषा पर तुलसी का अपूर्व अधिकार दिखाई देता है—गोस्वामीजी के समय में काव्य-भाषा के दो रूप प्रचलित थे—अवधी और ब्रजभाषा। गोस्वामीजी ने दोनों ही भाषाओं के दोनों रूपों—परिनिष्ठित और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोक-प्रिय में अधिकार पूर्वक रचनाएँ लिखीं। अवधी के सबसे सफल कवि हैं जायसी और ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं सूरदास। परन्तु जायसी ब्रजभाषा में कविता न कर सके और सूरदास ने अवधी में लेखनी नहीं उठाई। परन्तु तुलसी ने दोनों ही भाषाओं में समान रूप से श्रेष्ठ रचना की। इतना ही नहीं उन्होंने अवधी में जायसी के 'पद्मावत' से अधिक श्रेष्ठ रचना रामचरितमानस प्रस्तुत की तथा ब्रजभाषा में रचित अपने काव्य ग्रन्थों में वह कई स्थलों पर सूरदास को भी पीछे छोड़ गये।

काव्य की बहिरंग प्रणाली पर उनका अधिकार कवियों के लिए स्पर्धा की वस्तु है—तुलसीदास ने अपने समय में प्रचलित समस्त काव्य-पद्धतियों पर सफल काव्य-रचना की। ये ही पद्धतियाँ आजतक प्रचलित हैं। अतः हम कह सकते हैं कि हिंदी काव्य क्षेत्र में प्रचलित समस्त शैलियों पर श्रेष्ठ काव्य-रचना करने में गोस्वामीजी सफल हुए। सफल ही नहीं, उन्होंने प्रत्येक काव्य पद्धति पर श्रेष्ठतम उदाहरण प्रस्तुत किए।

गेय पदों की दृष्टि से सूरदास का स्थान बहुत उच्च माना जाता है। परन्तु आत्म-समर्पण की भावना को दास्य रूप में पूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करके उन्होंने 'विनय पत्रिका' के माध्यम से 'गीति-काव्य' का एक मौलिक आदर्श प्रस्तुत किया। संस्कृत निष्ठ कोमल कान्त पदावली युक्त परिनिष्ठित ब्रजभाषा का जो स्वरूप हमको तुलसी के काव्य में उपलब्ध होता है, वह अन्यत्र अप्राप्य है। इसी प्रकार अवधी भाषा का जो संस्कृत स्वरूप हमको 'रामचरितमानस' में मिलता है, वह अवधी की किसी भी अन्य रचना में उपलब्ध नहीं है।

अलंकारों का जैसा स्वाभाविक प्रस्फुटन तुलसी के काव्य में पाया जाता है, वैसा वहुत कम देखने को मिलता है।

लोक-मंगलकारी काव्य की ऐसी प्रतिष्ठा अन्यत्र अप्राप्य है—तुलसी ने राम के लोक-रंजनकारी स्वरूप की प्रतिष्ठा करके डूबती हुई हिंदी भाषी जनता को बचा लिया। लोक-रक्षक राम की भक्ति रूपी गंगा के वह भागीरथ थे। उनकी भक्ति-भागीरथी के प्रवाह में हिंदू समाज की समस्त उदासी या खिन्नता बह गई। वह धर्म नीति, समाज नीति और राजनीति के निरूपण में अपने उदाहरण आप हैं।" (हरिऔध)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गोस्वामीजी अमर विश्व-कवियों की कोटि में आते हैं—उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह निस्संकोच कह सकते हैं कि भाव और भाषा, भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही क्षेत्रों में गोस्वामीजी का अधिकार अत्यन्त विस्तृत और व्यापक है। प्रत्येक दृष्टि से वह बेजोड़ हैं। क्या अन्तः प्रकृति, क्या बाह्य प्रकृति, क्या भाषा, क्या अलंकार, क्या आदर्श, क्या यथार्थ, क्या साधनावस्था, क्या सिद्धावस्था—प्रत्येक दृष्टि से तुलसी को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है और वह एक रससिद्ध प्रवृत्त कवि कहलाने के अधिकारी हैं। प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान डाक्टर सर जी० ए० ग्रियर्सन ने ठीक ही लिखा है कि "भारत के इतिहास में तुलसीदास के विषय में इदमित्थं नहीं कहा जा सकता।"

इनकी महत्ता को हिन्दी साहित्य के प्रायः समस्त अध्येयताओं ने एक स्वर से स्वीकार किया है। 'हरिऔध' ने तो यहाँ तक लिख दिया कि 'कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला।" तुलसी सदृश वरद पुत्र को प्राप्त करके माँ हुलसी धन्य हो गई। वह तीनों लोकों की नारियों की स्पृहा का केन्द्र बन गई—

> सुरतिय नरतिय नागतिय अस चाहत सब कोय।
> गोद लिए हुलसी फिरैं तुलसी सो सुत होय।

हिन्दी साहित्य में केवल एक ही महात्मा हैं जिनका नाम गोस्वामीजी के साथ लिया जा सकता है। वह हैं महात्मा सूरदास। परन्तु व्यापकता और विस्तार की दृष्टि से वह भी तुलसी के सम्मुख नहीं ठहर पाते हैं। तुलसीदास के महत्व का निरूपण करते हुए हरिऔधजी ने ठीक ही लिखा है कि, "उनका सूरसागर—भाव का सुमेरु, मधुरता का मन्दिर, कांत कवितावली का निकेतन, वाणी-विलास का विलास-भवन और वर्णन का विचित्र क्रीड़ा स्थल है। किन्तु उसमें मानवता की विविध आदर्शमयी लोकपावन मूर्ति का दर्शन दुर्लभ है।"

गोस्वामीजी द्वारा प्रणीत अकेला 'रामचरितमानस' ही उन्हें विश्व कवियों की पंक्ति में प्रतिष्ठित करने के लिए पर्याप्त है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राम छोड़कर और की जिसने कभी न आस की।
रामचरितमानस कमल जय हो तुलसीदास की।
(जयशंकरप्रसाद)

तथा— भारी भवसागर उतारतो कवन पार।
जो पै यह रामायन तुलसी न गावतो। (वेनी कवि)

गोस्वामीजी सच्चे अर्थों में लोक नायक हैं—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इनके विषय में लिखा है कि "लोक नायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके, क्योंकि भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधिनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ, जातियाँ, आचारनिष्ठा और विचार पद्धतियाँ प्रचलित हैं। बुद्धदेव समन्वयकारी थे। गीता में समन्वय की चेष्टा है और तुलसीदासजी भी समन्वयकारी हैं।"

निष्कर्ष—गोस्वामीजी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं—हिन्दी साहित्य में गोस्वामी का स्थान निर्धारण के सम्वन्ध में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन महत्वपूर्ण है। यथा—"यदि कोई पूछे कि जनता के हृदय पर सबसे अधिक विस्तृत अधिकार रखने वाला हिन्दी का सबसे बड़ा कवि कौन है, तो उसका एकमात्र यही उत्तर ठीक हो सकता है कि भारत, हृदय, भारती-कण्ठ, भक्त चूड़ामणि गोस्वामी तुलसीदास। हम इस कथन से पूर्णतया सहमत हैं। जहाँ भी हजारों नर-नारि, रस-मग्न होकर सिर हिलाते हुए और आनन्दाश्रु बहाते हुए दिखाई देते हैं, हम समझ जाते हैं कि यहाँ तुलसीकृत 'रामचरितमानस' की कथा हो रही है।

प्रश्न ९९—विषय और भाषा की दृष्टि से तुलसीदास और सूरदास की तुलना कीजिए। अथवा

प्रश्न १००—'सूर सूर तुलसी शशि' इस उक्ति पर अपनी विवेचनात्मक सम्मति दीजिए। अथवा

प्रश्न १०१—"तुलसी में जीवन की विविधता है और सूर में जीवन की गहराई।" इस मत की विवेचना कीजिए।

अथवा

प्रश्न १०२—"तत्त-तत्त की कबिरा कहिगा सूरा कही अनूठी। रही सही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कठमलिया कहिगा और कही सब जूठी ।" इस उक्ति को ध्यान में रखकर तुलसी और सूर का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए ।

उत्तर—तुलसी और सूर का जोड़ा हिन्दी साहित्य में अमर है— गोस्वामी तुलसीदास हिन्दी काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनके साथ केवल एक ही महात्मा का नाम लिया जा सकता है। वह हैं महात्मा सूरदासजी। ये दोनों हिन्दी साहित्याकाश के चमकते हुए नक्षत्र हैं। जब तक हिन्दी साहित्य है और हिन्दी भाषा भाषी हैं, तब तक माँ भारती के ये दोनों वरद पुत्र अमर रहेंगे। यदि एक सूर्य है, तो दूसरा चन्द्र है। इन दोनों की अमरता को घोषित करने के लिए किसी ने यह दोहा लिखा है—

सूर सूर तुलसी ससि, उडगन केसवदास ।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करत प्रकास ।

इस दोहे का अर्थ करते हुए कुछ आलोचक सूरदास को सूर्य सदृश तेजस्वी बताते हैं और तुलसी को सूर्य के प्रति-फलित प्रकाश द्वारा प्रकाशित होने वाला चन्द्रमा। हमारे विचार से दोहा लिखने वाले का मन्तव्य इस प्रकार का कदापि नहीं रहा होगा। इस प्रकार का कथन केवल 'यमक' के लोभ से कर दिया गया है। अन्यथा पहले तो "को बड़ छोट कहत अपराधू" वाली बात है। और फिर भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियों से गोस्वामी तुलसीदास का अधिकार अधिक विस्तृत है और तुलसी हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। श्रीअयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने सूरदास के काव्य का महत्त्व स्वीकार करते हुए बहुत ही अच्छी तरह तुलसी की श्रेष्ठता स्पष्ट कर दी है—"सूर-सागर भाव का सुमेरु, मधुरता का मन्दिर, कान्त कवितावली का निकेतन, वाणी-विलास का विलास-भवन और वर्णन का विचित्र क्रीड़ा स्थल है। किन्तु उसमें मानवता की विविध आदर्शमयी लोक पावन मूर्ति का दर्शन दुर्लभ है।"

यदि उपर्युक्त दोहे को निर्णयात्मक समालोचना का एक उदाहरण मानकर दोनों कवि पुंगवों का तुलनात्मक मूल्यांकन करना आवश्यक ही हो, तो हम कह सकते हैं कि उक्त कथन के द्वारा इन दोनों महाकवियों को हिन्दी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहित्याकाश को प्रकाशित करने वाले सूर्य और चन्द्र बताया गया है। सूर्य ज्ञान का प्रतीक है तथा चन्द्रमा शीतलता एवं मनोज्ञता का प्रतीक है। इस कथन का तात्पर्य यह होता है कि तुलसीदासजी चन्द्रमा के समान सहृदय पाठक का रंजन करने वाले हैं। यह कौन नहीं जानता है कि साहित्य में चन्द्रमा का ही विशेष महत्त्व है। सौन्दर्य एवं शीतलता को व्यक्त करने के लिए चन्द्रमा को ही उपमान रूप ग्रहण किया जाता है।

सूर और तुलसी दोनों ही लोक-कल्याण की भावना से काव्य-प्रणयन में प्रवृत्त हुए थे

सूर और तुलसी दोनों ही युग सृष्टा एवं युगद्रष्टा कवि थे। दोनों ही लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर काव्य-प्रणयन में प्रवृत्त हुए थे। इस सम्बन्ध में आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन दृष्टव्य है—"पहले भगवान का हँसता-खेलता रूप दिखाकर सूरदास ने हिन्दू-जाति की नैराश्य-जनित खिन्नता हटाई, जिससे जीवन में प्रफुल्लता आ गई। पीछे तुलसीदास ने भगवान का लोक-व्यापार-व्यापी मंगलमय रूप दिखाकर आशा और शक्ति का अपूर्व संचार किया।

× × × सूरदास तक आते-आते भगवान की लोकरंजनकारिणी प्रफुल्लता की पूर्ण व्यंजना हो गई। अन्त में उनकी अखिल जीवन-वृत्ति-व्यापिनी कला को अभिव्यक्त करने वाली वाणी का मनोहर स्फुरण तुलसी के रूप में हुआ।"

दोनों उच्च कोटि के भक्त थे। तुलसी के काव्य में शिवत्व की प्रधानता है और सूर के काव्य में सौन्दर्य की प्रधानता है—सूर और तुलसी दोनों ही उच्च कोटि के भक्त थे। वे भगवान के अनन्त सौन्दर्य, अनन्त शक्ति और अनन्त शील समन्वित स्वरूप के उपासक थे। परन्तु उनकी उपासना-पद्धति में थोड़ा सा अन्तर था। दोनों की भक्ति वैधी वैष्णव भक्ति की 'गोपी' भक्ति थी। परन्तु सूरदास की भक्ति सख्य भाव की थी और तुलसी की दास्य भाव की। परिणामतः सूर ने अपने इष्टदेव के ऐश्वर्य का कम और सौन्दर्य का वर्णन अधिक किया, और तुलसी ने सौन्दर्य की अपेक्षा उनके ऐश्वर्य का वर्णन अधिक किया। तुलसी ने राम का चरित्र-चित्रण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोक-रक्षक के रूप में किया, परन्तु सूर की आँखों से भी कृष्ण का लोक-रक्षक रूप एकदम ओझल नहीं हो गया। महाभारत के रणकृष्ण का वर्णन करते समय सूरदास ने भी "हम भक्तन के भक्त हमारे, सुनु अर्जुन परतिज्ञा मेरी यह, व्रत टरइ न टारे" आदि पदों में कृष्ण के ऐश्वर्यशाली एवं शरणागत-वत्सल रूप का उद्घाटन किया है।

लोक धर्म की व्यवस्था और समन्वय भावना तुलसी की वहुत वड़ी विशेषता है। जीवन के प्रत्येक प्रसंग और प्रत्येक अवसर से सम्वद्ध चौपाई तुलसी के 'मानस' में उपलब्ध हो जाती है। उनकी अनेक चौपाइयाँ वेद-वाक्यवत् विधि-निषेध के रूप में समाज में प्रचलित हैं। सूर ने मानव-जीवन का स्पर्श किया, तुलसी ने जीवन के तत्वों का उद्घाटन करके नीति-नियम का प्रतिपादन किया। सारांश यह है कि तुलसी ने सूर की अपेक्षा मानव-जीवन के कल्याण परक मार्ग पर अधिक लिखा है। उनके काव्य-प्रणयन का लक्ष्य ही यह था कि "कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुर सरि सम सब कहँ हित होई।" जवकि सूरदास की काव्य रचना का उद्देश्य कृष्ण की सगुण-लीला का गायन ही था—"सब विधि अगम बिचारे तातें सूर सगुन लीला पद गावै।" कृष्ण के लीला गायन के कारण सूरदास 'पुष्टि मार्ग' के जहाज वन गये और तुलसीदास भगवत धर्म और वौद्ध धर्म के प्रतिष्ठापक श्रीकृष्ण और वुद्धदेव की कोटि के लोक नायक समझे गये। डा० ग्रियर्सन ने उनके विषय में ठीक ही लिखा है कि "भारतवर्ष में लोक नायक वही हो सकता है जो समन्वय कर सके इस दृष्टि से वुद्धदेव के पश्चात् भारत में सवसे वड़े लोक नायक तुलसीदास थे।

सूर की अपेक्षा तुलसी का काव्य-क्षेत्र अधिक व्यापक और विस्तृत है—सूर और तुलसी के काव्य के क्षेत्र भिन्न हैं। दोनों ही अपने-अपने क्षेत्र के एकछत्र सम्राट हैं। तुलसी में व्यवहार दशाओं की अधिकता है, परन्तु सूर में प्रेम की व्यंजना अधिक विस्तृत है। कुछ विद्वानों की राय में शुद्ध कवित्व की दृष्टि से दोनों का अधिकार समान है। परन्तु फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि तुलसी का काव्य क्षेत्र अपेक्षाकृत कहीं अधिक व्यापक है। तुलसीदास ने समस्त रसों पर समान अधिकार के साथ रचनाएँ प्रस्तुत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0 In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कीं, जबकि सूर ने प्रायः श्रृंगाररस पर ही लिखा। परन्तु यह निर्विवाद है कि श्रृंगाररस के सूर सबसे बड़े कवि हैं। श्रृंगाररस का, विशेषकर वियोग श्रृंगार और वात्सल्य रस का जैसा सर्वांगीण और उत्कृष्ट वर्णन सूर में मिलता है, वैसा हिन्दी के किसी अन्य कवि में नहीं।" इसके साथ ही साथ यह भी निर्विवाद सत्य है कि श्रृंगाररस का जैसा मर्यादित वर्णन तुलसी ने किया है, वैसा किसी अन्य कवि ने नहीं।

गोस्वामीजी ने अपने समय में प्रचलित दोनों काव्य भाषाओं अवधी और ब्रजभाषा के दोनों रूपों—परिनिष्ठिता और लोक प्रचलित—में साधिकार रचना की, जबकि सूरदास ने केवल ब्रजभाषा में ही रचना की। तुलसी ने अपने समय में प्रचलित समस्त काव्य शैलियों (छप्पय शैली, कवित्त-सवैया शैली, दोहा-चौपाई की प्रबन्ध काव्य शैली, नीति की दोहा शैली, भक्त कवियों की गेय पद शैली तथा रहीम की बरवा शैली) में रचना की, जबकि सूरदास ने केवल गेय पद ही लिखे। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि गेय पद रचना में तुलसी सूर से पीछे नहीं हैं। सूर के पदों में सख्य भाव की भक्ति होने के कारण आत्म-समर्पण की वह गहराई नहीं है, जो दास्य भाव की अभिव्यक्ति को लेकर चलने वाले तुलसीदास 'विनयपत्रिका' के पदों में कर सके हैं। गेय पद साहित्य के क्षेत्र में 'विनयपत्रिका' का आदर्श मौलिक रूप में अवतरित हुआ।

गोस्वामी तुलसीदास ने मुक्तक-काव्य और प्रबन्ध काव्य दोनों ही क्षेत्रों में रचना की। प्रबन्ध काव्य रचना करने के कारण उनको वस्तु-वर्णन, सम्बन्ध निर्वाह तथा मार्मिक स्थलों की पहिचान की अभिव्यक्ति का पूर्ण अवसर प्राप्त हुआ। इसके विपरीत सूर ने केवल मुक्तक-काव्य रचना ही की। फलतः वह जीवन के एक सीमित क्षेत्र को ही अपने काव्य का विषय बना सके।

इतना होने पर भी गहराई और भाव प्रवणता में बड़े और छोटे का निर्णय कर देना सरल नहीं है। डा० सत्येन्द्र ने ठीक ही लिखा है कि "सूर में यह उमंग स्पष्ट दीख पड़ती है कि वह वर्ण्य विषय पर अन्तिम शब्द कह देना चाहते हैं। तुलसी का वर्णन कथा के लिए हैं।" बात भी ऐसी ही है। सूरदास नें जिस विषय पर कहना आरम्भ किया, उस पर कहते ही चले गये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाल-वर्णन पर उन्होंने प्रायः अन्तिम शब्द ही कह दिया। माता के हृदय का वह प्रत्येक कोना झाँक आये और इस क्षेत्र में उन्होंने परवर्ती कवियों के लिए कुछ नहीं छोड़ा। फलतः इस विषय पर अन्य कवियों की उक्तियाँ जूठी सी मालूम पड़ने लगीं। शेष विषयों को तुलसी की रस-प्रसविनी लेखनी ने अपने काव्य में पूर्ण बना दिया। किसी ने ठीक ही कहा—

तत्त तत्त की कबिरा कहिगा सूरै कही अनूठी।
रही सही कठमलिया कहिगा और कही सब जूटी।

प्रकृति-वर्णन में तुलसी अधिक सफल हैं—दोनों कवि शिरोमणियों ने अपने युग की परम्परा में सीमित रहते हुए प्रकृति का वर्णन प्रायः अलंकार विधान और उद्दीपन-विभावान्तर्गत किया। परन्तु तुलसी ने प्रकृति-वर्णन अन्य विधाओं के अन्तर्गत भी किया। उन्होंने प्रकृति के उपदेशिका रूप को भी चित्रित किया। जैसे—

दामिनि दमक रही घन माहीं। खल की प्रीति जथाथिर नाहीं।
उदित अगस्त पंथ जल सोखा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा।
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा।
सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा।

इतना ही नहीं, तुलसी ने आलम्बन रूप में भी प्रकृति का वर्णन किया है। उन्होंने संश्लिष्ट योजना द्वारा प्रकृति को लोकग्राह्य सहज स्वाभाविक रूप में भी अंकित किया है। 'गीतावली' में 'वर्षा-वर्णन' तथा चित्रकूट-वर्णन इसके उदाहरण हैं। 'रामचरितमानस' में भी उन्होंने पंपासर का वर्णन करते समय जो संश्लिष्ट योजना की है, वह उनके सूक्ष्म निरीक्षण की परिचायक है—

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा।
बोलत जल कुक्कुट कल हंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा।
× × ×
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं।

गोस्वामीजी ने वस्तु-परिगणन द्वारा प्रकृति का परम्परा युक्त वर्णन भी किया है—

झरना झरहिं सुधा-सम वारी। त्रिबिध ताप-हर त्रिबिध बयारी॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC-0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिटप बेलि-तृन-अगनित जाती। फल-प्रसून-पल्लव बहु भाँती।।

उपमान रूप में प्रकृति के अवयवों को ग्रहण करते हुए गोस्वामीजी ने उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत आदि के साथ ग्रन्थ वर्णन भी लिखे हैं। इन वर्णनों में वस्तुओं और व्यापारों का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है। चित्रकूट के निम्नलिखित वर्णन में वस्तुओं और व्यापारों को लेकर होली का उत्सव खड़ा किया गया है। इसमें उत्प्रेक्षा का उल्लास दृष्टव्य है।

आजु बन्यो है विपिन देखो रामधीर। मानो खेलत फागु मुद मदन बारे।।

उक्ति-वैचित्र्य एवं वाग्वैदग्ध्य के क्षेत्र में सूरदास बहुत आगे बढ़े हुए हैं—

एक बात को घुमाकर कहने के न मालूम कितने ढंग सूरदास को आते हैं। उक्ति वैचित्र्य एवं वाग्वैदग्ध्य के उदाहरण सूर के 'भ्रमर गीत' में भरे पड़े हैं। गोपियों की इन अनूठी उक्तियाँ उद्धव सदृश प्रकाण्ड पंडित एवं अद्वितीय ज्ञानी को निरुत्तर कर देती हैं।

निष्कर्ष—सूर और तुलसी हिन्दी साहित्याकाश के दो जाज्वल्यमान नक्षत्र हैं। दोनों ही निरपेक्ष हैं तथा दोनों का स्वतन्त्र महत्त्व है। दोनों ही अपने-अपने ढंग पर अपना सन्देश सफलतापूर्वक सुनाते हैं। सूर माधुर्य लेकर चले हैं और तुलसी आदर्श लेकर। अपने-अपने क्षेत्र में दोनों का स्थान अक्षुण्ण है। परन्तु यह तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि मानव की भाव सत्ता पर व्यापक अधिकार होने तथा समाज को राम भक्ति का स्थायी अवलम्ब प्रदान करने के कारण तुलसी का पलड़ा कुछ अधिक भारी दिखाई देता है।

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१८)

परिशिष्ट

प्रश्न १०३—गोस्वामी तुलसीदास की 'नारी भावना' पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

अथवा

प्रश्न १०४—रामचरितमानस में तुलसी ने अनेक इस प्रकार की उक्तियाँ कही हैं जिनके द्वारा नारी की निन्दा होती है—फिर भी लोग तुलसी को भारतीय संस्कृति का पोषक कहते हैं। क्या आप इस विरोधाभास का समन्वय प्रस्तुत कर सकते हैं? उपयुक्त उद्धरण देते हुए अपना मत व्यक्त कीजिए।

उत्तर—गोस्वामीजी और नारी—गोस्वामीजी ने अन्य वर्गों के पात्रों के समान नारी का भी बहुत ही मनोवैज्ञानिक वर्णन प्रस्तुत किया है। उन्होंने कई स्थलों पर नारी वर्ग को पारलौकिक साधना के मार्ग में वाधक मानकर नारी से सावधान ही किया है। कुछ लोग इसका यह अभिप्राय लगाते हैं कि गोस्वामीजी नारी के प्रति अनुदार थे, वह नारी के आलोचक थे और नारी की निन्दा का कोई भी अवसर वह चूकते नहीं थे। हमारे विचार से गोस्वामी जी के प्रति इस प्रकार का आरोप लगाना उचित नहीं है। वह वस्तुतः नारी के प्रति सदैव नतमस्तक रहते थे। परन्तु केवल उस नारी के प्रति जो पति-परायण एवं कर्त्तव्य-परायण हो, जो माता कही जाने योग्य हो। वह वस्तुतः नारी के उस रूप को त्याज्य समझते थे, जो केवल अपनी कामाग्नि में पुरुष को शलभ बनाना चाहती है। इतना ही नहीं, वह तो वस्तुतः नारी के प्रति आदर भाव पूर्ण कृतज्ञता का अनुभव भी करते थे। नारी के उपदेश से ही तो वह 'नरत्व' के मार्ग पर अग्रसर हुए थे। उन्होंने तो स्पष्ट ही कहा है कि हम तो चाखा प्रेम रस पत्नी के उपदेश।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi